स्वामी विवेकानन्द

जन्म और लड़कपन

के उस बुरे समय में भी जिस पुरुष ने अमेरिका
में जाकर अपनी योग्यता और भाषण शक्ति से
को चकित कर दिया था और भारतमाता के
किया था, उस पुरुष-रत्न की कथा आज
।

ता के पास ही सिमूलिका नाम का एक छोटा-
। विश्वनाथ दत्त नामक एक वकील यहीं पर
ह बड़े ही धार्मिक विचार के थे, अपनी बुद्धि
। के लिये प्रसिद्ध थे। इनकी वकालत अच्छी
आस-पास में काफी मशहूर थे। इनकी स्त्री
नेश्वरी था। यह भी पति की तरह बुद्धिमान.
। थीं।

ाथ बाबू ने काफी धन कमाया था, उनके दिन
कटते थे, लेकिन इतने पर भी एक चिन्ता स्त्री
को सताती रहती थी। उनके कोई सन्तान न

खूब गहरे ध्यान में लग जाता। उस स[illegible] दीन-दुनिया की खबर न रहती, सभी कुछ भूल जा[illegible]

एक दिन शाम की बात है। आ[illegible] में बादल छाये थे, ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। वह [illegible] साथियों के साथ छत पर बैठकर ध्यान लगा रहा था[illegible] सभी लोग आंख बन्द किये हुए बैठे हुये थे। इतने [illegible] फन फैलाये हुए एक बड़ा विषधर सांप पहुँचा। एक ल[illegible] उसे देखते ही 'साँप' 'साँप' कहकर चिल्ला उठा, इतने में [illegible] सभी लड़के अपनी अपनी जान लेकर भाग खड़े हुये। परन्तु [illegible]ने पर [illegible] का ध्यान न टूटा। वह वैसे ही निश्चल [illegible] बैठा रहा। [illegible] की आवाज सुनकर घर के लोग दौड़े आ[illegible]। देखा कि साँप फन फैलाये हुये बालक के सिर पर छाया किये है। इस अजीब दृश्य को देखकर सभी ने समझा कि यह कोई साधारण बालक नहीं है, इसलिये किसी ने साँप को मारने अथवा उसे हटाने की कोशिश न की। कुछ देर के बाद साँप अपने आप फन समेट कर चला गया। यह खबर गाँव भरमें फैल गयी, सभों को विश्वास हो गया कि आगे चलकर यह बालक कोई नामी पुरुष होगा।

जब बालक की अवस्था छः वर्ष की हुई तो माता-पिता ने उसे पढ़ने के लिए पाठशाला में भेजा। लेकिन वहाँ के शरारती और चंचल लड़कों के साथ में रहने से नरेन्द्र की

चलता और भी बढ़ने लगी। निदान विश्वनाथ बाबू घर र ही एक अध्यापक रखकर नरेन्द्र को पढ़वाने लगे। जब शिक्षक महोदय नरेन्द्र को पढ़ाना आरम्भ करते तो वह आँखें मूँद कर ध्यान पूर्वक सुनने लगता। बालक नरेन्द्र यह जानता था कि इधर-उधर निगाह डालने से उसका ध्यान और चीजों की ओर चला जायगा। यही सोचकर वह आँखें बन्द कर गुरु की बातें सुनता और उन पर खूब गौर करता। गुरुजी यह समझते कि बालक आलसी है, पढ़ना आरम्भ करते ही सोने लगता है, इसलिये उन्होंने नरेन्द्र को खूब पीटा और जो कुछ पढ़ा गये थे, उसे पूछने लगे। बालक बिना कसूर पीटे जाने से बड़ा गुस्सा हुआ। उसका चेहरा लाल हो गया, फिर भी उसने अध्यापक के हरेक प्रश्न का उत्तर ठीक-ठीक शान्तिपूर्वक दिया। यह देखकर अध्यापक महाशय चुप लगा गये, उनका सारा क्रोध ठंडा पड़ गया और उन्हें अपनी गलती पर बड़ा पछतावा होने लगा। फिर उन्होंने नरेन्द्र को कभी नहीं पीटा।

बालक नरेन्द्र की बुद्धि जैसी तेज थी वैसी ही उनकी याद रखने की शक्ति भी बड़ी विलक्षण थी। उनकी यह शक्तियाँ अवस्था के साथ ही बढ़ने लगीं। साथ ही उनका ध्यान लगाने का भी अभ्यास बढ़ने लगा। यहाँ तक कि कभी-कभी ध्यान लगाने के वक्त उन्हें एक प्रकाश दिखाई पड़ता। इस बात को उन्होंने कई लोगों से कहा।

शिक्षा दीक्षा

मातृ भाषा बंगला का कुछ बोध होने पर वह अंग्रेजी स्कूल में भरती किये गये। लेकिन अंग्रेजी पढ़ने से बालक ने साफ इनकार कर दिया, कहा यह म्लेच्छ भाषा है, इसे हर्गिज न पढ़ूंगा। परन्तु बहुत समझाने बुझाने पर स्वीकार किया। पहले तो वह स्कूल से भाग कर घर चले आये। बड़े होने पर इस भाषा के वह कितने बड़े विद्वान हुए, यह आगे चल कर ज्ञात हो जायगा।

नरेन्द्र की बुद्धि ऐसी विचित्र थी कि जिस विषय की ओर ध्यान देते, उसी में वह कमाल दिखलाते। पढ़ने लिखने में वह अपने साथियों में सबसे तेज थे ही, गाने बजाने, खेल-कूद में भी वह एक ही निकले। सदा काम में लगे रहने की उनकी आदत थी। सभी काम को बड़ी लगन और उत्साह के साथ करते जिससे कठिन-से-कठिन काम भी उन्हें आसान जान पड़ता।

यह मेट्रोपोलिटन स्कूल में पढ़ते थे। परन्तु सन् १८७७ ई० में इनके पिता रायपुर गये। इसलिये स्कूल छोड़कर इन्हें भी रायपुर जाना पड़ा। यह वहाँ पर दो वर्ष रहे। फिर पिता के साथ कलकत्ता लौट आये और मेट्रोपोलिटन स्कूल में पढ़ने लगे। सन् १८७९ ई० में इन्होंने इंट्रेन्स की परीक्षा दी और अपने स्कूल से केवल यही

प्रथम श्रेणी में पास हुए। इस समय इनकी अवस्था केवल १७ वर्ष की थी।

अब इन्होंने प्रेसीडेन्सी कालेज में नाम लिखवाया, लेकिन कुछ कारणों से इस कालेज को छोड़कर यह जनरल एसेम्बलीज इन्स्टीट्यूशन में भर्ती हुए। कालेज में भर्ती होते ही यह कालेज की हर एक सभा सोसाइटी में भाग लेने लगे। इन्होंने एक व्याख्यान समिति कायम की और उस में स्वयं व्याख्यान दिया करते तथा अपने सहपाठियों को भी उसमें भाग लेने के लिए उत्साहित किया करते। इन के सहपाठियों में कोई भी इनके जैसा जोशीला और सुन्दर भाषण न देता। यह कालेज की पढ़ाई-लिखाई के साथ और विषयों की भी आलोचना किया करते। धीरे-धीरे धर्म की ओर इनका झुकाव होने लगा। इस विषय में पहले इन पर ब्राह्म-समाज का बड़ा प्रभाव पड़ा। वह ब्राह्म-समाज की सभाओं में शामिल होकर वहाँ के व्याख्यान-दाताओं के भाषणों को बड़े प्रेम से सुना करते। वहाँ गाना-बजाना भी हुआ करता था। नरेन्द्र भी अपनी सुरीली आवाज से भजन गाकर लोगों को लोट-पोट करते, खुद मस्ती में अपने को भूल जाते।

वह धार्मिक ग्रंथों को भी बड़े ध्यान से पढ़ा करते। इन ग्रंथों में उन्हें गीता बड़ी प्रिय थी। वह उसे रोज पढ़ा

करते। धर्म के ऊपर उनकी भक्ति बढ़ती जाती थी; लेकिन ब्राह्म समाज के सिद्धांतों से उनकी धर्म की प्यास न बुझी, क्योंकि इनके दिल में जो सवाल उठते उनका जवाब उन्हें ब्राह्म समाज में कोई भी न देता। यह अपने कालेज के पादरी अध्यापक के पास जाया करते और अपने प्रश्नों का उत्तर पूछते, परन्तु उनके उत्तरों से भी उन्हें शांति न मिलती। धीरे-धीरे इनका झुकाव नास्तिकता की ओर होने लगा। यह हक्सले आदि नास्तिक विद्वानों के ग्रंथों को ध्यान पूर्वक पढ़ने लगे।

नरेन्द्र की यह आदत थी. कि यह जो कुछ पढ़ते उस पर खूब तर्क वितर्क किया करते, उस सम्बन्ध में कुछ सन्देह न रहने देते। वह हर एक विषय पर अपनी स्पष्ट सम्मति दिया करते। इनकी इस निर्भयता को देखकर लोग दाँतों तले उँगली दबाया करते।

उस समय हरबर्ट स्पेन्सर साहब जीते थे। इनके दर्शन शास्त्र के ग्रंथ सर्वत्र पढ़ाये जाते थे। सभी देशों में इनकी धाक थी। स्पेन्सर साहब ने जो सिद्धांत क़ायम किये थे, उनकी आलोचना लिखकर नरेन्द्र ने उनके पास भेजी। उस समय केवल एफ़० ए० में पढ़ते थे। स्पेन्सर साहब इनकी आलोचना पढ़कर मुग्ध हो गये और पत्र लिखकर नरेन्द्र की बुद्धि की प्रशंसा करते हुये उन्हें बहुत उत्साहित किया।

जब इनके पिता विश्नाथ बाबू को पता चला कि मेरा पुत्र नास्तिक होता जा रहा है, तब उन्हें बड़ा दुख हुआ। वह सोचने लगे, किस उपाय से पुत्र को ठीक रास्ते पर लाऊँ। उन्हीं दिनों बंगाल में स्वामी रामकृष्ण परमहंस नामक एक बड़े सिद्ध महात्मा रहते थे। बंगाल में सर्वत्र उनकी धूम थी। सैकड़ों उनके शिष्य थे। उन्हीं में श्रीराम चन्द्र दत्त भी एक थे। यह विश्वनाथ बाबू के बड़े मित्र थे। एक दिन विश्वनाथ बाबू से इन्होंने नरेन्द्र को परमहंस के पास ले चलने को कहा। नरेन्द्र उनके पास चलने को झट राजी हो गये।

परमहंस के पास पहुँचने पर नरेन्द्र ने बड़ी श्रद्धा से उन्हें प्रणाम किया। नरेन्द्र को देखकर रामकृष्ण आश्चर्य से भर गये। जब दत्त महाशय ने कहा कि यह मेरे मित्र का पुत्र है, इसे उपदेश देकर अच्छे रास्ते पर लाइये। इसके हृदय की अशांति को दूर कीजिये और इसे अपना भक्त बनाये, तब परमहंस ने कहा कि यह तो स्वयं सिद्ध पुरुष है। यह नास्तिक कैसे हो सकता है!

नरेन्द्र पहले रामकृष्ण को देखकर आकर्षित न हुए। समझा कोई साधारण साधु है। लेकिन परमहंस का सरल बर्ताव और उनकी मीठी बोली उन्हें बहुत अच्छी लगी। नरेन्द्र से उन्होंने एक भजन गाने के लिए कहा। नरेन्द्र ने बड़े मीठे स्वर में दो भजन गाये। भजनों को सुन कर

परमहंस रामकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और नरेन्द्र को बहुत आशीर्वाद दिया। परमहंस को विश्वास हो गया कि इसके अन्दर बहुत बड़ी पवित्र आत्मा है।

इस दिन से नरेन्द्र ब्राह्म-समाज की उपासना में सम्मिलित होते और मौका पाकर परमहंस रामकृष्ण के पास जाकर धर्म चर्चा किया करते। कभी-कभी ध्यान करते करते इतना तन्मय हो जाते कि अपने शरीर की सुधि-बुधि भूल जाते।

इक्कीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की। इनके पिता वकील थे, इसलिए पिता की आज्ञानुसार इन्होंने भी कानून पढ़ना शुरू किया, परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद इनके पिता ने शरीर त्याग किया। यह बड़े खर्चीले स्वभाव के थे, जो कुछ कमाते थे, वह खर्च कर डालते थे। इसलिये इनके पास कुछ जमा न था। जब यह मर गये तो इनके परिवार को बड़े कष्ट से दिन बिताना पड़ा। थोड़े ही दिनों में यहाँ तक नौबत पहुँची कि नरेन्द्र और उनकी माँ वगैरह को किसी-किसी दिन भूखा भी रहना पड़ता। लेकिन इतने पर भी ये लोग किसी से कुछ माँगते न थे। और न अपने दुःख की बात ही किसी से कहते।

गुरु दीक्षा और सन्यास

इनके पिता जब जीते थे, तो उन्होंने कई बार नरेन्द्र की शादी करने की इच्छा की। नरेन्द्र की शादी करने

की बिलकुल इच्छा न थी, इधर जब जब पिता ने इनके ब्याह की बात-चीत चलाई, तब-तक कोई-न-कोई विघ्न खड़ा हो जाता। जब परमहंस के यहाँ यह आने जाने लगे और उनके उपदेशों को सुनने लगे तो इन्होंने पक्का इरादा कर लिया कि शादी कभी न करूँगा, संसार छोड़ कर संन्यासी होऊँगा।

वह परमहंस रामकृष्ण के पास ज्यों ज्यों आने लगे, उनपर वह आकर्षित होने लगे, उनके पास न जाने से उनकी तबियत उलट जाती। परमहंस रामकृष्ण भी नरेन्द्र को इतना चाहने लगे कि नरेन्द्र को देखे बिना उन्हें चैन न मिलती। वह नरेन्द्र में नारायण का दर्शन करते। कभी-कभी इन्हें देखकर वह कहा करते, "तुम शिव हो, मैं शक्ति हूँ।"

नरेन्द्र ईश्वर के दर्शन के लिए बहुत तरसा करते थे, उन्होंने परमहंस से एक दिन कहा, "क्या आपने ईश्वर का दर्शन किया है!" रामकृष्ण ने छूटते ही कहा, "हाँ, मैंने देखा है। जिस तरह तुम मेरे सामने खड़े हो, तुम्हें मैं जिस तरह देख रहा हूँ, उसी तरह उसे भी देख रहा हूँ। मैं खुद तो उसे देख रहा हूँ, तुम्हें भी मैं दिखा सकता हूँ।" नरेन्द्र ने यह प्रश्न कई लोगों से किया था, लेकिन कोई भी उन्हें ठीक-ठीक उत्तर देने में समर्थ न हुआ था। परमहंस की बात सुनकर वह बहुत सन्तुष्ट हुए।

रामकृष्ण देव बहुत उचित वक्ता थे, सच बात कहने में वह किसी का लिहाज न करते थे। नरेन्द्र भी ऐसे ही स्पष्ट वक्ता थे। यही क्यों, परमहंस से भी कहने में संकोच न करते थे। नरेन्द्र के इस व्यवहार से परमहंस बहुत प्रसन्न रहा करते थे।

नरेन्द्र ने देखा कि अब पढ़ना-लिखना बेकार है, इस पढ़ाई से मुझे कोई लाभ नहीं हो सकता, मुझे संसार में रहकर वकालत करके धन कमाना तो है नहीं, इसलिए उन्होंने वकालत पढ़ना छोड़ दिया। अब से वह परमहंस के पास ज्यादा समय बिताने लगे। यहाँ से जो समय बचता, शास्त्रों के अध्ययन में लगाते। परमहंस नरेन्द्र से वेदान्त शास्त्र के मूलतत्वों को बताया करते। नरेन्द्र के मन में जो प्रश्न उठा करते, जिनका उचित उत्तर न पाकर उनका चित्त अशांत बना रहता था, रामकृष्ण के उपदेशों को सुनकर उनकी अशान्ति दूर होने लगी, वह संसार से बिल-कुल विरक्त होने लगे।

इधर उनकी विरक्ति देखकर उनकी माता बहुत चिंतित रहने लगीं। उन्होंने उनकी उदासीनता दूर करने के लिए बहुत प्रयत्न किया, परन्तु सफल न हो सकीं। अन्त में नरेन्द्र का ब्याह कर उन्हें संसार में फँसाना चाहा। लेकिन नरेन्द्र किसी भी तरह ब्याह करने को राजी न हुए। तब

उनकी माता बहुत रोने-धोने लगीं। जब नरेन्द्र ने देखा कि अब घर छोड़े बिना निस्तार नहीं तो वह रामकृष्ण के पास पहुँचे और बोले, "भगवान्, जिस संसार के बन्धन को तोड़कर मैं संसार की सेवा करना चाहता हूँ, उसी में बाँधने की तैयारी हो रही है। अब आपको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं दीखता, जो इस आफत से मुझे बचाये। अब आप शीघ्र ही मुझे सन्यास ग्रहण करने की आज्ञा दीजिये।" स्वामी जी नरेन्द्र की हालत को समझ गये। उन्होंने नरेन्द्र को संन्यास धर्म की दीक्षा दे दी। गुरु ने उनका नाम विवेकानन्द रखा। गुरु ने देखा संसार के लोग माया के बन्धन में पड़कर नाना प्रकार के दुख सह रहे हैं, इसलिए उन्हें बन्धन से छुड़ाना सन्यासी का—साधु का—परम धर्म है। इसलिये उन्होंने विवेकानन्द से कहा—"बेटा, सारे संसार के लोग मोहरूपी अन्धकार में पड़े हैं, उन्हें वेदान्त रूपी प्रकाश देकर शान्ति पहुँचाओ।"

स्वामी रामकृष्ण ने अपनी साधना और तपस्या से जो शक्ति प्राप्त की थी, उसे मरने से पहले अपने योग्य और प्रिय शिष्य नरेन्द्र को दे गये। जिस तरह एक दरिद्र का लड़का गोद लिए जाने पर बड़ी भारी सम्पत्ति का मालिक बन बैठता है उसी तरह नरेन्द्र बिना विशेष प्रयत्न किये ही रामकृष्ण के अधिकारी बन बैठे।

मरने के पहले रामकृष्ण नरेन्द्र से बोले, "नरेन्द्र, आज से मैं भिखारी हो गया।" यह कहते-कहते रो पड़े। इसमें सन्देह नहीं कि रामकृष्ण परमहंस की दी हुई शक्ति के बल-पर ही स्वामी विवेकानन्द इतना आश्चर्यजनक कार्य करने में समर्थ हो सके थे।

सन् १८८६ ई० की १६ वीं अगस्त रविवार को परम हंस ने शरीर त्याग किया। उसी दिन उन्होंने नरेन्द्र के सारे सन्देह को दूर किया। लोगों का ऐसा विश्वास था कि परमहंस रामकृष्ण अवतारी पुरुष हैं। मरने के समय नरेन्द्र उनके पास खड़े होकर सोचने लगे, क्या यह सच-मुच अवतारी पुरुष हैं? मरने के पहले अगर यह कह दें कि मैं अवतार हूँ तो मैं विश्वास कर सकता हूँ कि यह अवतार हैं। परमहंस रामकृष्ण नरेन्द्र के दिल की बात जानकर बोले—"नरेन्द्र, क्या आज भी तुम्हें विश्वास न हुआ? जो राम हैं, जो कृष्ण हैं, वही इस देह में रामकृष्ण हैं।" यह सुनकर नरेन्द्र का संदेह दूर हुआ। उनके मरने के बाद उन्हें सदा पछतावा होता कि मेरे दिल में ऐसा अविश्वास क्योंकर पैदा हुआ।

गुरुदेव के मर जाने पर काशीपुर के बगीचे में विवेका-नन्द ने अपने गुरु-भाइयों के साथ कुछ दिन ध्यान-धारणा में बिताया। गुरु ने सबको उपदेश देने का भार उन्हीं को

दिया था, इसलिये वह गुरु की आज्ञा का पालन करने लगे। गुरु ने उनके अन्दर जो शक्ति भर दी थी, लोक हितैषिता का जो बीज बो दिया था, वह शीघ्र ही अंकुरित होने लगा। कुछ दिन वहाँ पर रहने के बाद विवेकानन्द ने सोचा कि एक स्थान पर रहने से लाभ नहीं, इसलिये वह अपने गुरु की आज्ञा पालन के लिए बाहर निकल पड़े।

भ्रमण

विवेकानन्द ने सोचा कि पहले हिमालय पर जाकर कुछ दिन योग साधन करूँ, भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर वहाँ के आचार-व्यवहार से परिचित होऊँ। वह हिमालय पहाड़ पर जाकर दो वर्ष तक योग-साधन करते रहे। फिर बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिये तिब्बत पहुँचे। वहाँ से वह भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमने लगे।

घूमते-घूमते वह अलोयर पहुँचे। वहाँ के महाराज के दीवान से उनकी मुलाकात हुई। दीवान के द्वारा महाराज को भी पता चला कि अँगरेजी जानने वाले एक संन्यासी आये हैं। उनसे भेंट करने की इच्छा हुई—वह स्वामी जी को देखने के लिए आये।

राजा साहब अँगरेजी भाषा के विद्वान होने के साथ-साथ पूरे साहब थे। उनके हृदय में धार्मिकता बिल्कुल न थी। साहबों की तरह शिकार खेलना ही उन्होंने अपने

जीवन का उद्देश्य समझ रखा था। राजकाज में किन्तु मन नहीं लगाते थे।

महाराज ने आते ही स्वामी जी से पूछा, "मैंने सुना है, आप बड़े विद्वान हैं। तो धन कमाना छोड़ कर भीख क्यों माँगते हैं?"

प्रश्न सुनते ही स्वामीजी साहस के साथ बोले— "आप राजकाज न करके शिकार क्यों करते फिरते हैं?'

स्वामीजी के उत्तर को सुनकर जो लोग वहाँ पर मौजूद थे, वह डर और आश्चर्य से भर गये। राजा भी एक नये संन्यासी का इस तरह जवाब देना देख सकपका गये। इसके बाद शांत भाव से बोले, "मुझे अच्छा लगता है, इसी से ऐसा करता हूँ।"

स्वामी जी ने जवाब दिया, "मुझे भी अच्छा लगता है, इसी से यह काम करता हूँ।"

इसके बाद बहुत बातें हुईं। राजा स्वामीजी से बोले कि मूर्ति-पूजा पर मेरा विश्वास नहीं। ईंट, काठ, पत्थर की पूजा पर मेरा विश्वास नहीं होता। राजा की यह बात सुनकर स्वामी विवेकानन्द दीवाल पर से महाराजा का चित्र उतारकर दीवान से बोले, "यह किसका चित्र है?" दीवान जी बोले, "यह महाराजा साहब का फोटो है।" जो लोग वहाँ मौजूद थे उन लोगों से स्वामीजी ने फोटो पर थूकने

के लिए कहा। लेकिन किसी ने भी वैसा करने का साहस नहीं किया। विस्मय और डर के मारे सभी घबरा उठे।

तब स्वामीजी बोले, "चित्र में तो महाराजा साहब नहीं हैं? तो भी इस पर कोई थूकने की हिम्मत नहीं करता, इसका एकमात्र कारण यही है कि सब लोग यह सोचते हैं कि ऐसा करने से जिसका यह चित्र है, उसका भी अपमान होगा।" इसके बाद महाराज से बोले, "महाराजा साहब, चित्र आप नहीं हैं बल्कि उसके छवि हैं। आप मौजूद न भी हों, तो भी इस चित्र को देखकर लोग पहचान लेंगे। इसे कोई साधारण कागज नहीं समझता। सभी इसे आपके आकार का चित्र समझकर आपही की तरह इसका सम्मान करते हैं। मूर्ति पूजा भी ऐसा ही है। कोई ईंट, पत्थर या काठ की पूजा नहीं करता, बल्कि अपने इष्टदेव के अनुरूप मूर्ति बनाकर पूजता है। उसी मूर्ति में वह अपने इष्टदेव की छाया देख पाते हैं, ईंट-पत्थर को नहीं देखते। जो मूर्ति की पूजा करते हैं, वे क्या कभी यह कहते हैं, "हे ईंट, हे पत्थर, हे काठ मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ, तुम मुझ पर दया करो।"

स्वामी जी का उत्तर सुनकर महाराज साहब बोले, 'आज आपने मेरे हृदय के अंधकार को दूर कर दिया, मेरी आँखें खोल दीं।"

भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमने से कई राजाओं

महाराजाओं से स्वामी जी का विशेष परिचय हो गया। सभी विशेष श्रद्धा और भक्ति के साथ इस नये संन्यास की इज्जत करते थे। इसी भ्रमण काल में वह राजपूताने की खेतड़ी रियासत में पहुँचे। खेतड़ी राज्य जयपुर से ६० मील की दूरी पर है। वहाँ के राजा के एक कर्मचारी जगमोहन लाल स्वामी जी के दर्शन के लिए आये। स्वामीजी की विद्वता और अपूर्व शक्ति को देख कर उन पर प्रभाव पड़ा। उन्होंने महाराज से स्वामीजी के दर्शन करने की इच्छा जाहिर की। तब जगमोहन लाल ने स्वामीजी पर महाराज की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने महाराज की इच्छा पूरी की। वह महाराजा साहब के यहाँ पधारे। महाराजा ने उनकी बड़ी आव-भगत की।

महाराजा साहब बड़े विद्वान और योग्य पुरुष थे। वह लोगों की परख रखते थे। उन्होंने स्वामीजी की परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने स्वामीजी से पूछा, "जीवन क्या है?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया, "किसी मनुष्य के अपना रूप प्रकट करने पर जो शक्तियाँ उसे दबाती हैं, उन शक्तियों से लोहा लेकर उसे पछाड़ती हैं, और अपना प्रकाश दिखलाती हैं, उसे जीवन कहते हैं।"

इसी तरह से कई प्रश्नों के उत्तर स्वामीजी ने बड़ी योग्यता के साथ दिया। आज तक महाराज के प्रश्नों का उत्तर किसी ने इतनी सफाई के साथ नहीं दिया था। स्वा

जी का महाराजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह स्वामीजी पर मुग्ध हो गये। उन्होंने स्वामीजी से वहीं पर रह कर ज्ञानोपदेश करने के लिए कहा। परन्तु स्वामीजी रहने को राजी न हुए। फिर भी वहाँ दो मास के लगभग रहना ही पड़ा। महाराज स्वामीजी के शिष्य भी हो गये।

जब स्वामीजी चलने को तैयार हुए तो महाराज हाथ जोड़कर खड़े हो गये। स्वामी जी ने पूछा "कहिये, आप क्या कहना चाहते हैं?" महाराज ने कहा, "स्वामीजी, मेरे कोई संतान नहीं। मुझे आशीर्वाद दें कि मुझे संतान हो।" स्वामीजी ने अशीर्वाद दिया कि आप को पुत्र होगा।

यहाँ से स्वामीजी गुजरात गये, फिर वहाँ से बम्बई। वहाँ से मैसूर, कोचीन, मदुरा को गये। सभी स्थानों पर स्वामीजी का बड़ा आदर सत्कार हुआ। जनता ने स्वामी जी के भाषणों को बड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ सुना। मैसूर के महाराज पर स्वामीजी का बड़ा असर पड़ा। वह स्वामीजी के बड़े भक्त हो गये।

मदुरा से स्वामी जी रामनद गये। यहाँ के राजा भास्कर सेनापति से स्वामी जी की मुलाकात हुई। महाराज स्वामी जी की विद्या बुद्धि देखकर मुग्ध हो गये। इन्होंने भी इनकी शिष्यता ग्रहण की।

उस समय अमेरिका के संयुक्त र[illegible] के शिकागो नामक शहरों में "सर्व धर्म सभा" नामक एक बड़ी भारी सभा

होने की सूचना पत्र में प्रकाशित हुई थी। संसार के सभी धर्मों के विद्वान उस सभा में उपस्थित होकर अपने अपने धर्म की बातों को रखें, यही उस सभा का उद्देय था। रामनद के महाराज ने स्वामीजी से आग्रह किया कि आप भी अमेरिका जाकर सभा में भाग लें। उन्होंने स्वामीजी को आने-जाने का सारा खर्च देना भी स्वीकार किया।

स्वामीजी सेतुबन्धु देखने के लिए बहुत ही उत्सुक थे, इसलिए वह महाराजा की प्रार्थना को पीछे रख कर पहले रामेश्वर गये। वहाँ से कन्या-कुमारी अन्तरीप गये। यहाँ उनके पास एक कौड़ी भी न थी, इसलिये "काली की जय" बोलकर समुद्र में कूद पड़े और पारकर मन्दिर में जा पहुँचे और दर्शन किया।

एक बार बनारस में स्वामी विवेकानन्द का बहुत बानरों ने पीछा किया। स्वामीजी डरकर भाग खड़े हुए। उन्हें डरा हुआ जानकर बन्दरों का साहस बढ़ा। वह अच्छी तरह उनका पीछा करने लगे। तब एक संन्यासी ने पीछे से उन्हें खड़ा हो जाने के लिए कहा। स्वामीजी झट खड़े हो गये। तब बानर भाग खड़े हुए। उस समय से स्वामीजी कहा करते थे कि विपत्ति देख कर उसे पीठ दिखाना ठीक नहीं, बल्कि छाती खोलकर उसका सामना करना चाहिये। अपने जीवन में इन्होंने उस संन्यासी की शिक्षा

का पालन करके बहुत बार विपत्तियों में रक्षा पाई थी। समुद्र में कूद उसे पार करना उसी उपदेश का फल था। इसी भारत-भ्रमण के समय एक बार स्वामीजी रेल गाड़ी पर चढ़कर राजपूताने जा रहे थे। जिस डब्बे में स्वामीजी थे उसी में दो अंग्रेज भी थे। साहबों ने समझा कि यह भी और साधुओं की तरह जाहिल है। इसलिए वह दोनों अंग्रेजी में स्वामीजी का मज़ाक उड़ाने लगे, उन पर गन्दे शब्दों का बौछार करने लगे। इतने में गाड़ी एक स्टेशन पर पहुँची। स्वामीजी ने स्टेशन मास्टर से एक गिलास पानी माँगा। दोनों साहबों ने स्वामीजी के मुंह से साफ अंग्रेजी सुनकर जान लिया कि इन्होंने हम लोगों की सारी बातें समझ ली है, फिर भी उनका धैर्य नहीं टूटा है। उन लोगों ने आश्चर्य में भर कर स्वामीजी से पूछा, "इतनी कड़ी बातें सुनकर आपसे चुप कैसे रहा गया है?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया, "मैंने तुम लोगों जैसे बहुत से मूर्ख देखे हैं, इसलिए मैंने चुप रहना ही मुनासिब समझा।" जो लोग एक बेकसूर आदमी को अब तक गालियाँ दे रहे थे, वे स्वामीजी की एक कड़ी बात न सह-कर लाल-लाल हो उठे और मारपीट करने के लिए तैयार हो गये। स्वामीजी भी 'आओ' कहकर आस्तीन चढ़ा कर खड़े हो गये। उस समय उनके मजबूत बाहों को देखकर

की बोलती बन्द हो गई। उन लोगों ने चटपट माफी माँगी और अपने कार्य के लिए खेद प्रकट किया।

इस प्रकार सब स्थानों में घूमते हुए स्वामीजी मद्रास पहुँचे। वहाँ क्रिश्चियन कालेज के ईसाई प्रोफेसर थे जिनका नाम प्रो० मुदालियर था। प्रोफेसर साहब को ऐसा पक्का विश्वास था कि कोई आदमी उन्हें धार्मिक विवाद में हरा नहीं सकता। जब उन्होंने सुना कि हिन्दू-धर्म पर व्याख्यान देने वाले एक संन्यासी आये हैं, तो वह स्वामीजी से बहस करने को आये। उस दिन स्वामीजी ने थोड़े ही शब्दों में—थोड़े समय में ऐसी बातें कह डालीं कि उन बातों को सुनकर मुदालियर महोदय के मुंह से एक शब्द न निकला। केवल उनके नेत्रों से आँसू गिरने लगे। वह विवेकानन्द के शिष्य बन गये। अन्त में 'प्रबुद्ध भारत' नामक पत्र निकाल कर स्वामीजी के धर्म-प्रचार कार्य में हाथ बँटाने लगे। वह भी सन्यासी बन कर दीन-दुखियों की सेवा में अपने जीवन को सफल बनाने लगे।

यहाँ पर बहुत से लोग स्वामीजी के शिष्य थे। शिष्यों के अनुरोध से वह सर्व-धर्म सम्मेलन में जाने की तैयारी करने लगे। इसी बीच में उन्हें हैदराबाद से निमंत्रण मिला। वहाँ जाने पर उन्हें बड़ा आदर-सम्मान मिला। उनकी सुन्दर वक्तृता को सुनकर वहाँ की जनता ने स्वामीजी को अमेरिका जाने का खर्च देना स्वीकार किया।

स्वामीजी किसी से रुपये-पैसे न लेते थे। बहुत होता तो किसी से रेल-सफर का खर्च ले लेते। जब कोई बहुत आग्रह करता तो उससे कहते कि जरूरत पड़ने पर आपको सूचित करूँगा। हैदराबाद की वक्तृता पर मुग्ध होकर निज़ाम घराने के एक सरदार ने उनको एक हजार रुपये देना चाहा, पर स्वामीजी ने उसे भी वही उत्तर दिया।

जब अमेरिका जाना स्थिर हो गया तो स्वामीजी ने अपने गुरु परमहंस रामकृष्ण की स्त्री को पत्र लिखकर आज्ञा माँगी। उन्होंने तुरन्त अमेरिका जाने की आज्ञा दे दी। इधर शिष्य लोग राहखर्च के लिये रुपये इकट्ठे करने लगे।

ऊपर कह आये हैं कि स्वामीजी ने खेतड़ी के महाराज को आशीर्वाद दिया था कि आपको पुत्र होगा। सौभाग्य से थोड़े ही दिनों बाद महाराज को पुत्र हुआ। सारे राज्य में खुशी छा गई। महाराज ने इस शुभ अवसर पर अच्छा उत्सव करना निश्चय किया, परन्तु स्वामीजी की उपस्थिति के बिना सारा उत्सव फीका होता। इसलिये महाराज ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी जगमोहन लाल को स्वामीजी के पास भेजा। स्वामीजी उस समय अमेरिका जाने की तैयारी में लगे थे। जगमोहन लाल ने स्वामीजी के पास पहुँच कर महाराज की प्रार्थना कह सुनाई। स्वामीजी असमंजस में पड़ गये। बोले, मैं तो अमेरिका जाने की तैयारी कर

की बोलती बन्द हो गई। उन लोगों ने चटपट माफी माँगी और अपने कार्य के लिए खेद प्रकट किया।

इस प्रकार सब स्थानों में घूमते हुए स्वामीजी मद्रास पहुँचे। वहाँ क्रिश्चियन कालेज के ईसाई प्रोफेसर थे जिनका नाम प्रो० मुदालियर था। प्रोफेसर साहब को ऐसा पक्का विश्वास था कि कोई आदमी उन्हें धार्मिक विवाद में हरा नहीं सकता। जब उन्होंने सुना कि हिन्दू-धर्म पर व्याख्यान देने वाले एक संन्यासी आये हैं, तो वह स्वामीजी से बहस करने को आये। उस दिन स्वामीजी ने थोड़े ही शब्दों में—थोड़े समय में ऐसी बातें कह डालीं कि उन बातों को सुनकर मुदालियर महोदय के मुंह से एक शब्द न निकला। केवल उनके नेत्रों से आँसू गिरने लगे। वह विवेकानन्द के शिष्य बन गये। अन्त में 'प्रबुद्ध भारत' नामक पत्र निकाल कर स्वामीजी के धर्म-प्रचार कार्य में हाथ बँटाने लगे। वह भी सन्यासी बन कर दीन-दुखियों की सेवा में अपने जीवन को सफल बनाने लगे।

यहाँ पर बहुत से लोग स्वामीजी के शिष्य थे। शिष्यों के अनुरोध से वह सर्व-धर्म सम्मेलन में जाने की तैयारी करने लगे। इसी बीच में उन्हें हैदराबाद से निमंत्रण मिला। वहाँ जाने पर उन्हें बड़ा आदर-सम्मान मिला। उनकी सुन्दर वक्तृता को सुनकर वहाँ की जनता ने स्वामीजी को अमेरिका जाने का खर्च देना स्वीकार किया।

स्वामीजी किसी से रुपये-पैसे न लेते थे। बहुत होता तो किसी से रेल-सफर का खर्च ले लेते। जब कोई बहुत आग्रह करता तो उससे कहते कि जरूरत पड़ने पर आपको सूचित करूँगा। हैदराबाद की वक्तृता पर मुग्ध होकर निजाम घराने के एक सरदार ने उनको एक हजार रुपये देना चाहा, पर स्वामीजी ने उसे भी वही उत्तर दिया।

जब अमेरिका जाना स्थिर हो गया तो स्वामीजी ने अपने गुरु परमहंस रामकृष्ण की स्त्री को पत्र लिखकर आज्ञा माँगी। उन्होंने तुरन्त अमेरिका जाने की आज्ञा दे दी। इधर शिष्य लोग राहखर्च के लिये रुपये इकट्ठे करने लगे।

ऊपर कह आये हैं कि स्वामीजी ने खेतड़ी के महाराज को आशीर्वाद दिया था कि आपको पुत्र होगा। सौभाग्य से थोड़े ही दिनों बाद महाराज को पुत्र हुआ। सारे राज्य में खुशी छा गई। महाराज ने इस शुभ अवसर पर अच्छा उत्सव करना निश्चय किया, परन्तु स्वामीजी की उपस्थिति के बिना सारा उत्सव फीका होता। इसलिये महाराज ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी जगमोहन लाल को स्वामीजी के पास भेजा। स्वामीजी उस समय अमेरिका जाने की तैयारी में लगे थे। जगमोहन लाल ने स्वामीजी के पास पहुँच कर महाराज की प्रार्थना कह सुनाई। स्वामीजी असमंजस में पड़ गये। बोले, मैं तो अमेरिका जाने की तैयारी कर

रहा हूँ, फिर उधर कैसे चलूं। परन्तु जगमोहनलाल बहुत अनुरोध करने लगे। स्वामीजी से कहा, चलिये अमेरिका की सारी तैयारी महाराज साहब करवा देंगे। तब स्वामीजी खेतड़ी को रवाना हुए। खेतड़ी पहुँचकर स्वामीजी महाराज के पुत्रोत्सव मे शामिल हुए और बच्चे को आशीर्वाद दिया। इस उत्सव में कई दिन बीत गये।

अमेरिका-यात्रा

स्वामीजी ने यहाँ से अमेरिका के लिये प्रस्थान किया। स्वयं महाराजा साहब जयपुर तक स्वामीजी को पहुँचाने आये। फिर जगमोहन लाल को स्वामीजी के साथ कर दिया कि वह बम्बई तक स्वामीजी को पहुँचा आवें। सन् १८९३ ई० की ३१ वीं मई को स्वामीजी ने "पेनिनसुला" नामक जहाज पर चढ़कर अमेरिका को प्रस्थान किया।

कई दिनों बाद समुद्र पर अठखेलियाँ करता हुआ जहाज उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी किनारे पर वैंकुवर बन्दरगाह पर लगा। यहाँ से रेल पर चढ़कर तीन दिन में स्वामीजी वहाँ के फर्स्ट क्लास के एक होटल में ठहरे। स्वामीजी के लिये यह देश तथा यहाँ के निवासी सभी नये थे; वैसे ही अमेरिका वासियों के लिये स्वामीजी एक अजीब आदमी थे। उनका घुटा हुआ सर, गेरुआ वस्त्र उनकी चाल-ढाल सभी बातें अमेरिकनों के लिये एक

तमाशा थीं। जब आप सड़क पर चलते तो उनके पहनावे को देखकर लोग उनपर फब्तियाँ कसते। इन बातों को सहने के अलावा कोई चारा न था।

शिकागो पहुँचने पर उन्हें पता चला कि धर्मसभा में उनका शामिल होना बहुत मुश्किल है, क्योंकि उसमें वही लोग भाग ले सकते हैं जो किसी धर्म की ओर से प्रतिनिधि बनाकर भेजे गये हैं। यह जानकर वह बहुत उदास हुए कि फ़जूल में हैरान हुआ, इतना धन खर्च किया। वह कुछ स्थिर न कर सके। यहाँ से वह बोस्टन शहर में पहुँचे।

वह बोस्टन शहर के पास एक सड़क पर उदास होकर घूम रहे थे। एक बुढ़िया को उन्हें देखकर दया आई। उसने स्वामीजी को अपने घर पर आश्रय दिया। स्वामीजी दिन-रात इसी चिन्ता में रहने लगे कि किस तरह धर्म महासभा में शामिल होऊँ।

स्वामीजी उस अमेरिकन महिला से दार्शनिक बातों पर बातचीत किया करते। परन्तु ऐसे गूढ़ विषय उसकी समझ में न आते, इसलिये उसने दर्शन शास्त्र के एक प्रोफेसर से स्वामीजी की बात चलाई और स्वामीजी से बात करने के लिये कहा। प्रोफेसर साहब का नाम मि० जे० एच० राइट था। यह हावर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे। यह स्वामीजी से भेंट करने आये। स्वामीजी

से बातचीत करने पर यह बहुत प्रभावित हुए। इन्होंने स्वामीजी को सर्व-धर्म-सभा में सम्मिलित करने के लिए प्रयत्न करना शुरू किया।

जो धर्म-सभा में प्रतिनिधियों को निमंत्रित करते थे वह प्रोफेसर साहब के मित्र थे। उन्हीं के नाम प्रोफेसर साह ने एक पत्र दिया। पत्र में स्वामीजी की विद्या, बुद्धि आ बातों की तारीफ करते हुए उन्हें सभा में सम्मिलित कर के लिये लिखा। स्वामीजी पत्र लेकर शिकागो को चले

रास्ते में वह परिचय वाला पत्र गायब हो गया इसलिये शिकागो पहुँचने पर स्वामीजी फिर विपत्ति पड़ गये। वहाँ उनका कोई जान पहचान का न था अगर किसी से कुछ पूछते भी, तो कोई ठीक तरह जवाब न देता। स्वामीजी शाम को शिकागो पहुँचे थे जब कहीं आश्रय न मिला तो फिर स्टेशन को लौट गये अब उनके सामने सवाल था कि रात किस तरह गुजारें उनके पास ओढ़ने का काफी सामान न था। स्टेशन प ढूँढ़ने पर एक खाली सन्दूक मिला। उसी सन्दूक में घु कर उन्होंने सारी रात गुजार दी। दूसरे दिन फिर खोज पूछ में चले। पूछने पर लोग उनसे हँसी-मजाक करते इस तरह वह एक जगह से दूसरी जगह को धक्का खा रहे। भूख और प्यास से लथपथ हो गये और रास्ते एक बगल में बैठ गये।

जहाँ पर वह बैठे थे, उसी के सामने एक ऊँची हवेली थी। स्वामी जी रास्ते पर बैठ कर अपनी हालत और इस समय क्या कर्तव्य है, आदि बातों पर सोच-विचार करते थे, इतने में सामने की हवेली से एक स्त्री ने आकर उनसे पूछा, "क्या आप सर्व-धर्म सभा के प्रतिनिधि हैं!" उस स्त्री ने स्वामीजी के गेरुए कपड़े, तेज से चमकते हुए चेहरे को देखते ही जान लिया कि यह धर्म-सभा में शामिल होने के लिये आये हैं। इस उदार हृदयशाली स्त्री का नाम था मिसेज जार्ज डबल्यूहल। स्वामीजी ने इस स्त्री से अपनी सारी कथा कह सुनाई। स्वामीजी की सारी निराशा दूर हो गई। वह उस धर्म-सभा में सम्मिलित हुए।

सर्व-धर्म सम्मेलन में भाषण

सन् १८९३ ई० की ११ वीं सितम्बर को धर्म सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। इस सभा में प्रायः सभी देशों के प्रतिनिधि आये थे। इसी सभा में स्वामी जी ने जो भाषण दिया था, उससे दुनिया भर में स्वामी जी का सिक्का बैठ गया। २ नवम्बर सन् १८९३ ई० को एक पत्र हिन्दुस्तान को भेजा था उससे उस सभा पर अच्छा प्रकाश पडता है। उस पत्र में स्वामीजी ने लिखा था, "जिस दिन सभा की कार्यवाही आरम्भ होने को थी, उस दिन सबेरे हम सब प्रतिनिधि आर्ट पैलेस नामक सुन्दर बड़े कमरे में इकट्ठे हुए। सभा के लिए एक अच्छा मंडप तैयार किया

गया था और उसके चारों ओर दूसरे छोटे-छोटे मंडप भी तैयार किये गये थे। अपने देश से ब्रह्मसमाज की ओर से श्रीयुत मजूमदार, बम्बई के श्रीयुत नगरकर, जैन धर्म के प्रतिनिधि श्रीयुत गाँधी और थियासोफ़ी सोसाइटी की ओर से श्रीमती एनी-बेसेन्ट तथा श्रीयुत चक्रवर्ती आदि लोग आये हुए हैं। इनमें से श्रीयुत मजूमदार से मेरी पहले से ही पहिचान थी और श्रीयुत चक्रवर्ती मेरे नाम से परिचित थे। इसके बाद हम लोगों ने जुलूस की धूम धाम के साथ सभा-मंडप में प्रवेश किया। हमारे बैठने के लिए जो स्थान बने थे उस पर जा कर बैठ गये। हमारे आस-पास छः सात सौ विद्वान् अमेरिकन बैठे हुए थे। यह समाज देखकर मैं दङ्ग रह गया। इसी समाज में मैं व्याख्यान देने वाला था। मेरा दिल धड़कने लगा और जीभ तो बिलकुल सूख कर तलुए में जा लगी। श्रीयुत मजूमदार का व्याख्यान बहुत सुन्दर हुआ, चक्रवर्ती उनसे भी अच्छा बोले। जनता ने भी उन दोनों का भाषण बड़े प्रेम से सुना। उन लोगों ने अच्छी तैयारी की थी। अपने व्याख्यान को अच्छी तरह याद कर लिया था। मुझ मूर्ख को यह बात पहले न सूझी और अन्त में वह मौका आ ही पहुँचा। डाक्टर बेरोज ने पहले श्रोताओं को मेरा परिचय दिया। मैंने मन ही मन देवी सरस्वती की वन्दना कर व्याख्यान शुरू किया—"अमेरिका के मेरे प्यारे भाई-बहनो!"

इस तरह से किसी वक्ता ने बोलना नहीं शुरू किया था। दो मिनट तक तालियों की गड़गड़ाहट के मारे कान की झिल्लियाँ फटती रहीं। मैं अपना व्याख्यान जैसे-तैसे करके खतम कर जब बैठ गया, तब जान पड़ा कि जैसे बड़ा भारी बोझा मेरे सिर पर से उतर गया हो। दूसरे दिन के समाचार-पत्रों को देखा तो मुझे मालूम हुआ कि मेरा व्याख्यान सबसे अच्छा रहा। इस दिन से मैं प्रसिद्ध लोगों में गिना जाने लगा। जिस दिन मैंने अपना वेदान्त पर लेख पढ़ा उस दिन तो बहुत ज्यादा भीड़ थी। समाचार-पत्रों ने भी मेरी खूब तारीफ की थी। सभ्य स्त्रियाँ तो बहुत ज्यादा आई थीं। उस सम्मेलन के सभी व्याख्यान-दाताओं में उत्तम व्याख्यान देने के कारण प्रायः सभी अखबार मेरी प्रशंसा कर रहे हैं।"

स्वामीजी ने सम्मेलन में ६-७ दिन व्याख्यान दिये। हर रोज स्वामीजी का भाषण सुनने के लिए श्रोता लोग रात के दस बजे तक पंडाल में बैठे रहते। ज्योंही वह बोलने को खड़े होते, तालियों की गड़गड़ाहट से सारा मण्डप गूँज उठता। वास्तव में उस सभा में आप जैसा सुन्दर भाषण करने वाला कोई न था। सारे अमेरिका भर में स्वामीजी की कीर्ति गूँज उठी। जहाँ देखिये, स्वामीजी की ही चर्चा हो रही है। अनेकों सभा-सोसाइटियों की ओर से स्वामीजी के पास निमंत्रण आने लगे। हजारों लोग

स्वामीजी से भेंट करने के लिए आने लगे। इस सम
स्वामीजी की अवस्था केवल तीस वर्ष की थी।

स्वामीजी ने जो लगातार भाषण दिये उनसे अ
रिकन पत्रों ने बहुत प्रशंसा लिखी। बास्टन इवनि
टान्टक्रिप्ट नामक पत्र ने अपने ५ अप्रैल सन् १८९४ ई
के अंक में लिखा था—"स्वामी विवेकानन्द सचमुच ए
बहुत बड़े विद्वान् हैं। धर्म-सम्मेलन में जितने व्याख्या
आये थे, उनमें उनके टक्कर का कोई न था।"

न्यूयार्क हेराल्ड ने लिखा था—"स्वामी विवेकान
वास्तव में एक महान् पुरुष हैं। उनके व्याख्यान सुनने
बाद हमारी यह धारणा हो गई है कि भारत-जैसे शि
देश में पादरियों को भेजना कितनी नादानी का काम है।"

धर्म-सम्मेलन के सभापति महोदय, जो हिन्दुस्तानिय
को बिलकुल असभ्य समझते थे और जिन्होंने बड़ी कोशिश
के बाद स्वामी विवेकानन्द को धर्मसम्मेलन का प्रतिनिधि
स्वीकार किया था, उन्होंने लिखा था—"सचमुच भार
धर्मों को जन्म देनेवाला है। उस धर्म के प्रतिनिधि स्वामी
विवेकानन्द ने अपने व्याख्यानों से जनता पर बड़ा अच्छ
असर डाला है।"

यों तो डाह सभी जातियों में होती है, लेकि
हिन्दुस्तानियों में इसकी मात्रा ज्यादा पाई जाती है। जे
लोग हिन्दुस्तान से प्रतिनिधि बनकर गये थे, उन्हें स्वामी

जी की इतनी नामवरी सही नहीं गई। उन लोगों ने सोचा कि किसी तरह स्वामी विवेकानन्द को नीचा दिखाना चाहिए। स्वामीजी ने हिन्दूधर्म पर जो भाषण दिया था, उससे हिन्दू-धर्म के विरोधियों की आँखें खुल गई थीं, सभी लोग आश्चर्य से भर गये थे। लेकिन विवेकानन्द के यश से जो हिन्दू प्रतिनिधि जल-भुन गये थे वे स्वामी जी सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें उड़ाने लगे। उन लोगों ने स्वामी जी को यह कहकर सभा से निकलवाना चाहा कि स्वामीजी जो कुछ कह रहे हैं, वह उनकी मनगढ़न्त बातें हैं, वह हिन्दू धर्म नहीं है। परन्तु उन लोगों ने यह नहीं सोचा कि सूर्य पर थूकने से वह अपने ही ऊपर पड़ता है। जो सभा के कर्त्ता-धर्त्ता थे, उन लोगों ने इन लोगों के स्वार्थगत प्रयत्न को भाँप लिया। उन लोगों ने स्वामी जी को अपने विरोधियों को उत्तर देने का मौका दिया। स्वामीजी ने २२ वीं तारीख को "वेदान्त के साथ वर्तमान हिन्दू धर्म का सम्बन्ध" नामक विषय पर व्याख्यान दिया। उस व्याख्यान को सुनकर संसार भर के आये हुए सभी प्रति-निधि बहुत सन्तुष्ट हुए—अमेरिकावासी तो उन पर लट्टू हो गये। निन्दा-द्वेष करने वालों के मुँह पर स्याही पुत गई। वे अपना-सा मुँह लेकर रह गये।

२५ वीं तारीख को 'हिन्दू धर्म का तत्व' नामक विषय पर स्वामीजी ने भाषण दिया। स्वामीजी का यह

व्याख्यान इतना जोश से भरा हुआ था कि श्रोता लोग अपने को एकदम भूल गये। वह भी जोश के मारे चुप लगा गये। फिर कुछ क्षण भर के बाद बोले, "इस सभा में जिन लोगों ने हिन्दू धर्म और शास्त्रों का अध्ययन किया हो वे हाथ उठावें।" उस सात हजार की मंडली से केवल ३–४ हाथ उठे। उस दृश्य को देखकर सिंह की तरह गर्जते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा, "तो आप लोग इसी बल पर मेरे धर्म की आलोचना करने की हिम्मत रखते हैं?" स्वामीजी के ब्रह्मचर्य से चमकते ऊँचे ललाट और अनुपम भाषण-शक्ति को देखकर सभी चकित हो गये। किसी के मुँह से आवाज न निकली। संसार के सभी धर्म-प्रतिनिधियों के सम्मुख हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध कर दिखाई।

स्वामीजी के भाषणों का लोगों पर इतना असर पड़ा कि कई अमेरिकन विद्वान स्वामीजी के शिष्य हुए। उनमें श्रीमती लुइसा और सैंडर्सबर्ग के नाम मशहूर हैं। श्रीमती लुइसा का नाम स्वामीजी ने अभयानन्द रखा और सैंडर्स-बर्ग का नाम कृपानन्द। यह न्यूयार्क शहर में लोगों को शिक्षा तथा व्याख्यान देने लगे। यहाँ पर स्वामी जी ने जो व्याख्यान दिये वह राजयोग और ज्ञानयोग नाम से पुस्तक के रूप में छपे हैं। स्वामीजी अमेरिका में दो वर्ष तक रह कर अमेरिका के प्रत्येक बड़े नगर में भाषण दिये

इतने ही दिन में उनके कई शिष्य हो गये जो संन्यासी बन कर धर्म-प्रचार करने लगे। यहाँ से स्वामीजी ने इंगलैंड की यात्रा की।

इङ्गलैण्ड-यात्रा

अमेरिका से स्वामीजी सन् १८९५ ई० के अक्तूबर महीने में इंग्लैंड के लिए रवाना हुए। इंग्लैंड पहुँचते ही स्वामीजी की धूम मच गई। अनेक सभा-सोसाइटियों से बुलावे आने लगे। और हाथों-हाथ उनको लिए फिरने लगे।

प्रिंसेस हाल में उनके भाषण का प्रबन्ध किया गया। इस सभा में स्वामीजी ने आत्मज्ञान विषय पर इतना सुन्दर भाषण दिया कि सारी जनता तसवीर की तरह उनका भाषण सुनती रही। किसी ने चूँ तक नहीं किया। भाषण समाप्त होने पर वाह-वाह से सारी सभा गूंज उठी। दूसरे दिन पत्रों के कालम के कालम स्वामीजी की तारीफ में भरे थे।

"स्टैंडर्ड" पत्र ने लिखा था कि राजा राममोहन राय और केशवचन्द सेन के बाद स्वामी विवेकानन्द पहले ही हिन्दू हैं जिन्होंने प्रिन्सेस हाल में अपने व्याख्यान के द्वारा लोगों पर इतना प्रभाव डाला। उनका भाषण बड़ा गम्भीर और मार्मिक था।

एक दूसरे पत्र ने लिखा था—"लंडन में अनेक जातियों के, अनेक अवस्थाओं के मनुष्य मिलते हैं, पर इस समय इंलैंड में उस तत्ववेत्ता के बढ़कर और कोई मनुष्य

नहीं है जो हाल ही में शिकागो के धर्मसम्मेलन में हिन्दू धर्म की ओर से प्रतिनिधि था ।"

इस प्रकार सभी पत्रों ने खुले दिल से स्वामीजी की प्रशंसा लिखी थी। एक महान के भीतर ही स्वामीजी के कई शिष्य बन गये, इनमें मिस मारगरेट नोबेल का नाम बहुत प्रसिद्ध है। यह बड़े धनी घराने की थीं। इन्होंने हिंदू धर्म ग्रहण कर लिया और अपना नाम भगिनी निवेदिता रखा।

अमेरिका की तरह यहाँ भी स्वामीजी का अच्छा स्वागत हुआ। यहाँ अच्छी सफलता हुई। लोगों में हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में जो गलतफहमी फैली हुई थी, वह बहुत कुछ कम हो गई। वह हिन्दू धर्म की ओर आकर्षित हुए। स्वयं स्वामीजी ने देखा—"मुझे इंग्लैंड में काफी सफलता मिली। रोज झुंड के झुंड स्त्री पुरुष, मेरे व्याख्यान को सुनने आते और मेरी बातों को बड़े गौर से सुनते।"

इंग्लैंड में जो स्वामीजी के शिष्य बने थे, उन में जे० जे० गेविन और कप्तान सेवियर भी प्रसिद्ध हैं। इनमें मि० गेविन सदा स्वामीजी के साथ रहा करते थे। कप्तान सेवियर ने हिमालय के मायावती में अद्वैताश्रम स्थापित करने में मदद की थी।

अमेरिका की दूसरी यात्रा

अमेरिकावासी शिष्य स्वामीजी से एक बार अमेरिका आने का अनुरोध करने लगे। परन्तु इङ्लैंड के लोग भी स्वामीजी को नहीं छोड़ना चाहते थे, अन्त में बहुत अनुरोध करने पर स्वामीजी अमेरिका लौट आये।

यहाँ आने पर पहले ही की तरह स्थान-स्थान पर स्वामीजी भाषण देने लगे। स्वामीजी कुछ दिन तक तो बोस्टन में रहे, फिर न्यूयार्क आये। यहाँ हार्डमन हाल में प्रत्येक रविवार को भाषण देने लगे। प्रत्येक रविवार को उनका भाषण सुनने के लिये इतने लोग आते कि हाल में स्थान न मिलने के कारण बहुतों को निराश लौटना पड़ता। इस स्थान के अतिरिक्त वह और-और स्थानों में जाकर भाषण दिया करते। न्यूयार्क से वह डोट्रायट नामक स्थान को गये। वहाँ भी न्यूयार्क की तरह भाषण देना आरम्भ किया। हजारों नर-नारी व्याख्यान सुनने के लिए आने लगे। स्वामीजी की वाणी में कुछ ऐसी मोहनी शक्ति थी कि जो ही उनका एक बार व्याख्यान सुन लेता, उसको ही उनका व्याख्यान सुनने का चस्का लग जाता। बहुत से लोग स्थान न मिलने के कारण लौट जाते।

जब वहाँ के पादरियों ने देखा कि स्वामीजी लोगों पर हिन्दू धर्म का सिक्का जमा रहे हैं, तो वह बहुत घब-

छाये। वह लोग स्वामीजी के भाषणों के खंडन में व्या
ख्यान देने लगे, लेकिन वहाँ बहुत थोड़े लोग जाते। स्वामी
जी के अपूर्व प्रभाव को देखकर अमेरिकावालों ने उनक
नाम साइक्लोनिक हिन्दू [तूफ़ानी हिन्दू] रक्खा था
वास्तव में वह जहाँ जाते तूफ़ान खड़ा कर देते।

सन् १८९६ ई० के मार्च मास में इंग्लैंड के लोगों
के अनुरोध से वह फिर इंग्लैंड गये। अमेरिका का काम
स्वामी कृष्णानंद, अभयानन्द तथा योगानन्द नामक अपन
तीन शिष्यों के सुपुर्द कर गये। स्वामीजी के चले जान
पर यह लोग घूम घूमकर स्वामीजी के वेदांत धर्म क
लोगों को समझाने लगे।

इंग्लैंड की दूसरी यात्रा

दूसरी बार इंग्लैंड आने पर स्वामी जी का और धूम-
धाम से स्वागत हुआ। इंग्लैंड के लोग इनका भाषण
सुनने के लिए लालायित थे। इन्होंने वहाँ जाते ही भाषण
देना आरंभ कर दिया। पहले ही की तरह हजारों लोग
इनका भाषण सुनने के लिए टूटने लगे। इनके भाषण
अधिकतर ज्ञानयोग पर हुआ करते। यह वेदांत का क्लास
भी लिया करते, जिनमें लोग विद्यार्थी की हैसियत से
शामिल होते थे।

यहाँ पर पिकेडली में न्यूयार्क की तरह "संडे लेक्चर

सीरीज" नामक व्याख्यानमाला आरम्भ की। प्रति रवि-वार को धार्मिक तथा दार्शनिक विषयों पर व्याख्यान दिया करते। यहाँ के प्रिंसेस हाल में भी भाषण देने लगे।

अपने मित्रों तथा दूसरे प्रतिष्ठित लोगों के अनुरोध पर स्वामीजी उनके घर पर भी व्याख्यान देने जाया करते। एक बार मिसेज एनी बेसेंट ने अपने घर उन्हें व्याख्यान देने के लिए बुलाया। स्वामीजी ने 'भक्ति' पर बड़ा सुन्दर व्याख्यान दिया। संस्कृत के प्रसिद्ध जर्मन विद्वान प्रोफेसर मेक्समूलर ने भी अपने घर पर स्वामीजी को भाषण देने के लिए बुलाया। प्रोफेसर साहब पर आपके भाषण का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

स्वामीजी कई यूनिवर्सिटियों तथा कालेजों के अनुरोध करने पर उनके यहाँ भाषण देने के लिए गये। जहाँ-जहाँ भाषण दिया, वहाँ-वहाँ विद्यार्थियों को पूछताछ करने का काफी मौका दिया। एक बार स्वामीजी का व्याख्यान हो रहा था। व्याख्यान समाप्त होने पर एक दार्शनिक ने उनसे कहा, "आपको ऐसा सुन्दर भाषण देने पर आपको बधाई देता हूँ। यद्यपि आपका भाषण बड़े मार्के का हुआ है, परन्तु आपने अपने भाषण में कोई नई बात नहीं बतलाई है।" स्वामीजी ने कहा—"आपका कहना ठीक है। मैं नयी बात बतलाने का दावा करता। मैंने तो लोगों को वही बतलाया है जो सत्य

फिर सत्य नया कैसे हो सकता है ? वह सृष्टि के आरम्भ से है। मैंने उसी सत्य को अपने शब्दों में कहा है कि आप लोग इस पर कुछ देर तक विचार करेंगे।" स्वामीजी का उत्तर सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुए।

थोड़े ही दिनों में स्वामीजी का नाम लंदन के हर एक व्यक्ति के जबान पर रहने लगा। हर जगह उन्हीं की चर्चा होने लगी। बूढ़े बालक, स्त्री-पुरुष सभी उनके सम्बन्ध में बातचीत किया करते। सभी उनका दर्शन करने तथा उनके भाषणों को सुनने के लिए उत्सुक रहते। मि० विपिनचन्द्रपाल ने, जो उन दिनों वहीं पर थे, एक पत्र में लिखा था—'लंडन में कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ पर स्वामीजी का जिक्र न चलता हो। उन्होंने लोगों पर जादू-सा डाल दिया है। जहाँ देखो, उन्हीं का नाम सुनाई पड़ता है। एक दिन की बात है कि मैं किसी काम से बाहर जा रहा था। चलते-चलते दूसरे रास्ते पर बहक गया। नया रास्ता देख ठिठक गया। इतने में एक मेम अपने लड़के को साथ लिये आकर मुझसे कहने लगी, "जान पड़ता है आप रास्ता भूल गये हैं। मैं आपको रास्ता बतला देती हूँ। ज्योंही मैंने आपको देखा, त्योंही आपको पहचान लिया कि आप स्वामी विवेकानन्द हैं।" उस महिला की बात से मैं समझ गया कि मेरी गेरुआ पगड़ी देखकर इसने मुझे स्वामी विवेकानन्द समझ लिया है।

देश को वापसी

इस प्रकार विदेशों में साढ़े तीन वर्ष तक वेदान्त तथा हिन्दू-धर्म का पताका फहरा कर स्वामीजी ने भारतवर्ष को लौटने का विचार किया। जब उन्होंने चलने की ठानी, तो इनके भक्तों और प्रेमियों ने उनसे कुछ दिन और रहने का अनुरोध किया, परन्तु स्वामी जी ने नम्र शब्दों में उनको समझा दिया कि मेरा हिन्दुस्तान जाना बहुत जरूरी है। १३ दिसम्बर को पिकेडली में उन्हें मानपत्र देने के लिए एक बड़ी जबर्दस्त सभा हुई। मानपत्र में स्वामीजी की असाधारण योग्यता, अनुपम भाषणशक्ति की बड़ी तारीफ की गई थी।

इस प्रकार अपने सब मित्रों और शिष्यों से विदा हो स्वामीजी १६ दिसम्बर सन् १८९६ ई० को प्रिंस रिजेंट-लियो पोल्ड नामक जहाज पर चढ़कर भारत को रवाना हुए। एक मास के बाद जहाज कोलम्बो पहुँचा। स्वामीजी के साथ उनके कई अँगरेज शिष्य भी थे, जिनमें कप्तान सेवियर और उनकी स्त्री भी थीं।

कोलम्बो में जहाज पहुँचने के पहले ही स्वामीजी के वहाँ पहुँचने की खबर पहुँच गई थी। इसलिए बन्दरगाह पर हजारों आदमियों की भीड़ इकट्ठी हो गई थी। उनका बड़े जोरों से स्वागत हुआ। उसी दिन एक बड़ी भारी

इन्हें मानपत्र दिये गये। कई स्थानों पर भाषण भी दिये। इस प्रकार मद्रास में ९ दिन तक रहकर यह अपनी जन्मभूमि कलकत्ता नगरी को चले। यहाँ पर पहले से ही इनके स्वागत के लिए बड़ी तैयारी हो रही थी। जब इनका जहाज खिदरपुर पहुँचा तो इनको ले जाने के लिए स्पेशल ट्रेन खड़ी मिली। इस पर चढ़ कर वह शहर में आये

इन्हें मानपत्र देने के लिए एक बड़ी सभा की गई जिसमें करीब ५ हजार आदमी इकट्ठे थे। उस सभा में बंगाल के बहुत बड़े-बड़े आदमी भी शामिल थे। कई अंग्रेज यूरोपियन भी थे। सभा की ओर से चाँदी की तश्तरी में मानपत्र दिया गया। स्वामीजी ने बड़े मधुर शब्दों में मानपत्र का उत्तर दिया।

स्वामीजी ने यहाँ पर कई व्याख्यान दिये। जहाँ वह ठहरे थे वहाँ सैकड़ों स्त्री-पुरुष रोज उनका दर्शन करने तथा उनसे बात-चीत करने, शंका समाधान कराने आते। स्वामीजी बड़े प्रेम और आदर से उनके प्रश्नों का उत्तर देते, उनकी शंकाओं का समाधान करते रहे।

एक दिन एक नवयुवक स्वामीजी के पास आया। उसने स्वामीजी से कहा कि मैंने कई धर्मगुरुओं से भेंट की, उनके उपदेश सुने, उनके अनुसार आचरण किये, परन्तु मेरे चित को शान्ति नहीं मिली। पूजा-पाठ में घंटों आँखें बन्द किये रहता हूँ, फिर भी चित्त शांति नहीं

स्वामीजी ने कहा—"भाई, जिस शान्ति को तुम पान
चाहते हो, वह आँखें बन्द करने से न मिलेगी। अगर तु
सच्ची शांति पाना चाहते हो, तो अपने नेत्र खोलकर दे
कि तुम्हारे आस-पास कौन कौन हैं। कौन दरिद्रता औ
बेबसी की हालत में पड़ा है, कौन रोगी और अपाहिज मह
यता चाहता रहा है। तुम उनकी यथाशक्ति सेवा करो
अगर उनके तन पर कपड़ा नहीं है, तो कपड़े का प्रबन
करो और रोग से कराहते हों तो दवा-दारू का इन्तजा
करो। यही परमात्मा की सच्ची सेवा है। इसी से तु
शान्ति मिलेगी।"

स्वामी जी दीन-दुखियों की सेवा को ही परमात
की सच्ची सेवा समझते थे। अपने भाषणों में सदा इ
बात पर जोर देते थे कि दीन दुखियों की सेवा करो।
कहा करते थे कि आज भारत में हजारों दीन-दुखी ल
बिना अन्न-जल के मर जाते हैं, उन्हें कोई पूछता नहीं;
सेवा के कार्य को चलाने के लिए उन्होंने 'श्रीरामकृ
मिशन' की स्थापना। स्वामीजी इस मिशन के प्र
सभापति चुने गये। स्वामी ब्रह्मानन्द तथा योगानन्द
सभापति चुने गये। यह निश्चय हुआ कि प्रति रविवार
संघ की बैठक हुआ करे। गीता, उपनिषद् अथवा वेदा
भाषण हुआ करे। राजनीति से इस सभा का कोई म
न था। आज दिन मिशन का कार्य बड़े उत्साह से

रहा है। भारत में और विदेशों में इस मिशन के प्रचारक वेदांत का प्रचार करते हैं तथा दीन-दुखियों की सेवा में भाग लेते हैं। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में इसकी शाखाएँ खुली हैं, जिनके द्वारा काफी काम हो रहा है। खासकर बंगाल के शहरों से लेकर कस्बों तक में रामकृष्ण मिशन की शाखाएँ हैं।

कई वर्षों से लगातार भ्रमण करते रहने और भाषण देते-देते स्वामीजी का स्वास्थ्य बहुत गिर पड़ा था। कुछ दिन तक सब कामों को छोड़कर एक पहाड़ी स्थान में एकांत सेवन करना स्थिर किया। इसलिए वह हिमालय की ओर चले। सब से पहले अल्मोड़ा पहुँचे। यहाँ अपना स्वास्थ्य सुधारने लगे। अढ़ाई महीने भी शांति से बैठने न पाये थे कि पंजाब, काश्मीर आदि स्थानों से निमंत्रण आने लगे। इसलिए स्वामीजी ने इन स्थानों को जाना उचित समझा। वह अल्मोड़ा से चलकर अम्बाला अमृतसर रावलपिंडी आदि स्थानों को गये। सभी स्थानों पर उनका बड़ा स्वागत किया गया, उन्हें मानपत्र दिये गये। प्रत्येक मानपत्र का उत्तर स्वामी जी ने दिया।

पंजाब में कई मास रहकर स्वामीजी काश्मीर नरेश के अनुरोध से जम्मू पहुँचे। महाराज ने स्वामीजी का बड़ा आव-भगत किया। बड़ी देर तक स्वामीजी से बात करने महाराज बहुत सन्तुष्ट हुए। उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा

दूसरे दिन एक बड़ी सभा में स्वामीजी ने व्याख्यान दिय जिसमें अपार भीड़ एकत्र थी।

यहाँ से स्वामी जी स्यालकोट, लाहौर आदि पंजाब शहरों में होते हुए देहरादून पहुँचे। यहाँ पर उन्हें महारा खेतड़ी का निमंत्रण-पत्र मिला। महाराज ने स्वामी जी स बड़ा अनुरोध किया कि एक बार फिर पधार कर मेरे राज्य को पवित्र करें।

यहाँ से उन्होंने राजपूताने की भिन्न-भिन्न रियासतों में भ्रमण किया, जिनमें जयपुर, किशनगढ़ रतलाम आदि प्रसिद्ध हैं। जब राजपूताने में भ्रमण कर रहे थे, तो कलकत्ते से तार पर तार आने लगे। स्वामी जी गुजरात भी जाना चाहते थे। परन्तु स्वास्थ्य खराब हो जाने तथा कलकत्ते से बार-बार बुलाहट आने के कारण उन्हें गुजरात की यात्रा का बिचार छोड़ देना पड़ा। यहाँ से वह सीधे कलकत्ते को चल पड़े।

कुछ दिनों तक स्वामीजी कलकत्ता रहे और रामकृष्णाश्रम का कार्य देखा-भाला। परन्तु उनके भाग्य में एक जगह स्थिर रहना कहाँ बदा था। भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों से उनके पास पत्रों और तारों की भरमार लगती। कई संस्थाओं की ओर से निमन्त्रण आते। तब स्वामी जी फिर भारत-भ्रमण के लिए रवाना हुए और उत्तरी भारत

के भिन्न-भिन्न शहरों में व्याख्यान दिये, पाठशालाएँ खोलीं और जहाँ तहाँ मठ भी स्थापित किये।

दूसरी विदेश-यात्रा

स्वामी जी के विदेश के शिष्य और मित्र उनसे एक बार फिर उनके देश में जाने का आग्रह करते थे। इसलिए स्वामीजी उनके अनुरोध को मानकर २० जून सन् १८९९ ई० को कलकत्ता से रवाना हुए और मद्रास होते हुए कोलम्बो पहुँचे। और कोलम्बो मे जहाज पर चढ़कर ३१ जुलाई को लंडन पहुँचे। यहाँ पर स्वामीजी पहले ही की तरह भाषण और वेदांत का उपदेश देने लगे। हजारों की भी भीड़ रोज जमा होती।

परन्तु यहाँ पर पूरे डेढ़ मास भी न रहने पाये थे कि अमेरिका से पत्र और तार आने लगे। अस्तु स्वामीजी अपने कई अमेरिकन शिष्यों के साथ अमेरिका को रवाना हुए। ८ नवम्बर को स्वामीजी न्यूयार्क शहर पहुँचे। यहाँ पर स्वामीजी १५ दिन तक रहे और लोगों को उपदेशामृत से तृप्त किया।

यहाँ से वह केलिफोर्निया को रवाना हुए। रास्ते में वह अपने मित्रों के कहने से शिकागो में भी कुछ दिन तक रहे। केलिफोर्निया पहुंचने पर उनका बड़ा शानदार स्वागत हुआ। दूसरे दिन से स्वामीजी हिन्दूधर्म पर

भाषण देने लगे। उनके भाषणों का वहाँ की जनता पर बड़ा असर पड़ता। लोग खाना-पीना भूलकर उनके भाषणों को सुनने आते। उनके भाषणों का असर क्षणिक न पड़ कर स्थायी पड़ता। लोग बहुत दिन तक स्वामीजी को उनके भाषणों के कारण भूले नहीं।

सैन्फांसिस्को के एक सम्वाददाता ने एक पत्र में लिखा था कि स्वामी विवेकानन्द ने अपनी असाधारण योग्यता और भाषण-शक्ति से बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। उनके उपदेशों को सुनने के लिए लोग उत्सुक रहते हैं। उनकी अँग्रेजी बोलने की शक्ति को देखकर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है।

उसी समय पेरिस में धार्मिक-सम्मेलन होने वाला था, उसमें शामिल होने के लिए स्वामीजी को भी निमंत्रण मिला। इसलिए वहाँ के धर्मप्रचार के कार्य स्वामी तुरीया-नन्द के जिम्मे करके वह १० जुलाई १९०० ई० को पेरिस को रवाना हुए।

पेरिस पहुँचने पर उनका बड़े उत्साह के साथ स्वागत हुआ। धर्म-सम्मेलन में उनके दो भाषण हुए। स्वामीजी के भाषण को लोगों ने बड़े ही चाव से सुना। सभी लोग सुनकर गद्गद् हो गये। उनके भाषण की प्रशंसा करते हुए धर्मसम्मेलन के सभापति ने कहा था कि स्वामीजी का भाषण बहुत गम्भीर और उत्तम हुआ है।

सम्मेलन समाप्त होने पर कई सभाओं और संस्थाओं की ओर से स्वामीजी को भाषण देने के लिए निमंत्रण आये। स्वामीजी ने उनके निमंत्रण स्वीकार करके भाषण दिया। फिर युरोप के और मुल्कों से निमंत्रण आने लगे। स्वामीजी उन उन देशों को गये और हिन्दूधर्म का संदेश सुनाया। फिर यह टर्की और यूनान होते हुए मिश्र देश पहुँचे और वहाँ से भारत के लिए रवाना हुए।

रोग और मृत्यु

कठिन परिश्रम करना स्वामीजी का स्वभाव-सा हो गया था। विदेश-यात्रा से लौटते ही स्वामीजी फिर काम में जुट गये। कभी व्याख्यान देते, कभी रामकृष्णाश्रम में रहने वाले अपने शिष्यों को पढ़ाते, कभी गरीब-दुखियों की सेवा का प्रबन्ध करते। इन सब कामों से उन्हें दिन में आराम करने को कौन कहे, रात में भी आराम करने को कम ही मौका मिलता।

ऊपर कहा जा चुका है उनके अमेरिकन शिष्य सेवियर साहब अल्मोडा के मायावती नामक स्थान में आश्रम कायम करके रहते थे। वहाँ पर स्वामीजी के और भी शिष्य रहा करते थे। विदेश-यात्रा से लौटने पर स्वामीजी वहाँ पर जाने का विचार कर ही रहे थे कि उन्हें सेवियर साहब के मरने का समाचार मिला। तब स्वामीजी झटपट वहाँ चल पड़े। वहाँ पहुँच कर उन्होंने सेवियर साहब की

अपने दूसरे शिष्यों को ढाढ़स बँधाया और वहाँ से पि
वेल्श मठ को वापस आये। यहाँ आते ही फिर उ
तरह कठिन परिश्रम करने लगे जिससे स्वामीजी का स्वास्थ
दिन-ब-दिन गिरने लगा। इसी समय जापान में धार्मि
सम्मेलन होने वाला था। स्वामीजी को भी उसमें शामिल
होने के लिए निमत्रण मिला, लेकिन स्वामीजी ने तन्दुरुस्ती
ठीक न होने के कारण, निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया।

स्वामीजी का स्वास्थ्य गिरता जाता था, लेकिन वह
कठिन परिश्रम किये जाते थे और स्वामीजी ने बेलूर आश्रम में
विद्यार्थियों को वेद और व्याकरण पढ़ाने के लिए क्लास खोला
था, उसमें वह स्वयं पढ़ाते थे। चौथी जुलाई सन् १९०२ को
स्वामीजी ने विद्यार्थियों को व्याकरण पढ़ाया। तीसरे प्रहर वेदों
पर उपदेश दिया। फिर कुछ दूर तक टहलने गये। टहलने से
आने पर ध्यान लगाया। यही ध्यान महासमाधि के रूप में
हो गया। रात के ९ बजे स्वामीजी भारतवासियों तथा संसार
के अपने दूसरे प्रेमियों को शोक-सागर में छोड़ कर चल बसे।

दूसरे दिन उनके मरने का समाचार फैलते ही कल-
कत्ते में तथा भारत में हाहाकार मच गया। अमेरिका,
इंगलैंड तथा फ्रांस में स्वामीजी की मृत्यु पर अनेक सभाएँ
करके उनकी मृत्यु पर दुःख प्रकट किया गया तथा उनकी
आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई।
भारत में तो यह सिलसिला महीनों जारी रहा।

स्वामीजी की कीर्ति

स्वामीजी इस असार संसार से भले ही बिदा हुए, नका यश, उनका कार्य ज्यों-का-त्यों रहा। उन्होंने जो म आरम्भ किये थे, उनके मरने पर उनके शिष्यों ने गुने उत्साह के साथ उन कामों को करना आरम्भ कर या। स्वामीजी ने अपने जीवनकाल में ही यह अच्छी ह सोच लिया था कि बिना कोई संस्था कायम किये कोई स काम नहीं हो सकता। इसीसे पहले-पहल बेलूर में न्होंने अपने गुरु के नाम पर रामकृष्ण मिशन कायम रके रामकृष्णाश्रम की नींव डाली। जहाँ पर संसार त्यागी क्त लोग ज्ञानोपार्जन करते हैं। इन्हीं के कहने से इनके ष्य सेवियर साहब ने मायावती में भी अद्वैत आश्रम कायम कया, जहाँ कि वह रहते थे। स्वामीजी ने मद्रास में भी एक ठ खोला जो अभी तक पहले की तरह चल रहा है।

स्वामीजी ने विदेशों में वेदान्त मत तथा हिन्दू प्रचार लिये बड़ा जबर्दस्त काम किया। वह कहा करते थे कि जकल पश्चिम के लोग जिसे उन्नति कहते हैं, वह वास्त- क उन्नति नहीं। इसके द्वारा संसार में सच्ची शान्ति नहीं सकती। जब तक मनुष्य में सच्चा ज्ञान नहीं होता तब क मनुष्य का चित्त व्याकुल रहता है। इसी से विदेशों में गह जगह पर उन्होंने वेदान्त पर भाषण दिये। वहाँ के वासियों को वेदान्त की शिक्षा देने के लिये

समितियाँ कायम कीं। अमेरिका के कई शहरों में उन
वेदान्त सोसाइटी तथा शान्ति-आश्रम कायम किये।
देशों में प्रचार-कार्य के लिये उन्होंने प्रभयानन्द, अभाद्
तथा शारदानंद को भेजा। आस्ट्रेलिया न्यूजीलैण
प्रचार-कार्य का भार हरिप्रिया [मिसेज पिकेट] को दिय
लंका में प्रचार-कार्य का भार स्वामी शिवानन्द ने लिया।

इन प्रचारकों के अतिरिक्त स्वामीजी ने वेदान्त ध
के प्रचार के लिये ब्रह्मवादिन, प्रबुद्ध भारत यथा उद्बोध
नामक तीन पत्र निकालना आरम्भ किया।

इसके अतिरिक्त स्वामीजी ने अपनी लेखनी द्वारा भ
भारतवर्ष की तथा संसार की बड़ी सेवा की, उन्होंने कर्म
योग, राजयोग तथा ज्ञानयोग तीन बड़े ग्रन्थ लिखे ज
अब भी बड़े चाव से पढ़े जाते हैं। इन ग्रन्थों के अनुवा
संसार की सभी प्रसिद्ध भाषाओं में हो चुके हैं। इनके
अतिरिक्त प्राच्य और पाश्चात्य नामक एक छोटा-सा ग्रन्
लिखा जो बड़ा ही शिक्षाप्रद है। इसके अतिरिक्त उन्हों
अपने शिष्यों तथा प्रेमियों को समय-समय पर जो प
लिखे वे भी बड़े ही जोशीले हैं। उन पत्रों का संग्रह भ
प्रकाशित हो चुका है। इनके अतिरिक्त स्वामीजी ने औ
भी छोटे-मोटे ग्रन्थ लिखे जो उद्बोधन कार्यालय कलकत्त
से प्रकाशित हुए हैं।

सचित्र, मनोरञ्जक, शिक्षाप्रद, सरल, रोचक, जीवन को ऊँचा उठाने वाली महापुरुषों की जीवनियाँ। मू० ।=)

१—श्रीकृष्ण
२—महात्मा बुद्ध
३—रानाडे
४—अकबर
५—महाराणा प्रताप
६ शिवाजी
७—स्वामी दयानन्द
८—लो० तिलक
९—जे० एन० ताता
१०—विद्यासागर
११—स्वामी विवेकानन्द
१२—गुरु गोविन्दसिंह
१३—वीर दुर्गादास
१४—स्वामी रामतीर्थ
१५—सम्राट अशोक
१६—महाराज पृथ्वीराज
१७—श्रीरामकृष्ण परमहंस
१८—महात्मा टाल्सटाय
१९—रणजीतसिंह
२०—महात्मा गान्धी
२१—स्वामी श्रद्धानन्द
२२—नेपोलियन
२३—बा० राजेन्द्रप्रसाद
२४—सी० आर० दास
२५—गुरु नानक
२६—महाराणा सांगा
२७—पं० मोतीलाल नेहरू
२८—पं० जवाहरलाल नेहरू
२९—श्रीमती कमला नेहरू
३०—मीराबाई
३१—इब्राहीम लिंकन
३२—मुसोलिनी
३३—अहिल्याबाई
३४—हिटलर
३५—सुभाषचन्द्र बोस
३६—राजा राममोहनराय
३७—लाला लाजपत राय
३८—महात्मा गांधी
३९—महामना मालवीय जी
४०—जगदीशचन्द्र बोस
४१—महारानी लक्ष्मीबाई
४२—महात्मा मेजिनी
४३—महात्मा लेनिन
४४—महाराज छत्रसाल
४५—अब्दुल गफ्फार खाँ
४६—मुस्तफा कमालपाशा
४७—अबुलकलाम आजाद
४८—स्टालिन
४९—वीर सावरकर
५०—महात्मा ईसा
५१—वीर केसरी हम्मीरदेव
५२—डी० वेलरा
५३—गैरीबाल्डी
५४—स्वामी शंकराचार्य
५५—सी० एफ० एन्ड्रूज
५६—गणेश शङ्कर विद्यार्थी
५७—डा० यतीन्द्रनाथ सेन
५८—समर्थ गुरु रामदास
५९—महारानी संयोगिता
६०—दादाभाई नौरोजी
६१—सरोजिनी नायडू
६२—वीर बादल
६३—पट्टाभि सीतारामैया
६४—देवी जोन
६५—प्रिन्स बिस्मार्क
६६—कार्लमार्क्स
६७—कस्तूर बा
६८—रवीन्द्रनाथ टाकुर
६९—सरदार पटेल
७०—सन्त ज्ञानेश्वर

तिलक
छात्रहितकारी पुस्तकमाला दारागंज, प्रयाग।

बाल-चरित्रमाला सं०—८

लोकमान्य तिलक

लेखक

पं० ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल'
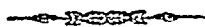
प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

पंचम संस्करण] मई १९४७ [मूल्य ।=)

लोकमान्य तिलक

जब कभी कोई देश अथवा जाति नीचे गिरने लगती है तो परमात्मा उसको सुधारने के लिये योग्य आत्माओं को संसार में भेजता है, और जब तक वह राष्ट्र अपने पैरों खड़ा नहीं हो जाता, ये महान आत्मायें बारबार आकर उसको उठाती रहती हैं। सभी देश में यह हुआ है। अमरीका, रूस, फ्रांस तथा सभी देशों में महान आत्माओं ने जन्म लेकर देश अथवा जाति का सुधार किया है। इसी प्रकार भारतवर्ष में भी महान आत्मायें बराबर आती रही हैं। लोकमान्य बाल गङ्गाधर जी तिलक उन्हीं आत्माओं में से थे।

वंश-परिचय

लोकमान्य बाल गङ्गाधर के पिता का नाम रामचन्द्र गंगाधर राव जी था। इनकी माता का नाम पार्वती बाई था। इनके पिता अपनी गरीबी के कारण अङ्गरेजी पढ़े लिखे नहीं थे। वे संस्कृत खूब जानते थे। गणित में उनका खूब मन लगता था। उनके दादा के मर जाने पर सारे कुटुम्ब के पालन का बोझ उनके सिर पर आगया। उन्होंने

पहिले पहल ५) मासिक वेतन पर अध्यापक का काम करना
आरम्भ किया। उनके पढ़ाने से सब बहुत खुश थे। धीरे-
धीरे वे डिप्टी इन्सपेक्टर हो गए। उन्होंने गणित सम्बंधी
बहुत सी पुस्तकें लिखी थीं। इनकी बनाई हुई सरल त्रिकोण
नामक गणित की पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है।

इनके तीन लड़कियाँ और एक लड़का था। यही
लड़का हमारे बाल गंगाधर तिलक थे। इनका जन्म २३
जुलाई सन् १८५६ ई० को रत्नागिरी में सदोबा गोरे के
घर पर हुआ था। उनके पिता ने उनकी कुण्डली बहुत
जल्दी बनवा ली थी। कुण्डली के हिसाब से इनको दो शादी
होती थी लेकिन इनकी एक ही शादी हुई। इनके और
सभी ग्रह भी बहुत सधारण थे। इनके कामों को देखते
हुए कुण्डली बिलकुल गलत साबित हुई। इनका जन्मकाल
का नाम केशव था। लोक व्यवहार में इनका नाम बलवन्त
राव तिलक था। सांकेतिक नाम बाल था और यही अधिक
प्रसिद्ध हुआ।

बालपन और शिक्षा

अपने लड़कपन ही में बाल गंगाधर तिलक अपनी
बुद्धि के लिये प्रसिद्ध हो गए थे। तिलक जी बड़े हठी थे
ये घर के बाहर कुछ खाते पीते नहीं थे। कहा जाता
कि एक बार एक शिक्षक ने पाठशाला में मूंगफली खाने
का दोष इनके ऊपर लगाया। ये उस अपमान से इतने नि

कि पाठशाला जाना बन्द कर दिया। तिलकजी विजयदशमी के दिन सन् १८६१ ई० में स्कूल में पढ़ने के लिये भेजे गए थे। इनके सबसे पहिले शिक्षक का नाम भिकाजी कृष्ण पटवर्धन था। इनके पिता जी स्वयं बड़े योग्य शिक्षक थे। इनकी पढ़ाई पाठशाले से अधिक घर ही पर अपने पिता से हुई थी। इनकी बुद्धि बड़ी प्रखर और स्मरणशक्ति बड़ी तीव्र थी। लड़कपन में एक श्लोक याद कर लेने पर इनके पिता इनको एक पाई दिया करते थे। धीरे-धीरे थोड़े ही दिनों में इन्होंने एक पाई के हिसाब से २) रुपया तक अपने पिता से इनाम ले लिया। सन् १८६४ ई० में तिलक जी का जनेऊ हुआ। उस समय इनकी अवस्था आठ वर्ष की थी। इनकी शिक्षा को देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ था। जनेऊ होने के पहिले ही इन्होंने साधारण गणित रूपावली, समास-चक्र और आधा अमरकोश का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। दो वर्ष बाद सन् १८६६ ई० में इनके पिता असिस्टेन्ट इन्सपेक्टर बना कर पूना भेज दिये गए। यहाँ इनके पढ़ने का बड़ा अच्छा प्रबन्ध हो गया। शिक्षा के लिए पूना बहुत प्रसिद्ध था। तिलक जी घर पर अपने पिता से पढ़ते थे और और स्कूल में शिक्षक से। इस प्रकार इनकी पढ़ाई बड़ी अच्छी तरह हो रही थी। किन्तु यह सुयोग बहुत दिनों तक न रह सका। सन् १८७२ ई० में इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इससे इनकी पढ़ाई में

कोई विशेष बाधा नहीं पड़ी। पिता की देख-रेख के कार
लड़कपन ही से इनकी शिक्षा की नींव मजबूत हो चुकी थी
इस समय तिलक जी सम्पूर्ण अङ्कगणित, कुछ बीजगणि
और कई अध्याय रेखागणित पढ़ चुके थे। इनको संस्कृ
का ज्ञान भी हो गया था। साधारण श्लोकों का अर्थ
अपने आप लगा लेते थे। लोकमान्य जब १० वर्ष के
तभी इनकी माता की मृत्यु हो गई थी। इनके पाल
पोषण का भार इनकी काकी पर था। वे इनको बहु
मानती थी। तिलक जी अपने काका और काकी का ब
आदर करते थे।

तिलक जी पूना सिटी स्कूल, मे पढ़ते थे, य
उन्होंने २ साल में तीन कक्षाओं की पढ़ाई समाप्त की थी
ये प्रायः मास्टरों से लड़ जाया करते थे। एक बा
मास्टर साहेब डिक्टेशन (इमला) लिखा रहे थे
उसमें 'सन्त' शब्द तीन बार आया। इन्होंने एक बार 'सं
लिखा, फिर 'सन्त' और अन्त में 'सनूत'। मास्टर साहब
ऊपर का संत सही माना और बाकी काट दिया। इस पर इन
और मास्टर साहब में झगड़ा हो गया। वह मामला हे
मास्टर तक पहुँचा। जब उनकी जीत हुई तब उनको चै
पड़ा। ये अपनी बात ठीक साबित करने के लिए बड़ों
लड़ जाते थे। इसलिए लोग इनको बुद्धिमान और चतु
होते हुए भी हठी कहा करते थे। एक बार किसी पुस्त

पर इनसे और संस्कृत अध्यापक से झगड़ा हो गया। यह मामला हेडमास्टर तक पहुँचा। उन दिनों मिस्टर जेकब हाई स्कूल के हेडमास्टर थे। पक्के अनुशासन प्रिय थे। उन्होंने इनके खिलाफ फैसला किया। उन्होंने स्कूल जाना बन्द कर दिया और जब दूसरे हेड मास्टर आये तब फिर जाने लगे।

सन् १८७१ ई० में इनका विवाह हो गया। उस समय ये अङ्गरेजी स्कूल में पढ़ रहे थे। इनकी स्त्री का नाम सत्यभामा बाई था। इनके नैहर में इनका नाम तायी बाई था। १८७२ में तिलकजी के पिता का स्वर्गवास हुआ। इसी साल सितम्बर मे इन्होंने इन्ट्रेंस पास किया था। सन् १८७३ ई० में ये डेक्कन कालिज मे भर्ती हो गये। ये रट्टू नहीं थे। रात को कभी नहीं पढ़ते थे। जब ये पढ़ने लगते थे तब इनके कान के पास चाहे कोई नगाड़ा ही पीटे किन्तु ये सुनते नहीं थे। अपने साथियों से हँसी मजाक भी खूब किया करते थे।

इस बीच में इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। इन्होंने अब अपने स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया और उस को अच्छी तरह सुधार लिया। सुबह का सारा समय कुश्ती लड़ने और तैरने में बिताया करते थे। संध्या को ये खूब खेला और घूमा करते थे। रात का समय हँसी मजाक में बिताया करते थे। कालिज में भी केवल हाजिरी देने को

जाया करते थे । हाजिरी देकर ये लौट आते थे । जिस दिन कोई विशेष बात बताई जाने वाली होती उस दिन कालेज नहीं छोड़ते थे । एक बार प्रिंसिपल ने इनको हाजिरी लिखा कर कालिज से चले जाते हुए देख लिया । उसने इनसे इसका कारण पूछा । इन्होंने निडर होकर कहा, इस वर्ष मुझको इम्तहान नहीं देना है । मैं तो स्वास्थ्य ठीक कर रहा हूँ, इस बार तिलक जी एफ़० ए० की परीक्षा में फेल हो गये किन्तु इन्होंने अपना स्वास्थ्य ठीक कर लिया । कालेज में भी इनसे और प्रोफेसर जिंसीवाव से झगड़ा हो गया था । तिलक जी संस्कृत में कविता भी करते थे ।

इन्होंने कभी कक्षा में प्रथम होने की कोशिश नहीं की । दूसरे साल इन्होने एफ़० ए० पास किया । अब ये बम्बई के इल्फिन्स्टन कालिज में पढ़ने लगे । यहाँ इनका मन न लगा । ये फिर पूना लौट आये । यहाँ इन्होंने गणित लेकर बी० ए० पास किया । ये प्रथम श्रेणी में पास हुए थे । सन् १८७७ ई० में एम० ए० की परीक्षा में बैठे किन्तु फेल हो गये । इन्होंने एम० ए० की पढ़ाई बन्द कर दी । सन् १८७६ ई० में इन्होने यल-यल बी० पास कर कर लिया । पाँच छः वर्ष बाद पूना में फर्ग्युसन कालेज खुला । उस कालेज में प्रोफ़ेसर होने के विचार से वे फिर एम० ए० की परीक्षा में बैठे किन्तु फेल हो गये । तब इन्होंने एम० ए० पास करने का विचार एकदम से छोड़ दिया ।

स्कूल कालेज की स्थापना और अखबार निकालना

तिलकजी ने बी० ए० तथा एल एल० बी० रुपया पैदा करने के लिए नहीं पास किया था। इन्होंने अध्यापक बनने का पहले ही निश्चय कर लिया था। सरकारी नौकरी भी इनको पसन्द नहीं थी। तिलक जी के कई साथी वकालत करते थे। वकालत से वे लोग खूब धन पैदा करते थे। किन्तु तिलक जी ने पहिले ही श्री विष्णु शास्त्री चिपलूनकर जी को स्कूल में अध्यापक बनने का वचन दे दिया था। चिपलूनकर जी सरकारी नौकर थे। परन्तु उनका विचार एक स्कूल खोलने का था। मि० आगरकर और तिलक जी ने ही उस स्कूल में काम करने का वचन दिया था। एक जनवरी सन् १८८० ई० को नया स्कूल खोल दिया गया था। मिस्टर आगरकर उसके कामों में एक साल तक भाग ले सके। वे एम० ए० फेल हो गये थे। इस लिए एम० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। दूसरे वर्ष एम० ए० पास हो जाने पर आगरकर भी शामिल हो गये। जिस दिन यह स्कूल खुला उसके पिछले दिन रात को शास्त्री जी के यहाँ एक आदमी मर गया। इसलिये पहले दिन स्कूल में ठीक तौर से काम न हो सका। दूसरे दिन से ठीक तौर से काम शुरू हुआ। पहिले दिन इस

स्कूल में केवल १८ विद्यार्थी आये थे। कुछ ही दिनों में
१५० विद्यार्थी हो गये। पहले जब तिलक जी स्कूल
खोलने के बारे में किसी से कहते थे तो वे लोग खूब हँस
थे। वे लोग इस काम को असम्भव मानते थे। थोड़े ही
दिनों में यह स्कूल पूना में प्रसिद्ध हो गया। जब यह
खुल गया तब भी बहुत से लोगों ने इसका घोर
किया था। तिलक जी ने विरोधों का मुकाबला बड़े
से किया था। इसमें विद्यार्थियों की संख्या बहुत जल्द
गई थी। सन १८८४ ई० में इस स्कूल में १००
विद्यार्थी हो गये थे। मार्च सन् १८८२ में चिपलूनक
अचानक मर गये। उनके मर जाने से स्कूल का सारा
तिलक जी के सिर पर आ पड़ा। उन्होंने इसको
सँभाला। किसी तरह का नुकसान नहीं होने पाया। व
र्थियों की संख्या खूब बढ़ रही थी। इसलिये तिलक
ने एक कालिज खोलना चाहा। उन लोगों ने एक
खोलकर अखबार भी निकालने का विचार कर लिया था

तिलक जी पहले ही से एक कालिज खोलना
थे। कई कारणों से पहिले उनको सफलता नहीं मिली
आखिरकार सन् १८८५ ई० में फरग्युसन कालेज
गया। इसमें बहुत लोगों ने सहायता दी थी। सबसे
परिश्रम तिलक जी ने ही किया था। इस कालेज में
जी गणित पढ़ाया करते थे। कभी २ संस्कृत भी

करते थे। इनका प्रभाव विद्यार्थियों पर खूब पड़ता था।

सन् १८८१ ई० में तिलक और उनके मित्रों ने मिल कर केसरी और मराठा नामक पत्र निकालना तै किया। इन पत्रों को निकालने के लिए एक प्रेस की बहुत जरूरत थी। उन लोगों ने प्रेस खोलना निश्चय किया। एक प्रेस बिकाऊ था। उसका दाम २०००) था। इन लोगों के पास उतना रुपया नहीं था। बहुत कोशिश करने पर भी उतना रुपया नहीं इकट्ठा कर सका। परन्तु हताश नहीं हुए। आखिर सबों ने मिलकर किश्त पर प्रेस खरीद लिया और दस्तावेज लिख दिया। प्रेस मिलजाने पर उन लोगों को बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। सारा सामान एक साथ एक ही रात में उठा लाया गया। रात को स्वयं तिलक जी ने भी प्रेस का सामान ढोया था। प्रेस मोरवा दादा के बाड़े में खोला गया था। बाद को वहीं तिलक जी का नया स्कूल भी खोल दिया गया था। प्रेस से तिलक जी को बड़ी दिलचस्पी थी। मशीनों को वे स्वयं खोला बनाया करते थे। पहिले पहल केशरी में तिलक जी, शास्त्री जी और आगरकर तीनों लेख लिखा करते थे। तिलक जी धार्मिक, राजनैतिक और कानून सम्बन्धी लेख लिखते थे। इनके लेख बड़े मार्के के होते थे। धीरे-धीरे इतनी बड़ी उन्नति हुई कि ३, ४ वर्षों में ही इसके साढ़े ४ हजार ग्राहक हो गये।

२ जनवरी सन् १८८१ ई० को 'मराठा' पत्र का पहिला अङ्क निकला था। इसके लेख अधिक जोशीले हो थे। सन् १८६१ ई० में केसरी और मराठा दोनों पत्रों का अधिकार तिलक जी को मिल गया था।

कोल्हापुर का मामला

बड़ौदा के महाराज मल्हारराव गायकवाड़ गद्दी उतार दिये गये। उन्होंने महाराज सयाजी राव को गो लिया था। ये महाराज गद्दी पर बैठ गये थे। लेकिन इन राज्य का पूरा अधिकार नहीं मिला था। दीवान के ही हा में सारा कारोबार था। उसकी देख रेख अङ्गरेजी सरका भी करती थी। दीवान का नाम सर टी माधवराव था ये बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति थे, ट्रावन्कोर राज्य में भी दीवान चुके थे। वहाँ पर इन्होंने बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया था बड़ौदा के लोग प्रायः माधवराव से अप्रसन्न थे। लोगों विचार था कि दीवान साहेब सरकार का हित करते हैं अपने राजा की भलाई का ख्याल कम करते हैं। बड़ौदा अङ्गरेजी फौज तैनात कर दी गई थी। राज्य-प्रबन्ध बदल दिया गया था। इससे राज्य को बड़ी हानि हुई। स कार दीवान साहेब का पक्ष लेती थी। इन सब बातों बड़ी कड़ी समालोचना 'केसरी' में छपी थी।

इसके बाद कोल्हापुर की बारी आई। यहाँ की द बड़ौदा से कहीं अधिक खराब थी। वहाँ के महाराजा शिवा

राव के पागल होने की शङ्का से सारी प्रजा व्याकुल थी। राज्य का सारा प्रबन्ध दीवान रायबहादुर माधवराव बर्वे के हाथ में था। लोगों को यह विश्वास था कि दीवान साहेब ने ही महाराज को पागल बनाने की कोशिश की है। राज का रुपया फ़जूल कामों में खर्च किया जाता था। राज्य की हालत दिन ब दिन खराब हो रही थी। बहुत अङ्गरेजी पत्र महाराजा को विलायत जाने की राय देते थे। इससे पहिले महाराजा राजाराम विलायत जाते हुए इटली में मर चुके थ। इसलिये यह राय भी लोगों को पसन्द नहीं थी। इन सब बातों की कड़ी आलोचना 'केसरी' में छपी। इससे बर्वे की बड़ी बदनामी हुई। लोगों ने उसको 'केसरी' के ऊपर मुकदमा चलाने को उत्साहित किया। वह पूना आया। उसने सरकार से मुकदमा चलाने के लिये आज्ञा मांगी। आज्ञा मिल गई। अन्त में उसने नालिश दायर कर दी। पुलिस कोर्ट मिस्टर वेब के सामने ८ फरवरी को मामले की की जाँच हुई। तिलक जी की ओर से सर फ़िरोजशाह मेहता ने इस मामले की पैरवी की थी।

बर्वे के खिलाफ़ कई पत्रों ने लिखा था। उसने सब के सम्पादकों पर मामला चलाया। लेकिन सब लोगों ने उससे माफी मांग ली। यदि तिलक जी चाहते तो बिना माफी मांगे ही छूट सकते थे। क्योंकि बहुत से लेख उनके लिखे हुए नहीं थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं

किया। २६ मई सन् १८८२ ई० को तिलक जी अपने
४ अन्य साथियों के साथ सेसन्श सिपुर्द कर दिये गये।
इन लोगों ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। को
सबूत नहीं पेश किया। अन्त में सब को सजा हो गई।

तिलकजी के सजा हो जाने पर बड़ा असंतोष फैला
कितनों ही ने छोड़ देने के लिए प्रार्थनायें की, किन्तु को
लाभ न हुआ।

तिलक और आगरकर

तिलक और आगरकर में सामाजिक प्रश्नों में बड़
मतभेद रहा करता था। इस मतभेद ने कभी कलह का रू
नहीं धारण किया। सन् १८८७ ई० में जब तिल जी
प्रकट रूप में 'केसरी' के संपादक और प्रकाशक बन
तब आगर ने अपना सम्बन्ध इससे हटा लिया।

तिलक और क्राफ़र्ड साहेब

क्राफर्ड साहेब एक अंगरेज अफसर थे। ये बहु
मिलनसार थे। रत्नागिरि इनको बहुत प्यारी थी। ये को...
भाषा भी बड़ी अच्छी बोल लेते थे। इनका खर्च २
बढ़ा चढ़ा था कि ये बहुत ऋणी हो गये थे। बहुत दि
तक तो सरकार चुप बैठी रही किन्तु अन्त में उसने इन
रिश्वत का मामला चला दिया। ये गिरफ़्तार कर लिये गये
इसी मामले में एक हनुमन्त राव को सजा हो गई।

गी ने सरकार की आलोचना की। आलोचना का कोई असर नहीं पड़ा। क्राफर्ड साहेब निर्दोषी ठहराये गये। सरकार ने उनको छोड़ दिया। गवाहों में अधिकतर तहसीलदार थे। वे विचारे नौकरी से छुड़ा दिये गये। तिलकजी ने इसका बड़ा विरोध किया। इस पर बहुत से तहसीलदारों को तो फिर नौकरी मिल गई। कुछ घर बैठे तनख्वाह पाने लगे और कुछ रायबहादुर की उपाधि से विभूषित किये गये। उन लोगों ने मिलकर तिलक जी को एक चाँदी की घड़ी और एक बहुमूल्य डुपट्टा भेंट किया। वे लोग तिलकजी के बडे कृतज्ञ थे। तिलक जी के पास वह घड़ी आखिरी वक्त तक थी।

कालेज छोड़ने पर तिलकजी की आजीविका

तिलकजी ने जब कालेज छोड़ दिया तब आजीविका का प्रश्न उनके सामने आया। उन्होंने ला क्लास खोल दिया। यह क्लास सन् १८९९ ई० तक बराबर चलता रहा। आखिरकार प्लेग के प्रकोप और केसरी तथा मराठा के संपादन से अवकाश न मिलने के कारण तिलक ने इस क्लास को सदा के लिए बन्द कर दिया। इस क्लास से उनको १५०) मासिक मिल जाया करते थे। तिलकजी के खर्चे के लिए इतना धन काफी था।

तिलकजी राजनैतिक क्षेत्र में

प्रोफेसरी छोड़ने पर तिलक जी राजनैतिक कार्यों में अधिक भाग लेने लगे। इनके सामाजिक विचार भी बड़े उन्नत थे। ये पुराने लकीर के फकीर नहीं थे। यहाँ पर विदेशी राज्य होने के कारण तिलक जी राजनैतिक सुधारों की ओर विशेष ध्यान देते थे। उनका कहना था कि जब तक हम अपना राजनैतिक सुधार नहीं कर लेंगे कोई भी सुधार नहीं कर सकते। समाज सुधार के लिए चरित्र बल की आवश्यकता है और यह बिना ज्ञान के प्रसार के नहीं हो सकता। ये छोटी उम्र में शादी करने के बहुत खिलाफ थे। उन्होंने अपनी लड़कियों की शादी बड़ी अवस्था में की थी। उनको खूब पढ़ाया लिखाया था। वृद्धावस्था में उन्होंने समुद्र यात्रा की थी। जब लोगों ने इसका विरोध किया तब इन्होंने समुद्र-यात्रा शास्त्र-सम्मत सिद्ध कर दिया।

सन् १८९४ में तिलक जी ने बड़ौदा के मामले में बहुत अधिक परिश्रम किया। हिन्दू-मुसलमान झगड़ों की भी इन्होंने काफी आलोचना की थी। कुछ लोगो ने तो इन्हीं को इस झगड़े की जड़ बताया था। तिलक जी हिन्दू मुसलमान के झगड़े की शंका अङ्गरेजी सरकार पर करते थे। वे कहते थे कि पहिले अगर कभी झगड़ा होता तो लाठी डंडे की नौबत नहीं आती थी, अब जो झगड़े हो रहे हैं उनमें लाठी और हथियार चलते हैं। अगर सरकार

नेष्पक्ष भाव से चाहे तो उनको मिटा सकती है। 'केसरी'
ां तिलकजी ने इन दंगों के बारे में कई लेख निकाला था।
कई एक सुधारक इनके खिलाफ हो गये थे। इन्होंने कभी
किसी की परवाह नहीं की। ये अपने सिद्धांत के बड़े पक्के
थे। अन्त में मुसलमान नेताओं ने भी तिलकजी की बातों
को मान लिया था।

वापट कमीशन

वापट पर भी घूस का मामला चलाया गया था।
तिलकजी वापट के पक्ष में थे। ये वापट के बड़े भारी मित्र
। तिलकजी स्वयं बड़ौदा गये थे। वहाँ इनके पीछे पुलिस
गी रहती थी। एक दिन रात के समय तिलकजी अपने
त्र से मिलने गये। पुलिस उनके पीछे लगी थी। तिलक
ी तो अपने मित्र के घर में घुस गये लेकिन खुफिया
लिस वाले को बाहर दरवाजे ही पर रुक लाना पड़ा।
लकजी को वहाँ बड़ी देर लगी। वह पुलिस वाला वहाँ
ा रहा। जब उनको वापस आने में बहुत देरे होने लगी
वह बेचारा वहीं पड़ा सो गया। जब तिलकजी बाहर
कले तब उन्होंने देखा कि एक सिपाही पड़ा सो रहा है।
लकजी समझ गये कि यह सिपाही हमारे पीछे लगाया
ा है। उन्होंने उसको जगा दिया और कहा कि अब
यहाँ से जा रहा हूँ। इसी तरह की कई घटनायें बड़ौदा
हुई थीं। तिलक ने वापट के मुकदमे की पैरवी की थी।

इसके विरोधी सर फिरोजशाह मेहता और मिस्टर ब्रैनस
थे। तिलकजी ने बड़ी जोरदार बहस की और वापट छू
गये। इनकी इस बहस से बड़े २ वकीलों और वैरिस्टरों
इनकी तारीफ की। एक बार सन् १६०८ ई० में भी इन्हों
अपने मुकदमे में स्वयं बड़ी खूबी से साथ बहस की।

तिलक और धारा सभा का चुनाव

तिलकजी को मध्यभाग के चुनाव में सबसे अधि
वोट मिले थे। नर्म दलवाले सदैव इनकी निन्दा करते थे
तिलकजी ने इस सभा के मेम्बर की हैसियत से बड़ा का
किया। सन् १८६६ में वह चुनाव के लिए नहीं खड़े हुए
इस साल बहुमत से गोखले चुन लिए गये। इसके ब
फिर कभी भी तिलक जी ने कौंसिल के चुनाव में भा
नहीं लिया। पहिले कौंसिल में तिलक जी ने बड़ा क
किया था। सरकार के सब कामों पर तिलकजी अच्
टिप्पणी करते थे। कौंसिल में रहते हुए भी तिलकजी बाह
आन्दोलन की ओर विशेष ध्यान देते थे। उस समय आ
कल के इतना अधिकार कौंसिल के मेम्बरों को नहीं था

तिलकजी पाँच साल तक बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस
मन्त्री थे। उस काम को उन्होंने बड़ी योग्यता से किय
इसका पाँचवाँ अधिवेशन पूना मे हुआ। तिलकजी के
कारण इसमें बड़ी सफलता मिली। सन् १८६५ के ना
कांग्रेस में तिलक जी स्वागत-कारिणी-समिति के मंत्री थे।

न्होंने इनकी सफलता के लिए बड़ा उद्योग किया। आखि-
ार लोगों ने एक विवाद खड़ा कर दिया। कुछ लोग
ांग्रेस के पंडाल में समाज सुधारक सभा का जलसा करना
ाहते थे। तिलकजी ने इसका विरोध किया। यह मत-भेद
हुत बढ़ गया। अन्त में तिलकजी ने इस्तीफा दे दिया।
लग हो जाने पर भी कांग्रेस की सफलता के लिए वे
रावर उद्योग करते रहे।

राष्ट्रीय उत्सव

तिलकजी ने दो राष्ट्रीय उत्सवों का कनारा शुरू
िया था। पहिला गणपति उत्सव और दूसरा श्री शिवाजी
सव के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि गणपति उत्सव पहिले
ही होता था लेकिन उसका नया राजनैतिक रूप इन्हीं
बदौलत मिला।

श्री शिवाजी उत्सव—सन् १८८६ ई० में एक अंग-
न शिवाजी की समाधि देखने के लिए रायगढ़ गया।
मी ने पहिले पहल समाधि की दुर्दशा का वर्णन
खबारों में किया।

सन् १८१८ तक रायगढ़ में पेशवा के सिपाही रहा
रते थे। सन् १८१८ में पेशवा का अन्त हो गया। इस
बाद रायगढ़ बिलकुल उजाड़ हो गया। यहाँ पर बड़ी-
ी घासें और वृक्ष उग आये थे। बिल्कुल जङ्गल होगया
। टेम्पुल साहेब ने भी इस दुर्दशा का वर्णन किया।

उन्होंने कुलवा के कलक्टर को इसकी मरम्मत करवाने की सलाह दी थी। डगमल साहब ने भी एक किताब छपवाई थी। उन्होंने मरहठों को खूब फटकारा था। इन लेखों के कारण जनता में आन्दोलन शुरू हो गया। लेकिन इसका प्रभाव देर तक नहीं रहा। अप्रैल सन् १८९५ ई० से केसरी में तिलक जी ने इसके बारे में लेख छापने आरम्भ कर दिये। केसरी के लेखों का जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। शिवाजी की समाधि के लिए धन इकट्ठा होने लगा। केसरी में चंदा देने वालों का नाम बराबर छापा जाता था। शिवाजी-स्मारकफंड कमेटी बनाई गई। उसके अनुसार काम आरम्भ हुआ। तिलकजी के उद्योग से कोल्हापुर के महाराजा ने भी उससे सहयोग किया। बड़ी-बड़ी सभायें की गई। जनता खूब उत्साहित हुई, बडौदा में भी कई सभायें हुई। चारों तरह खूब जोर से इसकी चर्चा होने लगी। कोई चाहता था कि शिवाजी की मूर्ति स्थापित की जाय और कोई कहता था कि उनके नाम से बिना फीस विद्यालय खोला जाय। कुछ लोग रायगढ़ के मरम्मत कराने के पक्ष में थे। जब तिलक ने इसका बहुत जबरदस्त आन्दोलन शुरू किया तो अंगरेजी अखबारों ने इनका विरोध किया। लेकिन दिन ब दिन यह आंदोलन बढ़ता ही गया। तिलक जी बराबर केसरी में इस सम्बन्ध के लेख निकाला करते। कभी लेख बन्द नहीं किया। इनके बहुत

परिश्रम करने पर चन्दे की रकम लगभग नौ हजार तक पहुँच गई । उसके बाद बहुत हाथ पैर पीटने पर भी वह नौ हजार से अधिक न बढ़ सकी ।

तिलक जी ने एक बड़ी भारी सभा करने का विचार किया । सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इस सभा के सभापति चुने गये । बड़ी भीड़ हुई । इसी अवसर पर पं० मदनमोहन मालवीय जी भी वहाँ पहुँच गये । मालवीय जी और बनर्जी ने बड़ा जबरदस्त व्याख्यान दिया । इसके अलावा और भी कई सज्जनों ने व्याख्यान दिये । इसके बाद केसरी में शिवाजी-उत्सव के नियम छापे गये । इसी समय शिवाजी तथा अफजल खाँ के वध का प्रश्न उठ खड़ा हुआ । इधर-उधर वाद-विवाद होना शुरू हो गया । इस सम्बन्ध में एक सभा डेकेन कालेज के इतिहास विभाग में हुई । बड़ा वाद-विवाद हुआ, अन्त में सभापति मिस्टर गोइन ने यह सिद्ध किया कि जो कुछ शिवाजी ने किया था वह अपने स्वार्थ के लिए नहीं जिया । उन्होंने सारे राष्ट्र के लिए किया था ।

इस उत्सव के मनाने के लिए कलेक्टर साहेब ने आज्ञा देने से इनकार कर दिया । तब तिलक जी ने गवर्नर से मिल करके आज्ञा ली । १३ जून सन् १८९७ ई० को यह उत्सव मनाया गया । इसी दिन शिवाजी अपनी गद्दी पर बैठे थे । जब तिलक जी गवर्नर का आडेर लेकर रायगढ़ पहुँचे तो वहाँ बड़ी भीड़ जमा हो गई थी । रायगढ़ मे

जितनी भीड़ इस समय हुई उतनी कभी भी नहीं हुई थी। प्रत्येक मनुष्य प्रसन्न था। बारहों मावल प्रदेश के अगुआ इसमें शामिल हुए थे। टूटी फूटी मूर्तियाँ ठीक की गईं। पीने का पानी साफ किया गया और रास्ता बनाया गया। सब से ऊँची जगह पर शिवाजी और गुरू रामदास की तस्वीरें रक्खी गईं। मावलों ने शिवाजी की गद्दी के सामने अपनी अपनी हैसियत के अनुसार नारियल और सुपारी का नजराना चढ़ाया। कई एक व्याख्यान हुए और रात को ठाकुर जी की सवारी निकाली गई। दूसरे दिन किला देखा गया। इस अवसर पर सरकार के कई आदमी आये थे। इन लोगों ने इसकी रिपोर्ट सरकार के पास भेजी। सरकार ने शिवाजी का उत्सव मनाना राजद्रोह में लिया।

रायगढ़ के उत्सव के बाद से स्मारक फंड में रुपया कम आने लगा। तिलक जी ने फिर भी कई लेख लिखे लेकिन इसका कुछ असर न हुआ। इसके बाद तिलक जी के ऊपर राजद्रोह का मुकद्दमा चलाया गया और उनको सजा हो गई। तिलक जी जिस काम को हाथ में ले लेते थे उसको कभी अधूरा नहीं छोड़ते थे। उन्होंने सोचा कि जेल से आने के बाद इसको फिर शुरू करेंगे। जेल से छूट कर आने पर रायगढ़ में फिर उत्सव मनाया गया। इस बार सारे भारतवर्ष के लोग इसमें शामिल हुए थे।

तिलक पर राजद्रोह का मुकद्दमा

तिलक जी ने १५ जून को केसरी में शिवाजी उत्सव का पूरा विवरण छापा। इसके पहले कई एक कवितायें भी केसरी में छप चुकी थीं। इन कविताओं का जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इसी बीच में २२ जून को रैन्ड और एयर्स्ट नाम के दो अंग्रेजों का खून हो गया। सारे भारत में खलबली मच गयी। सब अंग्रेज और अङ्गरेजी पत्रों ने बड़ी हलचल मचाई। सरकार ने समझा कि इस उत्सव और हत्या से बहुत गहरा सम्बन्ध है। सरकार ने तिलक जी को गिरफ्तार कर लिया और उनके ऊपर राजद्रोह का मामला चलाया।

मिस्टर प्यू और मिस्टर गार्थ दो बैरिस्टर कलकत्ते तिलक जी की तरफ से मुकदमे की पैरवी के लिये बुलवाये गये। हाईकोर्ट ने मिस्टर गार्थ को बहस करने की इजाजत नहीं दी। मिस्टर प्यू ने बड़ी खूबी से बहस की। उन्होंने कहा कि अगर तिलकजी का इस हत्या से सम्बन्ध है तो उनके ऊपर हत्या का मामला क्यों नहीं चलाया गया। इस मामले की प्रायः सभी बातें तिलक जी के पक्ष में हैं। यह मुकद्दमा इनके ऊपर नहीं चल सकता। यह केवल रैन्ड साहब की हत्या के कारण चलाया गया है। यह मामला पूना में चलाया जाना चाहिये था; वहाँ की जूरी तो कम से कम मराठी भाषा जानती होती, यहाँ पर तो जज और जूरी कोई भी मराठी भाषा नहीं जानते। इस मामले में

गवाह नहीं बुलाये गये हैं। उनका बुलाना बहुत आवश्
था। जिन लेखों के ऊपर यह मामला चलाया गया
उनमें अधिक कवितायें हैं। कविताओं की भाषा आलंका
होती है। इसलिये उसके शब्दार्थ से मामला नहीं चल
जाना चाहिये था। यह उत्सव स्काटलैंड और आयरलैंड
आवर्ट ब्रूस, और विलियम वालेस उत्सवों के समान है।

उन्होंने इन लोगों से कहा कि आप लोग भी तो अप
उपरोक्त उत्सवों पर तरह २ के अनर्गल शब्द बका करते
हैं। उत्तम लोग भी तो प्रायः स्वराज माँगने लग जाते हैं
लेकिन आप लोगों के ऊपर कोई मामला क्यों नहीं चलाया
जाता। यह उत्सव ठीक पश्चिमी ढङ्ग के हैं। इस सम्बन्ध
में तिलक जी ने कोई राजद्रोहात्मक लेख नहीं लिखा है।
अफजल खाँ के बध का समर्थन करने में यह नहीं कहा जा
सकता कि रैंड साहब की हत्या के लिये जनता उत्साहित
की गयी है। अगर सच में सरकार समझती है कि लेख से
हत्या के लिये उत्तेजना फैलायी गयी है और यही
उनकी हत्या का कारण है तब उनपर राजद्रोह का मामला
क्यों चलाया गया। उन पर तो कतल करने का मामला
चलाया जाना चाहिये था। अफजल खाँ के सम्बन्ध में
अनेक लोगों ने भी लेख लिखे हैं और सभाये की हैं। तब
अकेले तिलक ही पर मामला क्यों चलाया जा रहा है
अगर यह कहा जाय कि यह चर्चा इनी हत्या के लिये

तायी गई है तब इसका सिद्ध करना बहुत मुश्किल है। ार जरा चटपटी भाषा में प्रजा के कष्टों का वर्णन किया या है तब यह राजद्रोह नहीं कहा जा सकता। यह भी र है कि एक मनुष्य की हत्या से, यह कभी नहीं कहा । सकता कि उससे सारी बृटिश सत्ता के नाश का उपाय ज्या जा रहा है। हत्या के सम्बन्ध में भी किसी षडयन्त्र । पता नहीं चलता तब यह कैसे स्वीकार किया जाय कि तने बड़े बृटिश राज्य के उलट देने का षड्यन्त्र किया या है। तिलक जी ने आर्वणी के सम्बन्ध में भी लेख लखा है उस लेख से उनकी राज-भक्ति प्रकट होती है।

वैरिस्टर ने तिलक जी को बिल्कुल निर्दोष साबित कर दिया। लेकिन यह सब निष्फल गया। तिलक जी को डेढ़ रस की कड़ी कैद की सजा हो गई। इसकी अपील हाई कोर्ट में की गई लेकिन कुछ फायदा न हुआ। प्रिवी कौंसिल i हाईकोर्ट के फैसले की खूब धज्जियाँ उड़ाई गईं किन्तु फिर भी कुछ परिणाम न निकला। अन्त में प्रोफेसर मोक्स-मूलर और विलयम हन्टर ने महारानी विक्टोरिया से तिलक जी की बड़ी तारीफ की और उनको छोड़ देने की प्रार्थना की। विक्टोरिया ने उनको छोड़ दिया। लेकिन तिलक जी को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि वे सरकार के विरुद्ध कोई भी काम न करेंगे।

कैदखाने के कष्ट से उनका स्वास्थ्य फिर बिगड़

गया। वे स्वास्थ्य-सुधार के लिए रायगढ़ और सिलोन ग
और अपना स्वास्थ्य फिर ठीक कर लिया।

सन् १८९६ और १८९७ में महाराष्ट्र में बड़े जो
का प्लेग और अकाल फैला। लाखों आदमी प्लेग औ
अकाल से मरने लगे। तिलक जी ने जनता की बड़ी भ
सेवा की। उन्होंने सरकार को भी लोगों की रक्षा के लिए बहु
तङ्ग किया। तिलक जी ने स्वयं प्रजा की सहायता करना शुरू
कर दिया। उन्होंने सस्ते अनाज की दूकानें और अस्पताल
खुलवाये। इन्होंने शोलापुर के जुलाहों की भी बड़ी मद
की। प्लेग के कारण सब लोग शहर से बाहर चले गये थे
तिलक जी बिल्कुल नहीं डरते थे और सदैव रोगियों की
सेवा के लिए तैयार रहते थे।

सन् १९०८ ई० में काँग्रेस के नेताओं में मतभे
फैल गया। बङ्गाल में भी बहुत गड़बड़ी मची। लोग इध
उधर बम्ब फेंकने लगे। मुज़फ़्फ़रपुर में एक बङ्गाली
गलती से दो औरतों को मार डाला। अङ्गरेजी पत्रों
बड़ा आन्दोलन किया। एक पत्र ने लिखा था कि अग
एक अङ्गरेज मारा जाय तो दस हिन्दुस्तानियों को फाँ
पर लटका देना चाहिये।

इस बम्ब के बारे में करीब करीब सभी पत्रों ने
अपनी राय छापी थी। केसरी में भी तिलक जी ने
एक लेख लिखे। तिलक जी ने साफ तौर से लिख दि

कि बम्ब चलाना बुरा है। लेकिन इसका जन्म सरकार कारण ही हुआ है। यदि सरकार लोगों के साथ अच्छा व करने लगे तो यह सब आप से आप बंद हो जायँ।

इन सब बातों के कारण सरकार ने तिलक जी राजद्रोही समझा। उसने उनको पकड़ लिया। उन पर मला चलाया गया। तिलकजी बम्बई में अपने मित्र के ाँ थे। रात को वारन्ट मिला। वारंट देखते ही वे उस फ़सर के साथ चल दिये। वे यह भी जानते थे कि जमा- मंजूर नहीं होगी। इसलिये वे जाते ही आराम से सो । १३ जुलाई को उनका मामला पेश हुआ। इस मले में ९ आदमियों की एक जूरी बनाई गई थी। जिस ७ अंगरेज और दो पारसी थे। मराठी जानने वाला कोई नहीं था। लोकमान्य तिलकजी ने स्वयं अपनी वकालत थी। इस वकालत से सभी लोग दंग रह गये थे।

जूरियों ने तिलकजी को दोषी ठहराया; जज ने वर्ष के लिए देश निकाले की सजा दी। एक हजार ये का जुर्माना भी किया। यह खबर फैलते ही बम्बई दुकानें बन्द हो गईं। कुलियों ने हड़ताल कर या। तिलकजी उस समय ५० वर्ष के थे। बहुत गों ने समझा कि अब वे वापस नहीं आवेंगे। वे िश्य अपने देशवासियों और मित्रों के विरह में ...

जावेंगे। वे मांडले भेजे गये। इसी बार तिलकजी ने
रहस्य नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ रचा।

सन् १६१४ ई० में ६ वर्ष देश के बाहर रह
तिलकजी फिर अपने देश वापस आगये। सारे भारत
प्रसन्नता छा गई। महाराष्ट्र का तो कहना ही क्या!
तिलकजी वापस आये तो योरोपीय महायुद्ध प्रारम्भ
गया था। जेल से आते ही तिलकजी ने फिर राजनी
काम करना शुरू कर दिया।

तिलक और कांग्रेस

तिलकजी कालेज छोड़ते ही राजनैतिक कामों
में लग गये। उन्होंने पहिले ही से कांग्रेस का काम
शुरू कर दिया था। वह बम्बई की प्रांतीय कांग्रेस के मं
थे तथा दसवीं कांग्रेस की स्वगत-कारिणी-समिति के
मंत्री थे। काँग्रेस में मतभेद होने के कारण उन्होंने
बार अपना पद त्याग दिया था। १८८६ की कांग्रेस
उन्होंने एक प्रस्ताव पेश किया था। जिसमें उन्होंने धा
सभाओं के सदस्यों का चुनाव गुप्त रूप से कराने पर
दिया था। गोखले ने इसका अनुमोदन किया था।
कर्जन ने भारतवर्ष में बड़ी सख्ती की थी। कई
को बिना मामला चलाये ही देश से बाहर निकाल
था। और भी कई प्रकार के मनमाना काम किये
इन सब कारणों से राजनैतिक नेता भी बिगड़ गये थे

बहुत से लोग तो ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहते थे। ये लोग गरमदल वाले कहलाते थे। तिलकजी इस दल के प्रधान नेता थे। दूसरा दल नरम दल कहलाता था। इस दल के नेता गोखले थे।

सन् १६०८ ई० में तिलकजी कैद होकर मांडले चले गये, इस कारण कई साल तक तिलकजी का सम्बन्ध कांग्रेस से नहीं रहा। लोगों ने दोनों दलों को मिलाने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु कुछ न हो सका। सन् १६१४ में तिलक जी के वापस आ जाने पर विशेप रूप से लिखा पढ़ी हुई और सफलता प्राप्त होगई। सन् १६१५ की कांग्रेस में दोनों दलों में मेल होगया। अब फिर तिलकजी कांग्रेस में काम करने लगे। सन् १६१६ में इन्होंने महाराष्ट्र होमरूल लीग की नींव डाली थी।

सन् १६२० में भारतवर्ष में बड़ा आन्दोलन शुरू हुआ। महात्मा गांधी ने असहयोग करने का निश्चय कर लिया था। लाला लाजपतराय कौंसिल से वायकाट करा रहे थे। पर तिलकजी के विचार इन दोनों से भिन्न थे। लोगों का प्रस्ताव था कि इस कांग्रेस के सभापति श्री तिलकजी हों। लेकिन सभापति लाला लाजपतराय चुने गये। इसके बाद तिलकजी की मृत्यु हो गई।

तिलक जी और शिरोल का मामला

सरवेलेंटाइन शिरोल ने एक किताब लिखी थी।

उसका नाम था भारतीय अशांति। उसमें उन्होंने लिख
था कि सारी अशान्ति और षड्यंत्रों की जड़ तिलकजी हैं।
तिलक जी ने उन पर मामला चलाना चाहा। उनक
ख्याल था कि इङ्गलैंड की जूरी न्याय करेगी। उन्होंने
इस मामले को प्रीवी कौंसिल में दायर कर दिया
पासपोर्ट मिलने में बड़ी अड़चनें पड़ीं। अन्त में तिल
जी विलायत के लिए रवाना हो गये। लेकिन न जा
क्यों सरकार ने पासपोर्ट रद्द कर दिया। तिलक जी क
कागजों की नकल भी नहीं दीं। शिरोल साहब को इन
सारे कागजों की नकल मिल गई थी। उनके वकील
जूरियों को खूब भड़काया। उनके वकील कार्सन साहब ने
अपनी बहस ने कहा था कि यदि इस बार तिलक जी की
जीत हुई तो भारत में अंगरेजों की मिट्टी पलीद हो जावेगी।
सर जान सिसरान साहब जज थे। उन्होंने खर्चे के साथ
तिलक जी का दावा खारिज कर दिया। इस फैसले से भारत
में बड़ा असंतोष फैला। तिलक जी बड़े चिंतित हुये। इस
मामले में उन्हें ३ लाख रुपये का नुकसान हुआ।

विलायत में तिलक जी

जिस समय तिलक जी विलायत में थे तब उन्होंने
कांग्रेस के प्रतिनिधि बनकर बड़ा काम किया। उन्होंने इङ्ग-
लैंड के मजदूरों को भारत की दशा अच्छी तरह बतलायी।
उन्होंने इङ्गलैंड की काँग्रेस कमेटी का सुधार और संगठन

किया। उस कमेटी ने भारत के स्वराज के लिये जगह-जगह आन्दोलन करना शुरू किया। पंजाब के दंगे को लेकर तिलक जी ने इङ्गलैंड में खूब आन्दोलन किया।

तिलक जी की पुस्तकें

तिलकजी का अधिक समय राजनैतिक कामों में लग जाता था। पत्रों के सम्पादन इत्यादि से उन्हें बहुत कम अवकाश मिलता था। इसलिये वे विद्याध्ययन प्रायः जेलों ही में किया करते थे। वे कुल तीन बार जेल गये थे। तीनों बार जेल में उन्होंने एक एक किताब लिखी। वे देव-नागरी अक्षरों को बहुत पूर्ण मानते थे, और सर्वत्र इसका प्रचार करना चाहते थे। पहिली बार जब वे जेल गये तो उन्होंने वेदों का अध्ययन खूब किया। अधिकतर वे धार्मिक दार्शनिक पुस्तकें पढ़ा करते थे। वेद कब बने थे, इसका पता उन्होंने बड़ी खूबी के साथ लगाया है। उन्होंने इस पर कई एक अच्छे २ लेख लिखे थे। वे सभी लेख यूरोप के पश्चिमी विद्या विशारदों की बैठक में आदर के साथ पढ़े गये थे। सन् १८९३ ई० में वे सब लेख छापे गये थे। उसका नाम ओरायन रखा गया था। इसमें तिलक जी ने साबित किया कि ईसा से ४००० वर्ष पहिले भी यूनानी और हिन्दू लोग एक साथ रहते थे। इसको पढ़ने से पता चलता है कि तिलक जी को गणित और ज्योतिष का

था। यूरोप या अमरीका के विद्वानों ने तिलक जी की खूब
प्रशंसा की है।

आर्य लोग कहाँ के रहने वाले थे। इसका पता ठीक
ठीक लोगों को नहीं मालूम। कुछ लोग कहीं का और
कुछ लोग कहीं का बतलाते हैं। इस सम्बन्ध में यूरोप के
विद्वानों ने कई एक पुस्तकों छपवाई हैं। तिलकजी ने भी
इस विषय पर कई अच्छे २ लेख लिखे हैं। तिलकजी को
जो कुछ समय अन्य कामों से मिलता था, वे अध्ययन में
बिताते थे। प्राचीन बातों की खोज में सदैव लगे रहते
थे। ओरायन के बाद तिलकजी ने जो किताब लिखी है,
उसका नाम है "वेदों के आर्यों का आदि निवास स्थान।"
दस वर्ष में तिलकजी ने इस ग्रंथ की रचना की थी। बहुत
छानबीन के बाद तिलकजी ने यह पता लगाया है कि
आर्य लोगों का आदि निवास-स्थान उत्तरी ध्रुव में था। तब
यह प्रदेश बर्फ से ढका नहीं रहता था जैसा कि आजकल
है। जब तिलक जी कैद हो गये तब उन्होंने जेल ही में
ऋग्वेद का अध्ययन किया था। तिलकजी जेल से वापस
आकर कुछ दिन सिंहगढ़ में थे। वहीं पर उन्होंने इस ग्रन्थ
को पूरा किया था। सन् १६०३ ई० में यह ग्रंथ प्रकाशित
किया गया। विद्वानों ने इस ग्रन्थ की बड़ी प्रशंसा की। इस
पुस्तक से तिलकजी की विद्वत्ता का परिचय खूब मिलता है।

तिलकजी ने लड़कपन ही में गीता को खूब पढ़ा था। गीता के उपदेशों को वे खूब मानते थे। वे सब को गीता पढ़ने का उपदेश दिया करते थे। सन् १७१४ ई० में इन्होंने गीता पर एक बड़ा जबरदस्त व्याख्यान दिया था।

तिलकजी ने 'गीता रहस्य' नामक एक ग्रन्थ रचा है। इसको भी उन्होंने जेल ही में लिखा था। भारत के किसी भी भाषा में ऐसा कोई ग्रंथ नहीं है। सरकार ने तिलक की लिखी हुई कापी नहीं दी। इससे जनता में बड़ा असंतोष फैला था। तिलकजी ने लोगों से कहा था कि घबड़ाने की कोई बात नहीं है। यदि सरकार उस कापी को नहीं देगी-तो मैं फिर लिख डालूंगा। वे सारी बातें मेरे दिमाग में हैं।

तिलकजी के आखिरी दिन

यद्यपि तिलकजी की तन्दुरुस्ती दिन व दिन गिरती जाती थी, किन्तु वे जी तोड़ कर काम कर रहे थे। इस समय तिलकजी के ऊपर कई लाख का ऋण हो गया था। इस ऋण से वे बड़े चिंतित थे। महाराष्ट्र वालों ने उनके साथ बड़ी सहानुभूति दिखालाई। उन लोगों ने मिलकर तिलकजी को ३ लाख की थैली भेंट दी। इससे वह उनके बहुत कृतज्ञ हुये। कोलावा वाले तिलकजी की चौसठवीं वर्ष-गाठ मना रहे थे। तिलकजी वहाँ गये थे। लौटते समय वह मोटर से आरहे थे। उनको सर्दी लग गई फिर ज्वर आने

लगा। बड़े बड़े डाक्टरों की दवा शुरू हुई, किन्तु कुछ फ़ायदा न हुआ। उनकी बीमारी दिन ब दिन बढ़ती गई। सारे देश में उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए पूजन अर्चन होने लगा, किन्तु कुछ फायदा न हुआ। उनके सारे मित्र उनको देखने के लिए बम्बई आने लगे। सरदारगृह जहां वे ठहरे थे, खचाखच भरा रहता था। बाहर इतनी भीड़ रहती थी कि कुछ कहा नहीं जा सकता। महात्मा गाँधी भी पञ्जाब से उनको देखने के लिए आये। तिलकजी उनसे बहुत प्रसन्न थे। गाँधीजी तिलकजी को छोड़कर कहीं भी नहीं जाते थे। अंत में ३१ जुलाई सन् १६२० ई० को यह महाराष्ट्र वीर परम गति को प्राप्त हुआ।

तिलकजी की अंतिम क्रिया

तिलकजी की मृत्यु के समाचार से सारे देश भर में व्याकुलता छा गई। तिलकजी जिस मकान में थे उसके चारों ओर अगणित जनता एकत्रित हो गई थी। कोई भी ऐसा नहीं था जिसको तिलकजी की बीमारी से शोक न हुआ हो। सभी उनका हाल जानना चाहते थे। वहाँ चारों तरफ बड़ा कोलाहल मचा रहता था। भीड़ कम करने के लिए सभी उपाय किये गये थे, लेकिन भीड़ बिलकुल कम नहीं होती थी। वरन् भीड़ बढ़ती ही जा रही थी।

तिलकजी की मृत्यु रात में हुई। उस समय लगभग साढ़े बारह बजे थे। जब लोगों को यह दुखद समाचार

मालूम पड़ा तो सभी शोक से व्याकुल हो गये। सवेरा होते होते कई लाख आदमी उस मकान के चारों ओर इकट्ठे हो गये। पानी भी बड़े जोर से बरसने लगा, किन्तु कोइ भी वहाँ से न हटा। सब के सब भीगते खड़े थे, और भी बहुत से लोग बराबर चले आते थे। सभी लोग उस महापुरुष के शव का दर्शन करना चाहते थे। इसलिए तिलकजी का शव एक ऊँचे स्थान पर रख दिया गया। वहाँ से यह सबको दिखाई पड़ता था।

पूना से बहुत आदमी आये। वहाँ से कई स्पेशल गाड़ियाँ छोड़ी गई थीं, लोगों का ऐसा ख्याल है कि वहाँ एकत्रित मनुष्यों की संख्या बम्बई शहर की आधी जन संख्या के बराबर थी।

महात्मा गाँधी उसी दिन से अपना असहयोग आन्दोलन आरम्भ करने वाले थे। तिलकजी की मृत्यु के कारण उन्होंने इस आन्दोलन को स्थगित कर दिया। बम्बई में तो हड़ताल हो गई थी। सभी लोग अपना अपना काम बन्द करके वहाँ आने लगे। तिलकजी के पुत्र और उनके रिश्तेदार भी आ गये थे। महात्मा गांधी, खापरडे, लाला लाजपतराय तथा और कई अन्य नेता वहाँ पहिले ही से मौजूद थे। तिलकजी के संबन्धी तथा उनके पुत्र के आजाने पर उनकी अर्थी उठाई गई। अर्थी तिलकजी के पुत्र तथा उनके और रिश्तेदारों ने अपने कन्धे पर उठाई। इस समय

सारा आकाश 'तिलकजी की जय' की आवाज से गूंज उठा। महात्मा गांधी अर्थी के आगे आगे चल रहे थे। मौलाना शौकत अली, लाला लापतराय तथा सरलादेवी आदि जलूस के साथ धीरे-धीरे चल रही थीं। अब तक वहाँ पर तिलकजी के सभी दोस्त आ गये थे। सभी शोक से बहुत मर्माहत दीख पड़ रहे थे। शव के साथ लगभग पचास भजन मण्डलियाँ थीं। वे सब उस समय के अनुकूल भजन गा रही थीं। लोगों का यह अनुमान था कि जितनी भीड़ उस शव के साथ थी, उतनी भीड़ दादाभाई नौरोजी तथा फिरोजशाह मेहता के साथ भी नहीं थी। अर्थी के साथ साथ बहुत से लोग रुपया लुटाते थे। सभी स्त्रियाँ भी शोक से व्याकुल थीं। वे छतों पर बैठकर फूलों की वर्षा कर रही थीं। तिलकजी का शव चौपाटी में जलाया गया। यह पहिला ही शव था जो यहाँ जलाया गया था। तिलकजी का शव पद्मासन के रूप में चंदन के चिता के ऊपर रखा गया। जिस समय उनके पुत्र ने दाह संस्कार करना आरम्भ किया, सारा आकाश तिलकजी की जयकार से गूंज उठा। महात्मा गाँधी तथा लाला लाजपतराय ने व्याख्यान भी दिये। इस प्रकार उस महापुरुष के शरीर का अंत हो गया।

शोक सभायें

दूसरे दिन १ अगस्त के दोपहर तक यह शोक

समाचार समस्त भारतवर्ष में फैल गया। जहाँ जहाँ यह दुखद समाचार पहुँचता था, वहाँ वहाँ की जनता शोक से पागल हो जाती थी। सारे भारतवर्ष में उस दिन शोक सभायें की गयीं। बहुत से जगहों पर तो तिलकजी की मूर्ति का दाह संस्कार किया गया। सभी जगह दुकानें बन्द हो गई थीं। हर जगह तिलकजी की यादगार बनाने के लिए कई आयोजनायें की गई। लगभग सभी दैनिक, साप्ताहिक पत्र हफ्तों शोक संवादों ही से पूर्ण रहते थे। अगर हर जगह की शोक-सभाओं का वर्णन किया जाय तो बहुत समय लगे। अतएव केवल पूना के शोक सभा का वर्णन संक्षेप में किया जाता है। तिलकजी के जीवन का ज्यादा समय इसी स्थान पर व्यतीत हुआ था।

पूना में यह खबर पहुँचते ही सारा शहर व्याकुल हो उठा। दूसरी अगस्त को तो यहाँ का अजीब हाल था। ऐसा मालूम होता था कि सारा शहर निर्जीव हो गया। वहाँ के सभी स्कूल कालेज और सार्वजनिक संस्थायें बन्द हो गई थीं। पूरी हड़ताल थी। वहाँ पर तीसरी अगस्त को एक बहुत बड़ी शोक सभा हुई। प्रिंसपल परांजपे इस सभा के सभापति थे।

इस सभा में पूना भर के विद्यार्थी और अध्यापक सम्मिलित हुए। सभापति ने बड़े जोरदार शब्दों में तिलकजी के गुणों और उद्देशों का वर्णन किया था। उसी

सारा आकाश 'तिलकजी की जय' की आवाज से गूंज उठा
महात्मा गांधी अर्थी के आगे आगे चल रहे थे। मौलाना
शौकत अली, लाला लाजपतराय तथा सरलादेवी आदि
जलूस के साथ धीरे-धीरे चल रही थीं। अब तक वहाँ प
तिलकजी के सभी दोस्त आ गये थे। सभी शोक से बहु
मर्माहत दीख पड़ रहे थे। शव के साथ लगभग पचा
भजन मण्डलियाँ थीं। वे सब उस समय के अनुकू
भजन गा रही थीं। लोगों का यह अनुमान था कि जितन
भीड़ उस शव के साथ थी, उतनी भीड़ दादाभाई नौरोज
तथा फिरोजशाह मेहता के साथ भी नहीं थी। अर्थी
साथ साथ बहुत से लोग रुपया लुटाते थे। सभी स्त्रिय
भी शोक से व्याकुल थीं। वे छतों पर बैठकर फूलों व
वर्षा कर रही थीं। तिलकजी का शव चौपाटी में जला
गया। यह पहिला ही शव था जो यहाँ जलाया गया था।
तिलकजी का शव पद्मासन के रूप में चंदन के चिता के
ऊपर रखा गया। जिस समय उनके पुत्र ने दाह संस्कार
करना आरम्भ किया, सारा आकाश तिलकजी की जयकार
से गूंज उठा। महात्मा गाँधी तथा लाला लाजपतराय ने
व्याख्यान भी दिये। इस प्रकार उस महापुरुष के शरीर
का अंत हो गया।

शोक सभायें

दूसरे दिन १ अगस्त के दोपहर तक यह शोक

समाचार समस्त भारतवर्ष में फैल गया। जहाँ जहाँ यह दुखद समाचार पहुँचता था, वहाँ वहाँ की जनता शोक से पागल हो जाती थी। सारे भारतवर्ष में उस दिन शोक सभायें की गयीं। बहुत से जगहों पर तो तिलकजी की मूर्ति का दाह संस्कार किया गया। सभी जगह दुकानें बन्द हो गई थीं। हर जगह तिलकजी की यादगार बनाने के लिए कई आयोजनायें की गई। लगभग सभी दैनिक, साप्ताहिक पत्र हफ्तों शोक संवादों ही से पूर्ण रहते थे। अगर हर जगह की शोक-सभाओं का वर्णन किया जाय तो बहुत समय लगे। अतएव केवल पूना के शोक सभा का वर्णन संक्षेप में किया जाता है। तिलकजी के जीवन का ज्यादा समय इसी स्थान पर व्यतीत हुआ था।

पूना में यह खबर पहुँचते ही सारा शहर व्याकुल हो उठा। दूसरी अगस्त को तो यहाँ का अजीब हाल था। ऐसा मालूम होता था कि सारा शहर निर्जीव हो गया। वहाँ के सभी स्कूल कालेज और सार्वजनिक संस्थायें बन्द हो गई थीं। पूरी हड़ताल थी। वहाँ पर तीसरी अगस्त को एक बहुत बड़ी शोक सभा हुई। प्रिंसपल परांजपे इस सभा के सभापति थे।

इस सभा में पूना भर के विद्यार्थी और अध्यापक सम्मिलित हुए। सभापति ने बड़े जोरदार शब्दों में तिलकजी के गुणों और उद्देशों का वर्णन किया था। उसी

दिन वहाँ की जनता को यह मालूम हो गया था कि दूसरे दिन ता० ४ अगस्त को तिलकजी का फूल बम्बई से आवेगा। सभी लोग उसकी बाट जोहने लगे। दूसरे दिन कई हजार जनता स्टेशन पर पहुँच गई। सभी गाड़ी के आने की प्रतीक्षा करने लगे। पूना स्टेशन के चारों ओर आदमी ही आदमी दिखाई पड़ रहे थे। स्टेशन के पास की सभी सड़कें आदमियों से खचाखच भरी थीं। छतों पर स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। किसी तरह रेलगाड़ी आई। 'तिलकजी की जय' से आकाश गूंजने लगा। तिलकजी के फूल पर पुष्प वर्षा होने लगी। एक गाँड़ी मँगाई गई और उसी पर एक विमान सजाया गया। विमान में तिलकजी का फूल रखा गया। इस तरह तिलक जी का फूल उनके घर पहुँचा वहाँ के निवासियों ने इस विमान को पूना की गली गली में घुमाया था। जुलूस के साथ के सभी नंगे सर थे। पुलिस वालों ने भी इनके फूल की इज्जत की। वे लोग भी अपनी अपनी पगड़ी उतार लेते थे। सुनने में आता है कि यूरोपियन भी आदर दिखाने के लिए अपनी टोपियाँ उतार लेते थे।

तिलकजी की विशेषतायें

भारतवर्ष में जितने नेता हुये हैं, तिलकजी विद्या में सबसे बढ़े चढ़े थे। वे इस देश ही के नहीं बल्कि संसार के विद्वानों में से एक थे।

लोगों का यह भी कहना है कि तिलकजी के मुकाबले सर्व प्रिय नेता और कोई नहीं था। जितनने बड़े वे विद्वान थे, उतने ही देशभक्त भी थे। देश के नेता होने के लिये मनुष्य में जिन जिन गुणों के होने की आवश्यकता है, वे सभी उनमें विद्यमान थे। जनता पर उनका प्रभाव जादू का सा पड़ता था। तिलकजी बड़े निर्भीक थे। किसी भी नेता में इस गुण का होना बहुत जरूरी है। तिलक जी ने साधारण जनता का काफी अध्ययन किया था। वे उससे खूब परिचित थे, वे सदैव जनता को साहसी और कर्त्तव्य-परायण बनाने की कोशिश किया करते थे। कांग्रेस पर भी उनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। तिलकजी के जीवन का लगभग दस वर्ष जेल में बीता था। दुख से वे कभी भी नहीं घबराते थे। त्याग और कष्ट के कारण सभी उनका आदर करते थे।

विद्यार्थियों को इनके जीवन सी बहुत से उपदेश की बातें मालूम होंगी। तिलकजी के पिता बड़े गरीब थे। वे केवल ५) मासिक वेतन पर नौकर थे। संस्कृत तथा गणित का अध्ययन उन्होंने अपने आप किया था। पिता जी का यह गुण पुत्र में भी मौजूद था। उन्होंने भी कितनी मिहनत से विद्याध्ययन किया था। स्वास्थ्य का तिलकजी बड़ा ख्याल रखते थे। नई रोशनी के होते हुए भी वे सभी प्राचीन रिवाजों को बुरा नहीं कहते थे। ॥

में चरित्र-बल की बड़ी जबरदस्त आवश्यकता है। बिना इसके वह कोई भी सुधार अथवा कार्य नहीं कर सकता। हम सभी का कर्त्तव्य है कि अपने देश, तथा जाति की उन्नति के लिए प्रयत्न करें। जहाँ तक हो सके विद्याभ्यास करें। जब हम अपना ज्ञान बढ़ावेंगे तो और दूसरों का भी बढ़ा सकेंगे। अगर स्वयं बेवकूफ बने रहेंगे तो कुछ भी नहीं कर सकेंगे।

सचित्र, मनोरञ्जक, शिक्षाप्रद, सरल, रोचक, जीवन
ऊँचा उठाने वाली महापुरुषों की जीवनियाँ। मू० ।=)

१—श्रीकृष्ण
२—महात्मा बुद्ध
३—रानाडे
४—अकबर
५—महाराणा प्रताप
६—शिवाजी
७—स्वामी दयानन्द
८—लो० तिलक
९—जे० एन० ताता
१०—विद्यासागर
११—स्वामी विवेकानन्द
१२—गुरु गोविन्दसिंह
१३—वीर दुर्गादास
१४—स्वामी रामतीर्थ
१५—सम्राट अशोक
१६—महाराज पृथ्वीराज
१७—श्रीरामकृष्ण परमहंस
१८—महात्मा टाल्स्टाय
१९—रणजीतसिंह
२०—महात्मा गोखले
२१—स्वामी श्रद्धानन्द
२२—नेपोलियन
२३—बा० राजेन्द्रप्रसाद
२४—सी० आर० दास
२५—गुरु नानक
२६—महाराणा सांगा
२७—पं० मोतीलाल नेहरू
२८—पं० जवाहरलाल नेहरू
२९—श्रीमती कमला नेहरू
३०—मीराबाई
३१—इब्राहीम लिंकन
३२—मुसोलिनी
३३—अहिल्याबाई
३४—हिटलर
३५—सुभाषचन्द्र बोस
३६—राजा राममोहनराय
३७—लाला लाजपत राय
३८—महात्मा गांधी
३९—महामना मालवीय जी
४०—जगदीशचन्द्र बोस
४१—महारानी लक्ष्मीबाई
४२—महात्मा मेजिनी
४३—महात्मा लेनिन
४४—महाराज छत्रसाल
४५—अब्दुल गफ्फार खाँ
४६—मुस्तफा कमालपाशा
४७—अबुलकलाम आजाद
४८—स्टालिन
४९—वीर सावरकर
५०—महात्मा ईसा
५१—वीर केसरी हम्मीरदेव
५२—डी० वेलरा
५३—गैरीबाल्डी
५४—स्वामी शंकराचार्य
५५—सी० एफ० एन्ड्रूज
५६—गणेश शङ्कर विद्यार्थी
५७—डा० सनयात सेन
५८—समर्थ गुरु रामदास
५९—महारानी संयोगिता
६०—दादाभाई नौरोजी
६१—सरोजिनी नायडू
६२—वीर बादल
६३—पट्टाभि सीतारामैया
६४—देवी जोन
६५—प्रिन्स बिस्मार्क
६६—कार्लमार्क्स
६७—कस्तूर बा
६८—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
६९—सरदार पटेल
७०—संत ज्ञानेश्वर

वीर सावरकर
छात्रहितकारी पुस्तकमाला दारागंज, प्रयाग।
पुस्तक को पर

बाल-चरित-माला सं०—४९

विनायक दामोदर सावरकर

लेखक

श्री गोविन्दराव मराठे

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

तृतीय संस्करण] जनवरी १९४७

प्रकाशक
श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग

जयपुर के सोल एजेन्ट
प्रभात प्रकाशन, जयपुर
जोधपुर के सोल एजेन्ट
भारतीय पुस्तक भवन, जोधपुर

मुद्रक
सरयू प्रसाद पांडेय 'विशार
नागरी प्रेस, दारागञ्ज,
प्रयाग।

वीर सावरकर

जन्म और बचपन

स्वातंत्र्य-वीर बैरिस्टर विनायक दामोदर सावरकर का जन्म २८ मई सन् १८८३ को नासिक जिले के भगूर नामक गाँव में हुआ था। ये जाति के चित्पावन महा-राष्ट्र ब्राह्मण हैं। इनके पिता का नाम श्री दामोदरपंत और माता का नाम श्री राधा बाई था। श्री दामोदरपंत बड़े ही धार्मिक, विद्वान् और एक प्रतिभाशाली कवि भी थे। इनके पूर्व-पुरुषों को पेशवा के जमाने में एक जागीर मिली थी—जो १६०६ में सरकार द्वारा जब्त कर ली गई। श्री दामोदरपंत के चार संतानें हुईं। उनके नाम क्रमशः गणेष, विनायक, मैना और नारायण रखे गये।

बचपन में इनके माता-पिता इन्हें अपने धार्मिक आचरण का पाठ पढ़ाते थे। वे इन्हें रामविजय, हरि-विजय महाभारत, बखर आदि ग्रन्थ पढ़कर सुनाते थे। भगूर के एक मराठी स्कूल में इनकी आरम्भिक शिक्षा शुरू हुई। इन्होंने कई मराठी काव्य कंठस्थ कर लिये थे। इन सब का असर बालक सावरकर पर यह पड़ा कि प्रारम्भिक शिक्षा

के साथ ही साथ इन्हें साहित्य से प्रेम हुआ। ये बचपन में ही कविता लिखने लगे। हिन्दू धर्म का मर्म इन्होंने समझा और धर्माभिमान इनमें जगा। इसी समय एक मराठी महाकाब्य लिखने की प्रतिज्ञा भी इन्होंने की।

१० साल की उम्र में इनका उपनयन संस्कार (जनेऊ) हुआ। १८९३ में इन पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। इनकी स्नेहमयी माता की मृत्यु हो गई। अब चारों लड़कों की देखभाल का काम श्री दामोदरपंत पर आ पड़ा। धैर्य के साथ वे सब का पालन-पोषण करने लगे।

इसी वर्ष पूना, बम्बई आदि शहरों में हिन्दू-मुसलमानों के दंगे हुए। सावरकर इन दंगों की खबरें 'केसरी' आदि अखबारों में पढ़ते थे। ये इन खबरों को अपने मित्रों को भी पढ़कर सुनाते थे। हिन्दू समाज को सुसंगठित करने के लिये योजनायें सोचना इनकी मण्डली ने शुरू किया। आखिर भगूर की एक मस्जिद पर इनके दल ने धावा बोल दिया। मस्जिद को तहस-नहस कर डाला। समाज को संगठित करने के लिये इन्होंने एक बालचर-दल भी बनाया। रोज मर्दानी खेल और व्यायाम के कार्य इस दल में होने लगे। इस तरह अपने शरीर को शक्तिशाली बनाने का उपाय इन्होंने शुरू किया।

शरीर के साथ-साथ मन को सुदृढ़ करने का उपाय भी इन्होंने शुरू किया। ये केसरी, जगद्धितेच्छु, गुराखी

आदि अखबार नियमित रूप से पढ़ा करते थे। उस समय कि विविध वार्ताओं के आधार पर ये अपने मित्रों को राजनैतिक बातें समझाया करते थे। देश के लिये जी-जान लड़ा देना, उसकी स्वतंत्रता के लिये अपने प्राणों को न्यौछावर कर देना, आदि उपदेशों से इन्होंने भगूर गाँव के युवकों और बालकों में जागृति पैदा कर दी। इनके दोस्तों में श्री गोपालराव देसाई, श्री भिकाजी शिंदे, वगैरह प्रमुख थे।

उस समय की राजनैतिक हलचलों से इन पर खूब असर पड़ा। ये पूर्ण स्वतंत्रता के पुजारी बन गये। अपने कुल की स्वामिनी (देवी) पर इनकी पूर्ण श्रद्धा थी। ये रोज़ हिन्दुस्तान को स्वतंत्र करने के लिये सामर्थ्य प्रदान करने की प्रार्थना अत्यंत भक्ति से देवी के सम्मुख किया करते थे। यहाँ तक कि एक दिन देवी के सामने इन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं अपना सारा जीवन देश की स्वतंत्रता के लिये अर्पण करता हूँ। वाह रे सावरकर, १५-१६ साल की उम्र में ऐसी भीषण प्रतिज्ञा करने वाले तुम जैसे देशभक्तों की जितनी पूजा की जाय, थोड़ी है।

भगूर में इन्होंने गणेशोत्सव, शिवाजी-उत्सव, आदि मनाना शुरू किया। समाज में नया जीवन भरने के लिये इन्होंने राष्ट्रीय कवितायें लिखीं। इनमें से बहुत सी कवितायें आगे चलकर जब्त कर ली गईं। पहले तो इनके

पिता इनके सद्गुणों को देख कर इन पर बहुत खुश रहा करते थे, पर अब देशप्रेम को लेकर सावरकर के मन की इस बदली हुई दशा पर उन्हें चिन्ता हुई। उन्होंने इन्हें वीर रसोत्पादिनी कवितायें लिखने से मना भी किया। पर ये कब मानने वाले थे! हाँ, ऐसी कोई हरकत ये पिताजी के सामने न करते थे, जिससे उन्हें किसी तरह की चिन्ता या कष्ट हो।

अंग्रेजी पढ़ने के लिये ये अपने बड़े भाई के साथ नासिक में रहने लगे। जिस गली में इनका घर था, उस गली के और धीरे-धीरे शहर के अधिकांश युवकों में इन्होंने देशभक्ति की लहर फैलाना शुरू किया। भाषण देने की कला में ये इतने सिद्धहस्त हो गये थे कि बड़े-बड़े वक्ताओं को इनकी प्रतिभा की प्रशंसा करनी पड़ती थी।

१८९९ में नासिक में दूसरी बार प्लेग की महामारी फैली। सावरकर अपने भाई के साथ भगूर वापस आये। पर प्लेग ने यहाँ भी अपनी धाक जमा ली। अब सावरकर बन्धुओं पर फिर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। इस रोग ने इनके पिता तथा चाचा को इस लोक से विदा कर दिया और नारायण को भी अपना शिकार बनाया। सावरकर के बड़े भाई श्री गणेशपंत ने इस समय बड़े धैर्य से काम लिया। वे अपनी औरत, विनायकराव और रोग-ग्रसित नारायण को लेकर एक जंगल में जाकर

रहे। एक टूटी-फूटी झोपडी ही उस समय उनका घर था। गाँव में रहने की सरकारी मनाही हो चुकी थी। उस समय गणेशपंत के सहायक श्री रामभाऊ दातार ने उनकी खूब मदद की। उनकी मदद से नारायण सरकारी दवाखाने में अच्छा होने लगा, पर वे खुद प्लेग के शिकार हो गये। इस तरह सावरकर पर अपनी भाभी और दोनों रोग-ग्रसित भाइयों की सेवाशुश्रूषा करने का भार आ पड़ा। ईश्वर की कृपा से इनकी सेवा सफल हुई। दोनों भाई चंगे हो गये।

सारे कुटुम्ब का भार सबसे बड़े भाई श्री गणेशपंत पर था। इन्होंने अंग्रेजी शिक्षा पाने के लिये फिर से नासिक में रहना आरम्भ किया। संयोग से सावरकर को एक से एक देश-भक्त मिलते गये। इन्होंने नासिक शहर में देशभक्ति की लहर तो फैला ही दी, एक संस्था भी [illegible] साथ कायम की। इस संस्था का नाम [illegible] रखा गया।

इस संस्था के द्वारा और अपनी [illegible] के द्वारा सावरकर का नाम सर्वतोमुखी होने [illegible] [illegible] दुनिया के इतिहास-ग्रंथों को इन्होंने खूब [illegible] [illegible] [illegible] भी इन्होंने गहरा अध्ययन [illegible], [illegible] शारीरिक मानसिक शक्ति बढ़ाने के लिये इन्होंने [illegible] [illegible]

बहुत से राजनैतिक अखबारों में इनके राजनीति पर विद्वत्ता पूर्ण लेख छपने लगे।

१६०१ में इन्होंने इन्ट्रेन्स परीक्षा पास की। इस साल जव्हार स्टेट के महाराज के धर्मचारी श्री भाऊरा चिपलूणकर की यमुना नामक लड़की के साथ इनका विवाह हो गया।

कालेज और विश्वविद्यालय में

इन्ट्रेन्स परीक्षा पास करने पर सावरकर उच्च शिक्षा पाने के लिये पूना चले गये। वहाँ ये फर्ग्युसन कालेज में भर्ती हो गये। पूना जाते समय इन्होंने 'मित्रमेला' के सदस्यों को पूर्ण स्वतंत्रता का संदेश दिया। सावरकर में सबसे बड़ी विचित्रता यह थी कि ये जहाँ भी जाते, वहाँ अपने व्यक्तित्व की धाक जमा देते। इनके कालेज में भर्ती होते ही कालेज और बोर्डिंग के वातावरण में काया-पलट हो गया। पहले यहाँ के विद्यार्थियों में विलासिता भरी हुई थी। पढ़ना, और छुट्टियों में खेल-कूद कर मौज करना ही इनका काम था। सावरकर ने साथियों में नया जीवन भर दिया। देशप्रेम की लहर यहाँ भी इन्होंने फैला दी। सावरकर और उनके साथियों को कालेज के अन्य विद्यार्थी 'सावरकर-संघ' के नाम से पुकारने लगे। बोर्डिंग में मैजिनी, गैरिबाल्डी आदि वीरों की गाथायें पढ़ी जाने

लगीं। श्री शिवाजी की पूजा होने लगी। राष्ट्रीय गीत गाये जाने लगे। 'राष्ट्रीयसप्तपदी' नामक व्याख्यानमाला सावरकर ने इसी वक्त तैयार की थी। रोज एक जगह जमकर ये लोग विचार-विनिमय करते थे। छुट्टियों के दिनों में ये ऐतिहासिक स्थानों की सैर किया करते थे।

सावरकर का व्यक्तित्व बोर्डिंग और कालेज तक ही सीमित न रह सका। पूना के समस्त वातावरण में वह फैल गया। उसी समय राष्ट्रीय सभा यानी कांग्रेस में दो पक्ष हो गये थे। एक पक्ष स्व० लोकमान्य तिलक का था और दूसरा श्री फिरोजशाह मेहता का था। ये पक्ष जहाल और मवाल पक्ष के नाम से पुकारे जाने लगे। सावरकर पर जहाल पक्ष का खूब असर पड़ा। लोकमान्य तिलक को इन्होंने अपना राजनैतिक गुरु माना। जहाल पक्ष का मत था कि स्वराज्य भीख माँगने से नहीं मिल सकता। वह अपने पैरों पर खड़े होकर देश-व्यापी क्रान्ति और शस्त्र के द्वारा प्राप्त होगा।

पूना की सार्वजनिक सभाओं में सावरकर भाषण देने लगे थे। लोकमान्य तिलक के सभापतित्व में २२-८-१६०६ को एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें सावरकर ने ओजस्वी भाषण दिया। सब लोगों ने विदेशी कपड़े इस्तेमाल न करने की शपथ ली। सभा के [illegible] से विदेशी कपड़े मांगकर उनकी एक बड़ी होली

की बात सावरकर ने सोची। लो० तिलक ने इसका विरोध किया, पर सावरकर ने अपने मित्रों की मदद से गाड़ी भर विदेशी कपड़े जमा कर लिया। इनको गाड़ियों में भरकर एक जुलूस निकाला गया। आखिरकार एक खेत में इन कपड़ों की एक जबरदस्त होली जलाई गई इस प्रसंग पर देशभक्ति से ओत-प्रोत व्याख्यान भी हुए

कालेज के अधिकारी बहुत पहले ही से सावरकर पर संदेह करने लगे थे। उनके क्रान्तिशील व्यवहार पर वे संतुष्ट न थे। उपरोक्त घटना से उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। स्वदेशी आंदोलन में भाग लेने का अभियोग लगाकर कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल रैंग्लर परांजपे ने इन्हें कालेज से निकाल दिया। इन पर १०) रु० जुर्माना भी किया गया। सौभाग्यवश ये अपनी बी० ए० परीक्षा की अर्जी बम्बई युनिवर्सिटी में रवाना कर चुके थे, पर इन्हें डर था कि कालेज के दण्ड-विधान से प्रेरित होकर युनिवर्सिटी के अधिकारी उनकी अर्जी कहीं नामंजूर न कर दें।

रैं० परांजपे की इस हरकत की निन्दा उस समय के अखबारों ने खूब की। राजनैतिक मामलों में जी-जान से सहयोग देने पर भी सावरकर पढ़ने में खूब मेहनत करते थे। इन्होंने बी० ए० परीक्षा अच्छी श्रेणी से पास की। बी० ए० पास कर चुकने पर प्रचार कार्य के लिये

इन्होंने महाराष्ट्र प्रान्त में पर्यटन करना शुरू किया। बम्बई, कल्याण उहाणू, नासिक नगर आदि शहरों में व्याख्यान देने के लिये इनको निमंत्रण दिये गये। इनके भाषणों और राष्ट्रीय गीतों की चर्चा घर-घर होने लगी।

१६०६ में ये एल्० एल्० बी० परीक्षा का पाठ्य-क्रम पूरा करने के लिये बम्बई में आकर रहे। इनके आन्दोलनों की ओर सरकार संदेह की दृष्टि से देखने लगी थी और इन्हें डर था कि कहीं उन्हें पकड़ने के लिये पुलिस वारन्ट न जारी करे। ये बम्बई में ५-६ महीने ही रहे। इतने थोड़े से समय में इन्होंने वहाँ भी कायापलट कर दिया। समान ध्येय के नवयुवकों को इकट्ठा करके इन्होंने 'अभिनव भारत' संस्था कायम की। इस संस्था का उद्देश्य क्रान्ति द्वारा स्वतन्त्रता हासिल करने का था। धीरे-धीरे इस संस्था की शाखायें सारे देश में फैल गईं।

नासिक में इनके बड़े भाई श्री गणेशपंत 'मित्र मेला' का काम करते थे। बम्बई में जब सावरकर 'अभिनव भारत' की स्थापना कर चुके, तब वे नासिक चले आये। यहाँ इन्होंने 'मित्रमेला' का रूप 'अभिवन भारत' की एक शाखा में बदल दिया।

बम्बई शहर में अपना प्रचार-कार्य पूरी तरह सफल करने के बाद इन्होंने विलायत जाकर वहाँ भी अपने तर

का प्रचार करने की बात सोची। इतने दिन इनके ससुर पढ़ने का सारा खर्च देते थे। इंगलैंड में रहने वाले 'होम-रूल' नामक संस्था के सूत्रधार श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 'इन्डियन सोशलिस्ट' अखबार में यह प्रकाशित किया कि विलायत में आकर ऊँची शिक्षा प्राप्त करने वाले दो-तीन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी जायगी। सावरकर के राजकीय गुरु लो० तिलक और 'काल' के संपादक श्री० शिवराम-पंत परांजपे ने इनको छात्रवृत्ति मिलने की सिफारिश की। तदनुसार इनको छात्रवृत्ति मिली। शेष खर्च इनके ससुर श्री० चिपलूणकर ने देना स्वीकार किया। सावरकर ने विलायत जाने का अपना विचार बहाल रखा।

विलायत में

अपने मित्रों, सम्बन्धियों और गुरुजनों से आखिरी मुलाकात कर ये बम्बई के बन्दरगाह पर चढ़े। जहाज बम्बई से रवाना हुआ। सागर की उत्ताल लहरों से सावरकर के मन में विचारों का नाच होने लगा। समुद्र के पृष्ठ पर यात्रा करते हुए भी इन्होंने अपने व्यक्तित्व को काम में लाया। उस जहाज पर जो विद्यार्थी विलायत ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के लिये जा रहे थे, उनमें इन्होंने अपने तत्वों का प्रचार किया। वे सावरकर के सहायक बन गये।

श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने विलायत में सावरकर

का हृदय से स्वागत किया। ये लंडन में श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित 'इन्डिया हाउस' यानी 'भारत भुवन' में उन्हीं के साथ रहने लगे। 'भारत भुवन' में कोई अंग्रेज न रह सकता था। लण्डन में यही एक स्थान था जो अंग्रेजी वातावरण से रहित था। सावरकर के आने से यहाँ भी स्थिति परिवर्तन हुआ। प्रति रविवार को सावरकर 'अभिनव भारत' संस्था की 'स्वतंत्र भारत' नामक शाखा में सार्वजनिक सभा करके भाषण देते थे। इटली, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों की लड़ाई का उल्लेख ये बड़ी ओजस्वी भाषा में श्रोताओं के सामने करते थे। इनके व्याख्यानों और व्यवहारों से 'भारत भुवन' का सारा वातावरण देशभक्ति से गूँज उठा।

विलायत में हिन्दू नेताओं में श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा मुख्य थे। उन्होंने ही सब से पहले स्वातंत्र्य-पूर्ण स्वातंत्र्य प्राप्त करने की घोषणा की थी। सावरकर के सत्संग से उनके मतों में तबदीली हुई। शस्त्रबल और क्रान्ति के सिवा स्वराज्य प्राप्त करना असंभव है, इस सिद्धान्त को उन्होंने खूब समझा। सावरकर को विलायत जाने का अवसर श्री वर्मा द्वारा ही प्राप्त हुआ था। एक प्रकार से वे इनके गुरु थे। जैसा कि साधारण जनता समझती थी। पर इन दोनों के मतों में इतनी समानता थी कि कौन गुरु और कौन शिष्य, यह पहचानना कठिन हो

गया। श्री वर्मा में यहाँ तक परिवर्तन हुआ कि वे सावरकर का कहा मानने को भी तैयार हो गये।

इसी समय हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था। पंजाब के लाला लाजपतराय को सरकार ने गिरफ्तार करके मांडले के कैदखाने में रखा था। यह खबर जब लंदन पहुँची, तब लंदन स्थित 'नव भारत' की शाखा में द्वेष की मानों आग सी सुलग गई। उसी दिन 'भारत भुवन' में 'अभिनव भारत' की एक गुप्त सभा की गई। उसमें एक मद्रासी, एक बंगाली और एक महाराष्ट्रीय क्रान्तिकारी को पैरिस भेजने का प्रस्ताव पास हुआ। पैरिस फ्रांस देश की राजधानी है। पैरिस जाकर इन क्रान्तिकारियों ने बम बनाने की क्रिया सिखाने वाले रूसी क्रांतिकारियों की खोज शुरू की। पहले तो कुछ धनलोलुप व्यक्तियों ने इनको ठगकर पैसा वसूल किया। आखिर रूस से निकाले गये एक क्रान्तिकारी की इनसे भेंट हो गई। उसने इन युवकों को सप्रयोग बम बनाने की शिक्षा दी। इतना ही नहीं, उसने 'बम मैनुअल' नामक एक पुस्तक भी इन्हें दी।

लंदन में बैरिस्टरी की शिक्षा सावरकर पास कर रहे थे। इन्होंने न केवल लंडन में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार किया, वरन एडिनबरा, आक्सफोर्ड, मैनचेस्टर, कैम्ब्रिज आदि शहरों की युनिवर्सिटियों के विद्यार्थियों को

अपने क्रान्तिकारी विचारों का अनुयायी बनाया। सारे इंगलैंड में 'अभिनव भारत' संस्था की शाखाओं का जाल फैला दिया। बम बनाने की विद्या सीख कर वे तीनों क्रांतिकारी लंडन वापस आये। 'बम मैनुअल' नामक पुस्तक की 'भारत भुवन' में प्रतियाँ तैयार की गईं। उस ५० पृष्ठ की बम की किताब की अनेक प्रतियाँ सावरकर ने हिन्दुस्तान में 'अभिनव भारत' की शाखायें जिन-जिन शहरों में थी, वहाँ रवाना कीं।

'भारत भुवन' में ये बम बनाने की क्रिया सिखलाने लगे। हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बम बनाने की विद्या जाननेवाले लोग भेजे गये। सावरकर के बहुत से क्रांतिकारी साथियों की यह इच्छा थी कि हाउस ऑफ कामन्स के अधिवेशन में बम फेंका जाय, पर सावरकर ने अपनी दूरदर्शिता से ऐसा करने से उनको मना किया। सावरकर का उद्देश्य यह था कि हिन्दुस्तान में ऐसी व्यवस्था की जाय कि एक ही समय बमों की सहायता से सशस्त्र क्रांति की जा सके। पर सावरकर की यह स्कीम सफल न हो सकी। भारतीयों ने इस काम में उतावली की। बिहार में मि० किंगफोर्ड की गाड़ी पर बम फेंका गया, पर वह उन्हें न लगकर केनड़ी कुटुम्ब को लगा। हिन्दुस्तान में बम का यह पहला प्रयोग था। इस प्रयोग से हिन्दुस्तान के राजनैतिक क्षेत्र में उथल-पुथल मच गई।

हिन्दुस्तान से निकलने वाले अखबारों में छपने के लिये सावरकर लंडन से लेख भेजा करते थे। इन्होंने जासेफ मैजिनी के आत्मचरित का अनुवाद मराठी में करके अपने बड़े भाई श्री गणेशपंत के पास भेजा। उन्होंने इसे प्रकाशित किया। इस पुस्तक की बड़ी धूम हुई। यहाँ तक कि बहुत से युवकों ने धर्मग्रंथों के साथ-साथ इस पुस्तक को पालकी में रखकर जुलूस भी निकाले। सरकार की वक्रदृष्टि इस पुस्तक पर जल्दी ही पड़ी और यह पुस्तक ज़ब्त कर ली गई। इसके बाद इन्होंने बड़े परिश्रम से 'स्वातंत्र्ययुद्ध का इतिहास' लिखा। छपने के पहले ही सरकार ने इस पुस्तक को भी ज़ब्त कर लिया। पर इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ। पुस्तक रोचक और गंभीर होने से इसको प्रतियाँ हाथों हाथ बिक गईं। इसके बाद इन्होंने मराठी में सिक्खों का इतिहास लिखा। सावरकर ने इसे हिन्दुस्तान भेजा, पर सेन्सर बोर्ड ने इसकी बीच में ही समाप्ति कर दी।

१९०७ में ब्रिटिश सरकार ने १८५७ के गदर का अर्धशताब्दि उत्सव मनाने का आयोजन किया। हिन्दुस्तानियों को विद्रोही घोषित किया गया। सावरकर ने इस उत्सव का यथेष्ठ विरोध किया।

जब सावरकर विलायत पहुँचे थे, उसी समय इंगलैंड की सरकार को यह सूचित कर दिया गया था कि सावर-

कर किस तरह के आदमी हैं और उन्होंने हिन्दुस्तान में कैसा आन्दोलन किया है। अतएव इंगलैंड की सरकार इन पर पहले ही से नजर रखती थी। अब पुलिस वालों को यह शक पैदा होते ही कि वे 'भारत भुवन' में अपने सहकारियों को बम बनाने की क्रिया सिखलाते हैं, उनकी टोली 'भारत भुवन' के इर्द गिर्द रहने लगी।

लंडन में 'इण्डियन नेशनल लिबरल क्लब' नामक संस्था को इन्होंने नवजीवन प्रदान किया। इस मवाल संस्था को इन्होंने क्रांतिमय कर दिया। गुप्तचरों ने तरह-तरह के उपायों से इनका पीछा करना शुरू किया। ये इनके पास अखबारों के प्रतिनिधि बन कर आते। पहले तो सावरकर इन गुप्तचरों के चकमे में आ गये, पर पीछे इन्हें सारा भेद मालूम हो गया। बस फिर क्या था, सावर-कर ने सतर्क रहना शुरू कर दिया।

इसी वर्ष सावरकर को सिक्खों की नानकजयन्ती के उत्सव में प्रमुख वक्ता बनने का अवसर प्राप्त हुआ। कैक्सटन हॉल में इनका भाषण हुआ। सावरकर ने सिक्खों के इतिहास का खूब अध्ययन किया था। अतएव इनका भाषण इतना ओजस्वी और प्रभावशाली हुआ कि सारा सिक्खों का समाज खुश हो गया। कुछ कट्टर सिक्ख नवयुवक इनके दल में शामिल हुए। इस अवसर से लाभ उठाकर सावरकर ने सिक्खों में एक नयी जागृति की।

लंडन में आने-जानेवाले भिन्न-भिन्न क्रांतिकारियों से सावरकर परिचय बढ़ाया करते थे। रूस, ईजिप्ट, टर्की और चीन आदि देशों के निर्वासित देशभक्त लंडन में जाने पर खुद सावरकर से मिलते थे। सावरकर ने सिनफेन दल और आयरिश क्रांतिकारी नेताओं से परिचय किया। 'गैलिक अमेरिकन' और 'अमेरिकन पुर्तगाल' आदि विदेशी पत्रों में ये लेख लिखा करते थे।

साथ ही साथ सावरकर ने क्रांति की एक महान् योजना भी तैयार की थी। इनका ध्येय भिन्न-भिन्न बृटिश विरोधी देशों के क्रांतिवाद का संगठन करने का था। इस ध्येय की पूर्ति के लिये सावरकर ने प्रयत्न करना भी शुरू कर दिया था।

अंग्रेज़ लेखक हिन्दुस्तान की जो निन्दा करते थे, उसका उन्होंने यूरोप की भाषाओं में विरोध किया। इस तरह अंग्रेज लेखकों की हिन्दुस्तान को पतित देश साबित करने की चेष्टा विफल हुई।

बैरिस्टरी का अध्ययन करते हुए सावरकर ने लंडन में जो आन्दोलन उत्पन्न किये थे, उसने उग्र रूप धारण कर लिया था। ब्रिटिश सरकार को भयभीत होना पड़ा और गुप्तचर-विभाग तो इनके पीछे हाथ धोकर पड़ गया।

जिस समय सावरकर लंडन में क्रांति का प्रचार कर रहे थे, उसी समय भारत में 'अभिनव भारत' संस्था

की शाखाओं द्वारा क्रांतिकारी आन्दोलनों का प्रसार हो रहा था। हिन्दुस्तान के लिये यह समय बड़ा कठिन था। बंगाल को दो भागों में बाँटने की योजना हिन्दु,-स्तान-सरकार ने पक्की कर ली थी। सारे भारतवासी इस योजना से भड़क उठे थे। बंगाल के लोगों का तो कहना ही क्या ? वे तो आग-बबूला होकर सरकार से विद्रोह करने को तैयार थे। कांग्रेस में गरम दल और नरम दल का झगड़ा भी विशेष रूप से चल पड़ा था। लोकमान्य तिलक और श्री गोपालकृष्ण गोखले तथा श्री फिरोजशाह मेहता वगैरह मंडलियों में काफी तना-तनी होने लगी थी। हिन्दुस्तान की इन सब परिस्थितियों का असर यह हुआ कि हिन्दुस्तान की सरकार ने दमन करना शुरू कर दिया। बंगाल में दमन का बाजार विशेष रूप से गर्म रहा। गरम दल वाले नेताओं और क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार किया गया। इनमें से बहुतों को सजायें हुईं, बहुत से फाँसी पर लटकाये गये। इस समय की क्रान्ति में यह बात विशेष थी कि बमों का प्रयोग जहाँ-तहाँ खूब किया जा रहा था। लोकमान्य तिलक पकड़े गए, और उन्हें छ साल कालेपानी की सज़ा और १०००) जुर्माना हुआ। सावरकर के बड़े भाई श्री गणेशपंत सावरकर भी पकड़े गये। उनपर राजविद्रोह का जुर्म लगाकर आजन्म कालेपानी की सजा दी गई। इनके छोटे भाई को अहमदाबाद में लार्ड

मिन्टो पर फेंके गये बम के मामले में संदेह द्वारा पकड़ा गया।

इन सब खबरों को सावरकर ने लंडन में सुना। प ये तनिक भी न घबराये, वरन् इन्होंने अपनी भाभी के पत्र का जो उत्तर लिखा, उसमें ऐसा मजमून लिखा कि वे भी धीरज से काम लेने लगीं।

१६०६ में सावरकर ने बैरिस्टरी की परीक्षा पास की इन्हें बैरिस्टरी की सनद देने का प्रश्न उठते ही ग्रेनइन चालकों में के इंडियन अधिकारियों ने सावरकर के विरु शिकायत की। सावरकर से कहा गया कि वे यह वच लिख दें कि भविष्य में वे राजविद्रोह न करेंगे, तब उन्हें बैरिस्टरी की सनद दी जा सकेगी। सावरकर भला इस बा को कब मानने वाले थे। इन्होंने साफ इनकार कर दिया देश के लिये बैरिस्टरी छोड़ने वाले ये वीर थे।

इसी समय लंडन में मदनलाल धिंगड़ा नामक ए हिन्दू युवक ने सर कर्जन वायली और लालकाका का व किया। इस घटना के विरोध में एक सार्वजनिक सभा हुई विरोध का प्रस्ताव पास होते समय सावरकर ने इसक विरोध किया। सभा में गड़बड़ी मच गई। सावरकर क गिरफ्तार कर लिया गया, पर ये थोड़ी देर के बाद रिह कर दिये गये। धिंगड़ा को फाँसी की सजा हुई।

'भातर भुवन' के हिन्दी विद्यार्थियों के पीछे गुप्तचर इस कदर लग गये कि उन्हें बड़ी तकलीफ होने लगी। सावरकर

बड़े असमंजस में पड़े। ये न तो हिन्दुस्तान आ सकते थे (क्योंकि हिन्दुस्तान सरकार ने इनको हिन्दुस्तान आने की मनाई कर दी थी) और न वहीं ठीक तरह रह सकते थे। हिन्दुस्तान में जो आन्दोलन हो रहे हैं, उसके कर्ता-धर्ता सावरकर ही हैं, सरकार का यह संदेह जोर पकड़ चुका था। हिन्दुस्तान-सरकार ने सावरकर को पकड़ने का वारंट इंग्लैंड रवाना कर दिया था। ऐसी दशा में सावरकर की क्या मनोदशा होगी, यह लिखना कठिन है। उनका मन हिन्दुस्तान के अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर जी-जान से क्रांति करने के लिये व्याकुल हो रहा था। पर ये लाचार थे। प्राकृतिक दृश्यों और मनोरंजनों की ओर इनका ध्यान भी न जाता था। इन्हें केवल देशभक्ति की लौ लगी हुई थी।

आखिर इन्होंने लंदन छोड़ना निश्चित्त किया। अपने मित्रों के कहने से ये फ्रांस के पैरिस शहर में जाकर रहे। ये जब लंडन में रहते थे, तभी अपने साथियों की मदद से ये पैरिस से 'तलवार' नामक पत्र निकालने लगे थे, इसी 'तलवार' पत्र मे इन्होंने कई महत्वपूर्ण लेख लिखे थे। पैरिस में इनके परिचितों ने इनका शानदार स्वागत किया। पैरिस में बहुत दिनों से सुप्रसिद्ध मैडम कामा रहती थीं। वे वहाँ से 'वन्दे मातरम्' अखबार निकालती थीं। इन्हीं कामाबाई के निवासस्थान पर सावरकर ने डेरा डाला। जब

ये लंडन से पैरिस के लिये रवाना हुए थे, उस समय इनकी तबिअत भी अच्छी न थी। कामाबाई के प्रेमपूर्ण व्यवहार से इनकी तबियत भी बहुत जल्द सुधरने लगी। सावरकर के सत्संग से उनके विचारों मे भी परिवर्तन हुआ। वे सावरकर की भक्त बन गई। 'अभिनव भारत' का सभासदत्व भी उन्होंने स्वीकार कर लिया। जर्मनी में उन्होंने इस संस्था का प्रचार किया।

सावरकर यह जानते थे कि लंडन में रहने वाले तमाम क्रांतिकारी की धर-पकड़ शुरू हो जायगी। हिन्दुस्तान के आन्दोलनों की रिपोर्ट से इंगलैंड की सरकार यह जान गई थी कि उन अन्दोलनों को जड़ में 'भारत भुवन' में रहने वाले हिन्दी युवक थे, और इन जड़ों की जड़ में वीर सावरकर थे। पैरिस में भी उपरोक्त बात का संदेह प्रकट किया जाने लगा। अब सावरकर का पैरिस में अधिक रहना ठीक न था। इन्हें इस लोकापवाद का डर था कि खुद तो गिरफ़तारी के डर से इंगलैंड के बाहर दूसरे राष्ट्र में जाकर रहे और अपने अन्य साथियों को काल के मुँह में छोड़ दिया। इस अपवाद से दूर रहने के लिए यही आखिरी उपाय था कि ये लंडन वापिस चले आते।

अपने मित्रों के कहने से पहले कुछ दिन तो ये ...ति ठीक करने के लिये पैरिस में ही रहे। बाद में ...ने लंडन वापिस आने की ठान ली। सब लोगों ने

इनको बन्दरगाह तक आकर विदा किया । ये जहाज पर चढ़े । जहाज इंग्लैंड के लिये रवाना हुआ । इंग्लैंड के किनारे जहाज के आते ही लंडन जाने वाली गाड़ी में ये बैठे । उस गाड़ी में गुप्तचरों और पुलिस का सशस्त्र पहरा था। लंडन के स्टेशन पर गाड़ी पहुँचते ही 'यहीं-यहीं' की एक जोरदार आवाज़ गूंज उठी । सैनिकों ने इन्हें चारों ओर से घेरकर गिरफ़्तार कर लिया । सावरकर को गिरफ़्तार करने की खबर अखबारों द्वारा दूसरे ही दिन सारी दुनिया में फैल गई । सावरकर को इंग्लैंड के ब्रिस्टन शहर के जेल में रखा गया ।

कालेपानी की सजा

ब्रिस्टन की जेल से निकालकर सावरकर को हिन्दुस्तान में ले आने के लिये सरकार ने उस सीधे रास्ते को ठीक न समझा, जो फ्रांस और भूमध्यसागर से होकर अदन से गुजरता है । सरकार ने इन्हें दूसरे रास्ते से ले आना निश्चित किया ।

फ्रांस में श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा, मैडम कामा, लाला हरदयाल, बैरिस्टर राणा आदि 'अभिनव भारत' के नेता सावरकर को फ्रांस के रास्ते से ले जाते समय ब्रिटिश अधिकारियों पर फ्रांस के न्यायालय में बलात्कार के कैदी (Hadies corpes) का दावा करने के लिये तैयार बैठे थे, पर ब्रिटिश अधिकारी क्या कुछ कम थे! वे सावरकर के

जहाज को किसी भी अन्य राष्ट्र के बन्दरगाह से न गुजरते हुए हिन्दुस्तान की ओर ला रहे थे। उस जहाज पर कुछ हिन्दुस्तानी और गोरी पुलिस का सावरकर पर सख्त पहरा था। इस जहाज को बिस्के की खाड़ी से होकर लाया जा रहा था।

सावरकर अपने मन में दूसरा ही विचार कर रहे थे! ब्रिटिश पुलिस का सारा चातुर्य और चालाकी को वे तीन कौड़ी की साबित करना चाहते थे। इनके ऐसा सोचने का एक दूसरा भी कारण था। अंग्रेज स्त्रियाँ अक्सर यह कहा करती थीं कि हिन्दुस्तानी गुलामी की जंजीरों में जकड़कर रखे जाने योग्य हैं। जब एक एक हिन्दुस्तानी युवक को पकड़ने के लिये दस-दस अंग्रेज परेशान हो जायेंगे, तभी हम समझेंगे कि ब्रिटिश लोग हिन्दुस्तानियों पर अत्याचार से राज्य करते हैं। यूरोपियन लोगों के इस ख्याल को समूल नष्ट करने के लिये ये एक भारी साहस का काम करना चाहते थे।

पर सावरकर जानते थे कि ऐसा कोई साहस का कार्य कर सकना इस जहाज पर, ऐसे सख्त पहरे में रह कर, संभव नहीं। यह जानते हुए भी इन्होंने अपना निश्चय दृढ़ किया। वीरों के सहायक ईश्वर होते हैं। सावरकर को ऐसा का आखिरी उपाय सूझ पड़ा।

मार्सेलीज़ के रास्ते से इनकी नौका न ले जाने का

विचार पक्का था। पर जब उधर ही से जहाज गुजरा, तब इन्हें कुछ आशा बँधी। इन्होंने सोचा कि मार्सेलीज के बन्दरगाह पर शायद कुछ मेरे साथी आये हों, और वे मुझे छूटने में मदद दें। पर यह आशा केवल आशा ही साबित हुई। बन्दरगाह पर कोई न था। पुलिस का तो इतना सख्त पहरा था कि ये जब स्नान करने के लिये या दिशा-फराक़त करने के लिये जाते, तब भी पुलिस इनका साथ न छोड़ती थी। पाखाने के बाहर वे पहरा देते हुए खड़े रहा करते थे।

मार्सेलीज़ से जहाज रवाना होने का अन्तिम दिन था। अभी सवेरा नहीं हुआ था। उस समय सावरकर को जहाज पर एक ५-७ हाथ के कमरे में रखा गया था कुछ पुलिस इनके पहरे पर थी। उनमें से कुछ सो रहे थे। जहाज़ पर के अन्य कर्मचारी भी अपने-अपने काम में मशगूल थे। इस समय को सावरकर ने बिल्कुल ठीक समझा। सावरकर एक पहरेदार से बोले—"सवेरा हो गया, मुझे दिशा जाना है।"

पहरेदारों ने इन्हें पाखाने तक पहुँचा दिया और खुद पाखाने के बाहर पहरा देने लगे। पाखाने का दरवाजा शीशे का था। सामने एक आईना था। पहरेदार सतर्क तो थे ही। सावरकर की हरेक हरकत पर उनका ध्यान रहता था। पाखाने के ऊपर की ओर एक गोल खिड़की (पोर्ट होल) थी।

इसकी नाप-जोख सावरकर ने पहले ही से कर रखी थी। इन्होंने उस खिड़की का दरवाज़ा पहले ही से थोड़ा-थोड़ा करके खोल रखा था। ये अपना काम बड़ी सावधानी से कर रहे थे। साथ में लाया हुआ चदरा इन्होंने शीशे के दरवाजे पर डाल दिया। ये केवल एक तंग पाजामा और गंजीफ्राक ही पहने हुये थे। सारे शरीर में इन्होंने साबुन का फाग लगा रखा था। बड़ी फुर्ती से दो तीन लकड़ियों को साथ में लेकर ये एक छलांग में उस खिड़की तक पहुँच गये। पहरेदार 'क्या करता है ?' कहकर चिल्ला ही रहे थे कि वे एक क्षण में लकड़ियों के सहारे खिड़की पर चढ़े और उसमें से अपना शरीर संकुचित करके बाहर निकलने की चेष्टा करने लगे। बाहर के पहरेदार ने चिल्लाना शुरू किया। उसने शीशे का दरवाज़ा तोड़कर भीतर जाने का भी उपक्रम किया। इतने में 'स्वातंत्र्यलक्ष्मी की जय' कहकर अथाह सागर में कूद पड़े। पहरेदार देखता ही रह गया। सारे जहाज़ में यह वार्ता बिजली की नाईं फैल गयी।

समुद्र में आगे-आगे सावरकर तैर रहे थे। पीछे पीछे जहाज के अधिकारी गोलियाँ बरसाते हुए आ रहे थे। सावरकर ने बड़े धैर्य से काम लिया। तैरते-तैरते ये फ्रांस के किनारे लगे। इन्हें विश्वास था कि फ्रांस के स्वतंत्र राष्ट्र में पहुँचते ही वे अंग्रेजों के पंजे से छूट जायेंगे। पर ऐसा न हुआ। अंग्रेज इनका पीछा कर ही रहे थे। इस समय इनके पास एक

कौड़ी भी न थी। नहीं तो ये ट्राम आदि से बहुत जल्दी अंग्रेजों का पिण्ड छुड़ा सकते थे। आखिरकार इन्होंने दौड़ना शुरू किया। अंग्रेज़ इनके पीछे 'चोर-चोर' चिल्लाते हुए दौड़ रहे थे। एक फ्रेंच पुलिस से सावरकर की मुलाकात हुई। इन्होंने उससे फ्रेंच मैजिस्ट्रेट के पास ले चलने की विनती की, पर अंग्रेजों ने उस कान्स्टेबिल को घूस देकर अपनी तरफ कर लिया। उस लालची पुलिस ने इन्हें अंग्रेजों के कब्जे में दे दिया।

अब सावरकर की दुर्दशा का क्या पूछना था? पुलिस ने इनको और भी सख्त पहरे में रखा। सावरकर को तरह-तरह के कष्ट देकर उनसे उनकी संस्था की सारी बातों को जान लेने का इन अधिकारियों का इरादा था। पर सावरकर जैसे वीरों को, जिन्होंने अपने प्राणों को हथेली पर ले रखा हो, त्रास देकर अपना उल्लू सीधा करना आसान नहीं होता। सावरकर को जब उन्होंने कष्ट देना चाहा, तब सावरकर ने इस वीरता से काम लिया कि उनका सारा जोश ठंडा पड़ गया।

सावरकर हिन्दुस्तान वापस आये, लेकिन एक कैदी के रूप में। इन्हें सख्त पहरे में बम्बई लाया गया। फिर तुरन्त ही एक स्पेशल ट्रेन से नासिक लाया गया।

भारत में पहले के क्रांति-आंदोलनों में कई व्यक्तियों को राजद्रोह का जुर्म लगाकर सजायें दी जा चुकी थीं।

उन आंदोलनों के बाद सरकार ने यह घोषित किया कि इन आन्दोलनों की जड़ में एक जबर्दस्त षड्यंत्र है सरकार ने इस षड्यंत्र की अधिकाधिक खोज करना शुरू किया। यह साबित किया गया कि इस षड्यंत्र के जड़ मूल वीर सावरकर हैं। सावरकर पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया। 'अभिनव भारत' राजद्रोही संस्था करार दी गई। सावरकर के साथ-साथ और भी ३८ व्यक्तियों पर मुकदमे चलाये गये। सावरकर को विश्वास था कि उन्हें फाँसी की सजा मिलेगी। पर ऐसा न हुआ। अन्य व्यक्तियों को बड़ी-बड़ी सजायें दी गई। सावरकर को आजन्म कालेपानी की सजा यानी २५ वर्ष कालेपानी की सजा सुनाई गई। सरकार को इतने से ही संतोष न हुआ। हत्या को प्रोत्साहन देने का दूसरा जुर्म इन पर लगाया गया। अब शायद फाँसी की बारी थी, पर सदैव से सरकार ने इन्हें दूसरे आजन्म कालेपानी की सजा सुनाई। कुल मिलाकर अंडमन में ५० साल का समय बिताना सावरकर के लिये क्रमप्राप्त था। इन कड़ी-कड़ी सजाओं को सुनकर किसी का दिल न दुखा, कोई जरा सा भी न डिगा। सब हँसी-मजाक करते हुए कोर्ट के बाहर आये। सारे हिन्दुस्तान में कुहराम-सा मच गया। इसके बाद सावरकर को बम्बई के कारागृह में रखा गया।

हेग के अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में सावरकर के प्रश्न

पर पहले ही से विचार हो रहा था। उसके अंतिम निर्णय के प्रकाशित होने के समय तक इन्हें बम्बई के जेल में ही रखा जाना निश्चित हुआ। लोगों को आशा थी कि हेग का न्यायालय कुछ विचार से काम लेगा। निःपक्षपातपूर्वक वह यह निर्णय देगा कि फ्रांस राष्ट्र सावरकर को अंग्रेजों से वापस मांगे, क्योंकि वे फ्रांस के शरणागत हैं। पर यह आशा भी निराशा में बदल गई।

जब सावरकर बैरिस्टरी की परीक्षा पास करने के लिये विलायत जा रहे थे, उस समय वे अपनी पत्नी से अन्तिम भेंट करके गये थे। इनकी पत्नी इनको बैरिस्टर के चोले में वापस आये हुए देखना चाहती रही हों तो इसमें आश्चर्य क्या? पर जेल में एक कैदी के रूप में इनसे मिलने का दुखद अवसर उन्हें प्राप्त हुआ। वे सावरकर से जेल में मिलने गईं। सावरकर ने उन्हें धीरज बँधाकर सान्त्वना दी।

इसके बाद सावरकर को बम्बई जेल से निकालकर ठाना जेल में लाया गया। अहमदाबाद में लार्ड मिन्टो पर बम चलाया गया था। उस सिलसिले में सावरकर के छोटे भाई नारायण को पकड़ा गया था। वह इसी ठाने के जेल में रखा गया था। सावरकर का व्यक्तित्व हर जगह काम देता था, इसके बहुत से उदाहरण पहले आ चुके हैं। यहाँ भी इनके व्यक्तित्व से इनके कुछ भक्त

तयार हो गये। उनकी कृपा से सावरकर ने अपने छोटे भाई से भेंट की। उसे भी उन्होंने धीरज धर कर काम करते रहने का संदेश दिया।

अंडमन में

आखिर सावरकर के चलान को ठाना जेल से अंडमन के लिए रवाना किया गया। हथकड़ियों और बेड़ियों से सुसज्जित सारे कैदियों को स्टेशन की ओर पैदल जाना पड़ा। पर सावरकर कहीं मार्सेलीज़ के अध्याय की पुनरावृत्ति न करें, इस डर से इन्हें मोटर में ले जाया गया। इस बात का असर उन अन्य कैदियों पर पड़ा। उनपर उसी समय से सावरकर की धाक जम गयी।

सावरकर यद्यपि राजनैतिक कैदी थे, तथापि इन्हें बहुत कष्ट दिया जाता था। चक्की चलाना, कोल्हू में जोतना आदि यंत्रणायें इनको दी जाने लगीं। भोजन वगैरह भी ठीक न मिलता था। अधिक शारीरिक मेहनत से इनकी तबियत भी खराब रहने लगी। एक तो पहले ही ये बीमार रह चुके थे। तिस पर भोजन, स्नान, निद्रा आदि का ठीक प्रबन्ध न होने से और अन्डमन का जलवायु खराब होन के कारण इनकी प्रकृति अक्सर बिगड़ जाया करती थी।

प्रथमतः इन्होंने अन्डमन के कैदियों में संगठन किया। ‌ च ‌ और शोषण-प्रवृत्तियों के विरुद्ध सत्याग्रह करना

इन्होंने कैदियों को सिखलाया। इनके प्रयत्नों से एक गुप्त शिक्षा-संस्था कायम हुई। कैदियों में अधिकांश लोग निरक्षर ही थे। सावरकर ने सबों को साक्षर किया। इस शिक्षा-प्रसार का असर यह हुआ कि वे कैदी, जो अपराध करने के आदी बन गये थे, सभ्यता और नम्रता के भक्त बन गये।

१६०६ में सावरकर के बड़े भाई श्री गणेशपंत सावरकर को आजन्म कालेपानी की सजा हुई थी। उन्होंने राष्ट्रीय गीतों का संग्रह प्रकाशित किया था, यही उनका अपराध था। सावरकर की एक दिन श्री गणेशपंत से भेंट हुई। उस समय का दृश्य बड़ा मार्मिक था।

अन्डमन में सरकारी अधिकारियों द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों से वहाँ के कैदी ऊब उठे थे। सावरकर ने इन अत्याचारों का विरोध संगठन द्वारा करना शुरू किया। वहाँ के अत्याचारों का वर्णन अंडमन के बाहर भेजकर अखबारों में प्रकाशित किया जाने लगा। इन अत्याचारों की खबर पहले हिन्दुस्तान की सरकार को लगी, और फिर इंग्लैंड की सरकार ने भी इन खबरों को सुनकर वहाँ की वास्तविक स्थिति का ठीक ठीक पता लगाने के लिये हिन्दुस्तान के गृहमन्त्री सर रेजीनाल्ड कैडार को अंडमन भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर कुछ प्रमुख राजनैतिक कैदियों से मुलाकात की। सावरकर से उन्होंने कई बार मुलाकात की। सावरकर

ने निडर होकर सारे अत्याचारों का पूरा वर्णन उनसे किया। क्रांति के तत्वों पर भी इन दोनों में बात-चीत हुई। सरकार के इस प्रबन्ध से अंडमन में कैदियों पर किये जानेवाले अत्याचार बहुत कुछ कम हुए।

सावरकर अंडमन में १६११ में आये थे। इन्होंने आते ही देखा था कि धीरे-धीरे हिन्दू कैदियों की संख्या घटकर मुसलमान कैदियों की संख्या बढ़ रही है। इसका कारण था धर्म-परिवर्तन। मुसलमान वार्डर और जेलर हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिए बाध्य करते थे, और उनके विरोध करने पर उनका हर तरह से छल करने में कुछ उठा न रखते थे। इन अत्याचारों से डर कर अधिकांश हिन्दू कैदी मुसलमान बन जाते थे। पहले सावरकर ने इन सब बातों का सूक्ष्म रीति से अध्ययन किया। फिर शुद्धिकरण का आंदोलन इन्होंने शुरू किया। मुसलमान बने हुए हिन्दुओं को फिर से हिन्दू बनाना ही शुद्धिकरण का अर्थ था। अंडमन जैसे द्वीप में मन्त्र आदि की व्यवस्था कैसे हो सकती थी? सावरकर उन्हें स्नान कराकर, नये कपड़े पहनाकर तथा रामायण सुनाकर शुद्ध कर लेते थे। इस शुद्धिकरण की ओर अधिकारियों का ध्यान आकर्षित हुआ। फिर इतना समय भी न मिलता था कि उपरोक्त रीति से किसी को शुद्ध किया जा सके। अब केवल राम के जाप द्वारा या हिन्दू नाम धारण

कर लेने पर हिन्दू-धर्म को छोड़कर मुसलमान बने हुए व्यक्तियों को शुद्ध कर लिया जाता था। मुसलमान अधिकारियों के ध्यान में यह बात जल्दी ही आई। वे इन पर दाँत पीसकर ही रह गये।

सावरकर को ५० साल अंडमन में रहना था। सजा होने के समय इनकी उम्र २७ साल की थी। १६६० में इनकी सजा खतम होनेवाली थी। उस समय इनकी आयु ७७ साल की होती। हिन्दुस्तान में इनको फिर देख सकने की किसी को आशा न रह गई थी।

अंडमन में रहते हुए इन्होंने धार्मिक, सामाजिक शिक्षा-संबन्धी सुधार करने के अतिरिक्त बचपन से महा-काव्य रचने की इच्छा को पूर्ण किया। वहाँ इन्होंने 'सप्तर्षि' 'कमला' और 'रानफुले' ये काव्य रचे। इन्होंने 'हिन्दुपद पादशाही' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ की रचना यहीं की। इन्हें दवात, कलम और कागज़ आदि लिखने का सामान देना तो सरकार ने स्वीकार किया ही नहीं, फिर साहित्यिक पुस्तकों का मिलना तो कठि था। सावरकर रोज बनाये हुए पद्यों और कविताओं को कंठस्थ कर लेते थे। कभी-कभी कैदखाने की कोठरी की दीवालों पर नखों, कीलों या पत्थरों द्वारा नोंच-खरोंच करके ये कवितायें लिखते थे, और फुर्सत के समय में उन्हें कंठस्थ किया करते थे।

अंडमन में जाने के बाद से ही सावरकर के छुट

के सम्बन्ध में वार्तायें उठने लगी थीं। १९१२ में दिल्ली में दरबार हुआ। इस अवसर पर बहुत के कैदी छोड़ दिये गये। सावरकर को छोड़ने की खबर भी इस समय जोरों पर थी। अंडमन में कैदियों पर सरकारी अधिकारियों द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों की छान-बीन करने के लिये जब सर रेजिनाल्ड कैडार गये थे, तब भी सावरकर के छुटकारे की संभावना दिखाई दी थी। पर सावरकर को इन खबरों पर विश्वास न होता था। क्योंकि क्रांति के आंदोलनों की अभी कमी नहीं हुई थी। 'अभिनव भारत' ने अभी भी धूम मचा रखी थी। धीरे-धीरे सावरकर के विषय में सरकार की धारणा अच्छी होने लगी। उसने देखा कि अंडमन में साव-रकर जो सुधार के आंदोलन कर रहें हैं, उनमें क्राँतिवाद की गन्ध तक नहीं है। इसके अतिरिक्त अंडमन में साव-कर भाइयों का वैयक्तिक व्यवहार सभ्यता और शांति का था। सरकार की संदेही दृष्टि कम होने लगी थी। उसने सावरकर को अंडमन से छुटकार देने की बात पर विचार करना शुरू किया।

दोनों भाइयों की तबीयत भी खराब हो गई थी। इन दोनों को पहले कलकत्ता लाया गया। श्री गणेशपंत को तो वहाँ से अहमदाबाद जेल में भेज दिया गया। १९२२ में डा० नारायणराव सावरकर की कोशिश से उनको छोड़ दिया और नासिक में नजर बन्द कर दिया गया। सावरकर

हुए पति और पत्नी का वास्तविक संसार अब शुरू हुआ
इस संसार में सावरकर को दो मधुर फल प्राप्त हुये। इन्हे
इस समय बारह साल की प्रभात नाम की एक लड़की
और दस साल का विश्वास नाम का एक लड़का है।

रत्नागिरी में रहकर सावरकर धार्मिक, सामाजिक
और साहित्य विषयक सेवा करने के लिये स्वतन्त्र थे
केवल राजनैतिक क्षेत्र में ये भाग न ले सकते थे। साव
कर चुप बैठने वाले व्यक्तियों में से नहीं। इन्होंने इन्हे
तीनों क्षेत्रों में काम आरंभ किया।

रत्नागिरी में २३ जनवरी १९२४ को हिंदू-सभा की
स्थापना की गई। सावरकर ने 'हिन्दू' जाति की व्याख्य
इतनी अच्छी की कि उसे जैन, सिक्ख, हिन्दू, बौद्ध लिंगा
यत, सनातनी, आर्यसमाजी, प्रार्थनासमाजी आदि सब मतं
के लोगों ने मान्य किया। इस व्याख्या को नासिक नगर
पूना, सोलापूर, बम्बई शहरों की हिन्दू-सभाओं ने स्वीकृ
किया। अखिल भारतवर्षीय हिन्दू-महासभा के अधिवेश
में यह व्याख्या सर्वसम्मति से पास हो गई।

१९२६ में श्री शंकराचार्य डा० कूर्तकोटी रत्नागिर
में पधारे। उनका शानदार स्वागत किया गया। सार्वजनि
सभा में उनके तथा सावरकर के भाषण हुये। इन भाषणे
के प्रभाव से रत्नागिरी की जनता में हिन्दू-संगठन की लह
दौड़ गई।

हुए पति और पत्नी का वास्तविक संसार अब शुरू हुआ। इस संसार में सावरकर को दो मधुर फल प्राप्त हुये। इन्हें इस समय बारह साल की प्रभात नाम की एक लड़की और दस साल का विश्वास नाम का एक लड़का है।

रत्नागिरी में रहकर सावरकर धार्मिक, सामाजिक और साहित्य विषयक सेवा करने के लिये स्वतन्त्र थे। केवल राजनैतिक क्षेत्र में ये भाग न ले सकते थे। सावरकर चुप बैठने वाले व्यक्तियों में से नहीं। इन्होंने इन्हीं तीनों क्षेत्रों में काम आरंभ किया।

रत्नागिरी में २३ जनवरी १९२४ को हिंदू-सभा की स्थापना की गई। सावरकर ने 'हिन्दू' जाति की व्याख्या इतनी अच्छी की कि उसे जैन, सिक्ख, हिन्दू, बौद्ध लिंगायत, सनातनी, आर्यसमाजी, प्रार्थनासमाजी आदि सब मतों के लोगों ने मान्य किया। इस व्याख्या को नासिक नगर पूना, सोलापूर, बम्बई शहरों की हिन्दू-सभाओं ने स्वीकार किया। अखिल भारतवर्षीय हिन्दू-महासभा के अधिवेशन में यह व्याख्या सर्वसम्मति से पास हो गई।

१९२६ मे श्री शंकराचार्य डा० कूर्तकोटी रत्नागिरी में पधारे। उनका शानदार स्वागत किया गया। सार्वजनिक सभा में उनके तथा सावरकर के भाषण हुये। इन भाषणों के प्रभाव से रत्नागिरी की जनता में हिन्दू-संगठन की लहर दौड़ गई।

ने निडर होकर सारे अत्याचारों का पूरा वर्णन उनसे किया। क्रांति के तत्वों पर भी इन दोनों में बात-चीत हुई। सरकार के इस प्रबन्ध से अंडमन में कैदियों पर किये जानेवाले अत्याचार बहुत कुछ कम हुए।

सावरकर अंडमन में १९११ में आये थे; इन्होंने आते ही देखा था कि धीरे-धीरे हिन्दू कैदियों की संख्या घटकर मुसलमान कैदियों की संख्या बढ़ रही है। इसका कारण था धर्म-परिवर्तन। मुसलमान वार्डर और जेलर हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिए बाध्य करते थे, और उनके विरोध करने पर उनका हर तरह से छल करने में कुछ उठा न रखते थे। इन अत्याचारों से डर कर अधिकांश हिन्दू कैदी मुसलमान बन जाते थे। पहले सावरकर ने इन सब बातों का सूक्ष्म रीति से अध्ययन किया। फिर शुद्धिकरण का आंदोलन इन्होंने शुरू किया। मुसलमान बने हुए हिन्दुओं को फिर से हिन्दू बनाना ही शुद्धिकरण का अर्थ था। अंडमन जैसे द्वीप में मन्त्र आदि की व्यवस्था कैसे हो सकती थी? सावरकर उन्हें स्नान कराकर, नये कपड़े पहनाकर तथा रामायण सुनाकर शुद्ध कर लेते थे। इस शुद्धिकरण की ओर अधिकारियों का ध्यान आकर्षित हुआ। फिर इतना समय भी न मिलता था कि उपरोक्त रीति से किसी को शुद्ध किया जा सके। अब केवल राम के जाप द्वारा या हिन्दू नाम धारण

कर लेने पर हिन्दू-धर्म को छोड़कर मुसलमान बने हुए व्यक्तियों को शुद्ध कर लिया जाता था। मुसलमान अधिकारियों के ध्यान में यह बात जल्दी ही आई। वे इन पर दाँत पीसकर ही रह गये।

सावरकर को ५० साल अंडमन में रहना था। सजा होने के समय इनकी उम्र २७ साल की थी। १९६० में इनकी सजा खतम होनेवाली थी। उस समय इनकी आयु ७७ साल की होती। हिन्दुस्तान में इनको फिर देख सकने की किसी को आशा न रह गई थी।

अंडमन में रहते हुए इन्होंने धार्मिक, सामाजिक शिक्षा-संबन्धी सुधार करने के अतिरिक्त बचपन से महा-काव्य रचने की इच्छा को पूर्ण किया। वहाँ इन्होंने 'सप्तर्षि' 'कमला' और 'रानफुलें' ये काव्य रचे। इन्होंने 'हिन्दुपद पादशाही' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ की रचना यहीं की। इन्हें दवात, कलम और कागज़ आदि लिखने का सामान देना तो सरकार ने स्वीकार किया ही नहीं, फिर साहित्यिक पुस्तकों का मिलना तो कठि था। सावरकर रोज बनाये हुए पद्यों और कविताओं को कंठस्थ कर लेते थे। कभी-कभी कैदखाने की कोठरी की दीवालों पर नखों, कीलों या पत्थरों द्वारा नोंच-खरोंच करके ये कवितायें लिखते थे, और फ़ुर्सत के समय में उन्हें कंठस्थ किया करते थे।

के सम्बन्ध में वार्तायें उठने लगी थीं। १६१२ में दिल्ली में दरबार हुआ। इस अवसर पर बहुत के कैदी छोड़ दिये गये। सावरकर को छोड़ने की खबर भी इस समय जोरों पर थी। अंडमन में कैदियों पर सरकारी अधिकारियों द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों की छान-बीन करने के लिये जब सर रेजिनाल्ड कैडार गये थे, तब भी सावरकर के छुटकारे की संभावना दिखाई दी थी। पर सावरकर को इन खबरों पर विश्वास न होता था। क्योंकि क्रांति के आंदोलनों की अभी कमी नहीं हुई थी। 'अभिनव भारत' ने अभी भी धूम मचा रखी थी। धीरे-धीरे सावरकर के विषय में सरकार की धारणा अच्छी होने लगी। उसने देखा कि अंडमन में सावरकर जो सुधार के आंदोलन कर रहें हैं, उनमें क्राँतिवाद की गन्ध तक नहीं है। इसके अतिरिक्त अंडमन में सावरकर भाइयों का वैयक्तिक व्यवहार सभ्यता और शांति का था। सरकार की संदेही दृष्टि कम होने लगी थी। उसने सावरकर को अंडमन से छुटकार देने की बात पर विचार करना शुरू किया।

दोनों भाइयों की तबीयत भी खराब हो गई थी। इन दोनों को पहले कलकत्ता लाया गया। श्री गणेशपंत को तो वहाँ से अहमदाबाद जेल में भेज दिया गया। १६२२ में डा० नारायणराव सावरकर की कोशिश से उनको छोड़ दिया गया और नासिक में नजर बन्द कर दिया गया। सावरकर

को कुछ दिन अलीपुर में रखकर फिर बाद में २ साल तक रत्नागिरी के जेल में रखा गया। इस जेल में सावरकर ने 'हिन्दुत्व' नामक एक सुन्दर ग्रंथ की रचना की। बाद में १६२३ में इन्हें येरवड़ा जेल में लाया गया। यहाँ इनकी तबीअत फिर बिगड़ने लगी। जनता ने इनको छुड़ाने का आंदोलन शुरू किया। गवर्नर लाइड जार्ज ने सावरकर से मुलाक़ात की। इस मुलाक़ात में सावरकर ने अपने क्रांति के तत्वों को समझाया। बाद में सावरकर ने सरकार की नजरबन्द रहने और राजनैकि क्षेत्र में कुछ समय तक काम करने की दो शर्तें मंजूर कर लीं। इन्हें ६ जनवरी १६२४ को येरवड़ा जेल से मुक्ति दी गई।

सावरकर के मुक्त होने की वार्ता से सारे हिन्दुस्तान में, विशेषतः महाराष्ट्र में, आनन्द का साम्राज्य हो गया। सावरकर की पत्नी सौभाग्यवती यमुनादेवी की खुशी का क्या पूछना था ? चिरकाल तक खोई हुई वस्तु को पुनः प्राप्त कर लेने से जो आनन्द किसी व्यक्ति को हो सकता है, उतना ही आनन्द उन्हें हुआ।

रत्नागिरी में

येरवड़ा जेल को अन्तिम प्रणाम कर सावरकर सबके साथ हँसी-खुशी रत्नागिरी आये। इन्हें यहाँ
रखा गया। सरकार ने इन्हें अपनी पत्नी के स
की आज्ञा दी थी। अतएव इतने दिनों

हुए पति और पत्नी का वास्तविक संसार अब शुरू हुआ। इस संसार में सावरकर को दो मधुर फल प्राप्त हुये। इन्हें इस समय बारह साल की प्रभात नाम की एक लड़की और दस साल का विश्वास नाम का एक लड़का है।

रत्नागिरी में रहकर सावरकर धार्मिक, सामाजिक और साहित्य विषयक सेवा करने के लिये स्वतन्त्र थे। केवल राजनैतिक क्षेत्र में ये भाग न ले सकते थे। सावरकर चुप बैठने वाले व्यक्तियों में से नहीं। इन्होंने इन्हीं तीनों क्षेत्रों में काम आरंभ किया।

रत्नागिरी में २३ जनवरी १९२४ को हिंदू-सभा व स्थापना की गई। सावरकर ने 'हिन्दू' जाति की व्याख्य इतनी अच्छा की कि उसे जैन, सिक्ख, हिन्दू, बौद्ध लिंगायत, सनातनी, आर्यसमाजी, प्रार्थनासमाजी आदि सब मतं के लोगों ने मान्य किया। इस व्याख्या को नासिक नगर, पूना, सोलापूर, बम्बई शहरों की हिन्दू-सभाओं ने स्वीकृत किया। अखिल भारतवर्षीय हिन्दू-महासभा के अधिवेशन में यह व्याख्या सर्वसम्मति से पास हो गई।

१९२६ मे श्री शंकराचार्य डा० कूर्तकोटी रत्नागिरी में पधारे। उनका शानदार स्वागत किया गया। सार्वजनिक सभा में उनके तथा सावरकर के भाषण हुये। इन भाषणों के प्रभाव से रत्नागिरी की जनता में हिन्दू-संगठन की लहर दौड़ गई।

इसके बाद रत्नागिरी में प्लेग शुरू हुआ। सावरकर अपनी पत्नी के साथ नासिक में रहने के लिए गये। वहाँ इनके बड़े भाई नजरबन्द थे। सावरकर ने नासिक में अपने व्याख्यानों द्वारा हिन्दू-संगठन का जोर-शोर से प्रचार किया। नासिक में भी हिन्दूसभा की स्थापना की गई। महाराष्ट्र में महार नामक एक अछूत जाति होती है। नासिक के १००।१५० महारों ने हिन्दू धर्म छोड़ कर मुसलमान होना निश्चय कर लिया था। इस बात का पता सावरकर को लगते ही इन्होंने उन्हें बड़े यत्नपूर्वक अपने निश्चय से डिगा दिया। जिस जगह नमाज़ पढ़ने के लिये मस्जिद बनाई जाने वाली थी, उस जगह एक राम मन्दिर बनवाया गया।

सावरकर को महाराष्ट्र प्रांत ने उनके सम्मानार्थ कुछ निधि अर्पित करना निश्चिय किया। इस बात के लिये देशभक्त नरसिंह चिन्तामणि केलकर की अध्यक्षता में एक समिति कायम की गई। पूना, बम्बई नगर आदि महाराष्ट्र के प्रमुख शहरों से द्रव्य इकट्ठा किया गया। प्रर्याप्त धन इकट्ठा होते ही नासिक के कालेराम मन्दिर में धर्मवीर डा० बालकृष्ण शिवराम मुंजे की अध्यक्षता में सावरकर को अभिनन्दन-पत्र और बारह हज़ार रुपयों की थैली समर्पित की गई।

इसके बाद और भी नगरों में इनका मान

हुआ। रत्नागिरी का प्लेग समाप्त होते ही सावरकर वहाँ वापस गये। अब इन्होंने अछूतोद्धार का आंदोलन उठाया। रत्नागिरी के पास शिरगांव में हनुमान-जयन्ती के दिन हिन्दू संगठन पर सावरकर ने ऐसा प्रभावशाली व्याख्यान दिया कि तमाम छूत और अछूतों के लिये वहाँ एक हनुमानजी का मंदिर बनवाया गया। उसके उद्‌घाटन के अवसर पर भंगी, चमार आदि अछूत जातियाँ भी आमंत्रित थीं।

अछूतोद्धार का आंदोलन काफी जोर पकड़ता गया। बहुत से गाँवों में अछूतों के बालकों के लिये पाठशालायें खुलीं। इन पाठशालाओं में पुस्तकों की शिक्षा के साथ-साथ धर्म की शिक्षा भी दी जाती थी। हिन्दू-संगठन और अछूतोद्धार का प्रतीक स्वरूप एक मन्दिर बनाने की सावरकर को बहुत दिनों से इच्छा थी। आखीर एक सेठ की मदद से ढाई लाख रुपये के खर्च में 'पतित पावन मन्दिर' की स्थापना की गई। इस मन्दिर में शंखचक्रगदाधारी श्री लक्ष्मीनारायण की मूर्ति स्थापित की गई। रत्नागिरी में अछूतों के लिये कोई होटल न था। अतएव वे मुसलमानों के होटलों में जाकर खाने-पीने के लिए बाध्य होते थे। सावरकर के प्रयत्नों से रत्नागिरी में 'अखिल हिन्दू उपहारगृह' की स्थापना की गई। इस उपहारगृह में अछूतों को उनके मनमुताबिक खाद्यपेय पदार्थ प्राप्त होने लगे। अछूतों के साथ भोजन किये बिना अछूतोद्धार पूरा नहीं हो सकता था।

पिछले चार सालों में सावरकर ने २०० सह-भोजनों का आयोजन किया होगा। अछूतों के साथ भोजन करने को महाराष्ट्र में सहभोजन कहते हैं। ऊँच-नीच और रोटीबन्दी की भावना को सावरकर ने समूल नष्ट कर दिया।

१९२७ के मार्च महीने में महात्मा गांधी रत्नागिरी गये। उन्होंने वहाँ सावरकर से मुलाकात की। अब्दुल रशीद नामक एक मुसलमान ने १९२७ के दिसम्बर महीने में महर्षि स्वामी श्रद्धानन्द का खून किया। इस ख़ून से सर्वत्र खलबली मच गई। सावरकर ने स्वामी श्रद्धानन्द के संस्मरण में अपने छोटे भाई डा० ना० दी० सावरकर की सहायता से 'श्रद्धानन्द' नामक अखबार निकालना शुरू किया। इस पत्र में ये हिन्दू-संगठन विषयक प्रभावशाली लेख लिखते थे। इसके सिवा इन्होंने बलवंत, केसरी, सत्यशोधक, किर्लोस्कर, मनोहर स्त्री और महाराष्ट्र-शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओं में खूब लिखा।

सावरकर मराठी साहित्य के सम्राट कहे जाते हैं। उपन्यास, काव्य, नाटक, निबन्ध, इतिहास, जीवनी आदि विविध विषयों की पुस्तकें लिखकर इन्होंने मराठी साहित्य का भंडार भरा है। इनकी कई पुस्तकें सरकार ने जब्त कर लीं। अंडमन से वापस आने पर इन्होंने 'माँझी

लिखी, उसे भी सरकार ने जब्त कर लिया। इन्होंने लिपि सुधार और भाषाशुद्धि पर भी लेख लिखे।

रत्नागिरी से छुटकारा

सावरकर को नजरबंदी से दूर करने के लिये जनता ने कोशिश करना शुरू किया। उसने बीस हजार व्यक्तियों के हस्ताक्षर लेकर एक प्रार्थनापत्र सरकार के पास भेजा। कांग्रेस मंत्रिमंडलों के बनते ही बम्बई के एक मंत्री श्री बैरिस्टर जमनादास मेहता के प्रयत्नों से सावरकर और इनके बड़े भाई श्री गणेशपंत को १० मई १९३७ को एकदम पूर्ण रूप से स्वतंत्र कर दिया गया।

महाराष्ट्र और हिंदूराष्ट्र ने सावरकर का हृदयपूर्वक आनन्द से शानदार स्वागत किया। कांग्रेस, लोकशाही स्वराज्य पक्ष, हिंदू-महासभा आदि विविध राजनैतिक संस्थाओं को विश्वास था कि सावरकर इनमें से जिस किसी संस्था मे जाकर मिलेंगे, उसका भाग्योदय होगा। १ अगस्त १९३७ को तिलक-जयन्ती के उत्सव में सावरकर ने स्पष्ट घोषणा की कि उनका राजनैतिक पक्ष लोकशाही स्वराज दल है और धार्मिक पक्ष हिन्दूमहासभा है।

हिन्दू-राष्ट्रपति के रूप में

१९३७ में अखिल भारतवर्षीय हिन्दू-महासभा का १९ वाँ अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। इस अधिवेशन

के सावरकर सभापति चुने गये। हिन्दू-महासभा के इतिहास में यह पहला अवसर था, जब कि सावरकर ने हिन्दू-महासभा के उद्देश्यों, सिद्धान्तों और नियमों को जनता के सामने वास्तविक रूप में रखा। उन पर विचार किया। समालोचना और प्रत्यालोचना के द्वारा उनको एकमत-निर्मित और सुदृढ़ बना दिया।

इस अधिवेशन में अपने सभापति-पद से दिये गये भाषण में सावरकर ने हिन्दू-महासभा के विषय में जो कुछ कहा था, उसका सारांश संक्षेप में इस प्रकार है:—

"......'हिन्दूवाद' में हिन्दुओं की धार्मिक रीति व्यवहार, अध्यात्मशास्त्र और श्रद्धा तत्वों का समावेश है। पर यह भाग ऐसा है कि जिसे हिन्दू-महासभा प्रत्येक व्यक्ति या समुदाय की श्रद्धा और विवेकबुद्धि पर पूर्ण रूप से छोड़ देती है। हिन्दू-महासभा की निर्मिति किसी श्रद्धा-तत्व पर, किसी विशेष ग्रंथ के आधार पर या किसी आध्यात्मिक संप्रदाय के सिद्धान्तों को पुष्ट करने के लिये नहीं हुई है। यदि हिन्दू-महासभा का किसी वाद (Ism) से सम्बन्ध है, तो वह उसके हिन्दुस्तान को अपनी पुण्यभूमि और सिद्धान्तों का मूल मंदिर मानने तक ही है। इस दृष्टि से प्रत्येक हिन्दू से हिन्दूमहासभा का सम्बन्ध है, बशर्ते कि उस व्यक्ति का वाद या धर्म हिन्दुस्तान में ही पैदा हुआ हो।

इस प्रकार 'हिन्दुत्व' के अनेक उपांगों में से केवल

एक ही उपांग तक हिन्दू-महासभा का 'हिन्दुवाद' अप्रत्यक्ष संबन्ध है। इसका सच्चा संबन्ध प्रमुख रूप हिंदुत्व के दूसरे उपांगों से है। इससे हिन्दू-महासभा धर्मसभा नहीं है। वह हिन्दूराष्ट्रसभा है। सामाजिक, रा नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों से हिंदू-राष्ट्र के भवि को आकार देने वाली वह एक विश्वहिन्द संगठन है।"

हिंदू मुसलमान-एकता के सबन्ध में सावरकर यह कहना है कि हम मुसलमानों के पीछे एकता कर की विनती करते हुए इस कदर पड़ गये हैं कि हमें गर समझ कर मुसलमानों ने नाक-भौं सिकोड़ना शुरू क दिया। उहोंने नाना तरह के अड़ंगे डाले। हमें उनकी धमकियों की परवाह न करके उनसे स्पष्ट रूप से यह कह देना चाहिये कि हमें ऐसी एकी चाहिये, जिससे हम इस तरह के हिंदी राज्य का निर्माण कर सकें, जिसमें वंश, जाति या धर्म का विचार न करके सब नागरिक 'एक मत' 'एक मनुष्य' के सिद्धांत पर व्यवहृत हो। हम हिन्दुओं की यद्यपि बहुसंख्या हिन्दुस्तान में है, तो भी हम हिन्दुओं के लिये विशेष अधिकार माँगना नहीं चहते। इतना ही नहीं, यदि मुसलमान अन्य जातियों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप न करने, हिन्दुओं को नीचा न दिखाने और उन पर रोब न जमाने का वचन दें, तो हम भी उनकी संस्कृति, धर्म, भाषा आदि की विशेष रक्षा का वचन देने को तैयार हैं।

अल्पसंख्यक जातियों से हमारा यह कहना है कि आओगे तो तुम्हारे साथ, न आओगे तो तुम्हारे बिना, विरोध करोगे तो तुम्हारे विरुद्ध भी हिंदू-राष्ट्र अपने भविष्य को जैसे हो सकेगा, वैसे बनायेगा।

इस अधिवेशन के बाद हिंदू-महासभा का प्रचार करने के लिए सावरकर पर्यटन करते रहे। इन्होंने यू० पी०, सी० पी०, बम्बई, पंजाब आदि प्रांतों तथा भिन्न-भिन्न रियासतों में पर्यटन किया। प्रत्येक जगह इनका शानदार स्वागत होता था।

निज़ाम राज्य में हिंदुओं पर अत्याचार हो रहे थे। इन अत्याचारों का विरोध पहले आर्यसमाजी लोगों ने किया था। १९३८ में सावरकर ने इस आंदोलन को उठाया और हैद्राबाद में सत्याग्रह शुरू किया। सत्याग्रहियों पर लाठी-चार्ज आदि अनेक अत्याचार किये गये, पर सत्याग्रह बराबर ११ महीने तक चालू रहा। अन्त में निजाम के हिंदुओं को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करने की घोषणा करने पर इन्होंने सत्याग्रह बन्द कर दिया।

१९३८ में ये अखिल भारतवर्षीय मराठी साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के और हिंदू-महासभा के २० वें अधिवेशन के, जो कि नागपुर में हुआ था, सभापति चुने गये। मराठी साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के सभापति-पद से इन्होंने जोरदार भाषण दिया, जिसमें इन्होंने बत-

लाया कि हिंदुस्तान को साहित्यिकों की जरूरत नहीं है, फिलहाल बन्दूकधारियों की सख्त जरूरत है। युवकों से इन्होंने अपील की कि वे कलम छोड़कर बंदूक हाथ में लें। राष्ट्र-भाषा के प्रश्न पर 'हिंदुस्तानी' और रोमन लिपि का यथार्थ विरोध करते हुए इन्होंने बतलाया कि संस्कृत-निष्ठ हिंदी ही हिंदुस्तान की राष्ट्र-भाषा और देवनागरी ही हिंदुस्तान की राष्ट्रलिपि हो सकती है, कोई अन्य नहीं।

१६२६ के अक्तूबर की ६वीं तारीख को ये वाइसराय से उनके निमन्त्रण पर मिलने गये थे। इसी साल अखिल भारतीय हिंदू-महासभा का २१ वाँ अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। इस अधिवेशन के भी ये ही सभापति चुने गये। १६४० के इसी साल में भी ये हाल में ही वाइसराय से फिर मिले थे।

सावरकर के विषय में कुछ अन्य बातें

(१) महात्मा गाँधी १६२७ के मार्च मास में रत्नागिरी गये थे। उस समय उन्होंने सावरकर से मुलाकात में शुद्धि-संगठन के विषय में महात्मा गाँधी और बैरिस्टर सावरकर में जो वार्तालाप हुआ था, उसका सारांश नीचे दिया जाता है—

सावरकर—शुद्धि के विषय में आपको क्या राय है?

महात्मा गाँधी—हिन्दू मनुष्य भ्रष्ट होने की कल्पना

ही गलत है। मुझे मुसलमान अगर मार-पीट कर मुसलमान बना भी लें, तो भी मन से मैं हिन्दू ही हूँ। फिर शुद्धि कैसी?

सावर०—आपका कहना एक तरह से ठीक है। पर हमारे समाज की कल्पना के अनुसार जब तक खाने-पीने के दोषों से भ्रष्ट होने की भावना समाज के उस व्यक्ति के हृदय में भी भरी हुई है, जो अत्याचार द्वारा धर्म को छोड़ने पर बाध्य होता है, तब तक उसे यह दिखलाने के लिए कि तुम समाज में फिर से वापस ले लिए गये हो, एकाध संस्कार हो तो क्या हर्ज है?

म० गा०—बिल्कुल नहीं। ऐसा संस्कार न चाहिये। लेकिन मुझे अत्याचार से भ्रष्ट किये गये व्यक्ति की शुद्धि मान्य हो, तो भी मैं उन व्यक्तियों की शुद्धि करने के पक्ष में नहीं हूँ, जो कई पीढ़ियों से भ्रष्ट हो चुके हैं और दूसरे धर्म में मिल गये हैं। इसका कारण 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' है। किसी को किसी विशेष धर्म में घसीट लाना ठीक नहीं। प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म को स्वीकार करे।

सावरकर—भिन्न-भिन्न ऐहिक और पारलौकिक साधनों की चर्चा करने पर ही कोई अपने स्वभाव के अनुसार किसी भी साधन को स्वीकार कर सकता है। जिसको जो चाहे वह स्वीकार करे, इस

यह अर्थ है। हिन्दूधर्म का तत्वज्ञान बुद्धिगम्य है और हिन्दूधर्म की संस्कृति यह एक व्यावहारिक भाग है। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' की भाँति 'कुर्वन्तो विश्वमार्यम्' भी धर्माज्ञा है। सत्यपालन तो करना ही चाहिये, पर उसके साथ-साथ सत्य का प्रचार भी करना चाहिये, फिर ऐसा करने में चाहे जितने भी संकट क्यों न आये।

स० गाँ०—हम दोनों का ध्येय एक ही है। हम दोनों ही हिन्दुस्तान और हिन्दूधर्म के गौरव के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

इस संवाद से पता चलता है कि सावरकर का शुद्धि-आन्दोलन पर्याप्त प्रचार पा चुका था। इस आंदोलन के पक्ष में उस समय के तमाम नेता भी थे।

(२) ता० १-१-२८ को अहमदाबाद के महाराष्ट्र समाज में हिन्दू-महासभा के सभापति श्री सावरकर का स्वागत किया गया। उस समय इनसे दो प्रश्न पूछे गये। उन प्रश्नों के उत्तर में इन्होंने एक भाषण दिया। दूसरा प्रश्न था 'वीरों के लक्षण क्या हैं ?' इस प्रश्न के उत्तर में सावरकर ने अपने भाषण में कहा था—

"......हिन्दुत्व का योग्य अभिमान न करके राष्ट्रीयत्व के खोखले नाम की आड़ में उसके विरुद्ध विचार प्रदर्शित करना मुझे कभी भी सहन नहीं हो सकता। आज जिस किसी को देखिये वही हिन्दू-समाज के प्रति अन्याय

हीं कर रहा है। इसके ठीक विपरीत हिन्दू-समाज ने किसी के प्रति अन्याय नहीं किया है। स्वर्गवासी दादाभाई नौरोजी पारसी होते हुये भी राजनीति में उनका प्रथम स्थान था, क्योंकि वे कट्टर राष्ट्रीय थे और हिन्दूसमाज ने समर्थ होते हुए भी उसके आश्रय में आये हुए पारसी जहाज को सम्मान-पूर्वक स्थान दिया। इसके ठीक विपरीत मुस्लिम समाज ने कभी उदारतापूर्वक व्यवहार नहीं किया। सीमान्त प्रांत में असहाय हिन्दू-कन्याओं पर हो रहे अत्याचारों को देखिये। यह कल्पना कीजिये कि मानों हमारी ही लड़की या बहन भगाई गई है; और उस पर अत्याचार हो रहे हैं। इस कल्पना-चित्र को अपनी आँखों के सामने रखिये और फिर यदि आप अपने को उन आदमियों की श्रेणी में रखने योग्य समझते हों, जो इन अत्याचारों के विरुद्ध कुछ भी बोलना नहीं चाहते या इन अत्याचारों पर अपनी मूक सम्मति प्रदान करते हैं, तो यह वीरों का लक्षण नहीं है। हाँ-हुजूरी करके मिलने वाला बड़प्पन मुझे नहीं चाहिये। मैं अगर अमेरिका गया होता तो और वहाँ सदा के लिए रहा होता तो शायद वहाँ का प्रेसीडेन्ट हुआ होता; लेकिन यह सोचकर वहाँ जाकर रहना वीरों का लक्षण नहीं। इसी तरह अपने निजी सिद्धान्तों को तरफ रखकर केवल बड़प्पन प्राप्त करने के लिए

कांग्रेस में शामिल होकर उसके अधिकारियों के सामने सिर झुकाता रहूँ, तो यह भी वीर का लक्षण न होगा। ऐसा करना होता तो मैं पहले ही लोकमान्य तिलक की शरण में न जाकर श्री गोखले की छत्रछाया में गया होता। मेरे विचारों से लो० तिलक भी दिन को कभी सहमत नहीं रहे। वे केवल रात के बारह बजे मुझसे सहमत हो पाते थे। फिर भी इन बातों की जरूरत नहीं, यही आदेश वे मुझे दिया करते थे। केवल सम्मान के हेतु कुछ करना मुझे नहीं जँचता। और आप जिसे सम्मान कहते हैं, वह सम्मान भी क्या है ? गुलामों के देश की राष्ट्रीय सभा का सभापति, गोबर के ढेर में जो कीड़ों के दल के दल रहते हैं उनमें सबसे ऊपर का कीड़ा भी यदि हो जाय, तो भी वह है गोबर का ही कीड़ा। प्रत्यक्ष संग्राम शुरू होगा, तब मैं कभी पीछे नहीं हटूँगा, इस बात का यदि आपको विश्वास हो तो फिलहाल राष्ट्रीय सभा से मतभेद भी हो तो क्या हर्ज है ?

मेरे मतानुसार सब व्यक्तियों को समान अधिकार मिलना यही सच्चा राष्ट्रीय सिद्धांत है। हिन्दू-महासभा हिन्दुओं के लिये अधिक अधिकारों को माँगने वाली नहीं है। अतएव वही संपूर्ण राष्ट्रीय है, और तू ईसाई है, इस-लिये तुझे फलाँ अधिक और तू मुसलमान है, इसलिये तुझे फलाँ अधिक, ऐसा कहने वाली राष्ट्रीय सभा (कांग्रेस)

से कहीं अधिक योग्य है। जिस समय कांग्रेस यानी राष्ट्रीय सभा यथार्थ में राष्ट्रीय सभा हो जायगी, उस समय मुझे आप लोग उसी सभा का कार्यकर्ता समझिये।"

सावरकर हिन्दू भारत के प्राण हैं। रत्नगिरी के जेल से छूटने के बाद वे हिन्दू महासभा के सभापति पद से बराबर देश की सेवा कर रहे हैं। इधर वे कई वर्षों से बराबर हिन्दू महासभा के सभापति होते रहे हैं। मदूरा, बिसालपुर कलकत्ता, भागलपुर और कानपुर के अधिवेशनों के सभापति के पद से इन्होंने जो भाषण किये हैं, उनसे हिन्दुओं की भलाई के बारे में इनकी बेचैनी का पता लगता है।

कानपुर और मदूरा में सभापति के पद से भाषण करते हुए इन्होंने स्पष्ट कहा था, कि यदि भारतवर्ष को स्वाधीन करना है, तो यह बहुत जरूरी है कि हिन्दुओं के भीतर बल पैदा किया जाय, और संगठित किया जाय।

सावरकर बहुत बड़े राजनीतिज्ञ हैं। वे राजनीति के दाँव-पेचों को बहुत अच्छाई के साथ जानते हैं। वे बहुत दूर की सोचते हैं और उसी के अनुसार जनता को कार्य करने की सलाह भी देते हैं। आज जो सारे देश में उथल-पुथल मचा हुआ है, उसकी स्पष्ट तसवीर सावरकर ने मदूरा के अधिवेशन में ही खींच दी थी।

सावरकर की राजनीति बड़ी तीखी है। वे

चार वर्ष हुये, जब क्रिप्स साहब अपना प्रयोजन लेकर भारतवर्ष आये थे, तब सावरकर भी अपने सहयोगियों के साथ निमत्रण पाकर उनसे मिले थे। सावरकर ने एक ही नजर में यह पहचान लिया था, कि इसमें कुछ सार नहीं है, और उन्होंने पहली ही मुलाकात में उसे मानने से इन्कार कर दिया था।

सन् १९४२ में जब सारे देश में विप्लव मचा हुआ था, और कांगरेस फौज में भरती होने का बायकाट कर रही थी, उस समय सावरकर ने हिन्दुओं को यही सलाह दी थी कि वे सेना में भरती होकर सैनिक शिक्षा ग्रहण करें। उन्हीं दिनों एक देश-भक्त ने सावरकर के पास जाकर जब उनसे यह पूछा, कि आप जनता को ऐसी सलाह क्यों देते हैं, जिससे सरकार का फायदा होता है। तब सावरकर ने उत्तर देते हुए कहा था, कि मैं जानता हूँ, कि इस विप्लव से हिन्दुस्तान को कुछ भी लाभ न होगा। हिन्दुस्तान को लाभ तो उसी समय होगा जब हिन्दुस्तान के पास सैनिक शक्ति होगी। हिन्दुस्तान के नवजवानों को सैनिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए आज से बढ़कर उपयुक्त समय कभी न होगा। इसीलिए मैं हिन्दू नव-जवानों को यह सलाह देता हूँ, कि वे फौज में भरती हो जायँ, और सैनिक शिक्षा लें।

सावरकर भारतवर्ष को हिन्दुओं का देश मानते हैं। मतलब यह नहीं है, कि उनका किसी दूसरे ...

से विरोध है। बल्कि उनका कहना यह है, कि इस देश में और भी जितने लोग हैं, उनका भाग्य हिन्दुओं के भाग्य के साथ बँधा हुआ है। इसीलिए सावरकर जो कुछ भी सोचते हैं, हिन्दुओं के दृष्टिकोण से सोचते हैं।

सावरकर पक्के लड़ाके हैं। उनकी सारी जिन्दगी अँगरेजों के साथ लडते ही बीती है। हिन्दुस्तान की स्वाधीनता के लिए उन्होंने अनेक कष्ट झेले हैं। आज भी सावरकर के हृदय में हिन्दुस्तान की आजादी के लिए बड़ी पुरानी भावना काम कर रही है। किन्तु आज की भावना में सावरकर के जीवन का बहुत बड़ा अनुभव है। आज जब सावरकर से कोई युद्ध छेड़ने के लिए कहता है तब सावरकर कहते हैं, कि अभी ठहरो, और हिन्दुओं को संगठित करो।

सावरकर महाराष्ट्र के रत्न हैं। सारे महाराष्ट्र को उन पर गर्व है। दो वर्ष हुये, सारे महाराष्ट्र में बड़ी धूम-धाम से सावरकर की जयन्ती मनाई गई थी, और उन्हें एक लाख रुपये की थैली भी भेंट की गई थी। सावरकर ने वह रुपया देश की सेवा में अर्पित कर दिया।

इधर कुछ वर्षों से सावरकर का स्वास्थ्य खराब हो गया है, और उन्होंने अपने को राजनैतिक कार्यों से [illegible] कर लिया है। स्वास्थ्य की खराबी के कारण कई [illegible]

भी देना पड़ा, किन्तु फिर लोगों के आग्रह से स्वीकार करना पड़ा। भागलपुर अधिवेशन के पूर्व यद्यपि सावरकर का स्वास्थ्य अधिक खराब हो गया था; किन्तु फिर भी लोगों के आग्रह के कारण उन्होंने इस पद को ग्रहण किया, और हिन्दुओं के कल्याण के लिए एक सप्ताह का जेल कष्ट भी सहन किया। मथुरा अधिवेशन मे तो सावरकर इतने अस्वस्थ थे, कि कुर्सी पर बिठाकर सभा मंच पर लाये गये थे आजकल भी सावरकर का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। स्वास्थ्य अच्छा न रहने ही के कारण सावरकर हिन्दू महासभ के गोरखपुर के अधिवेशन में शामिल न हो सके। गोरखपुर हिंदू महासभा के अधिवेशन की सफलता के लिए उन्होंने जो सन्देश भेजा था, उसमें उन्होंने यह कहा था कि मैं यहाँ बीमार होकर पूना में पड़ा हुआ हूँ, पर मेरा प्राण गोरखपुर में हिन्दू महासभा के अधिवेशन में है।

आजकल सावरकर पूना में रहते हैं। अभी अभी कुछ दिन हुये, उनके बम्बई वाले घर की तलाशी हुई थी। आज देश में हिन्दुओं की जो दयनीय दशा है, सावरकर उससे बहुत खिन्न और उदास हैं। नोवाखाली के काण्ड ने उन्हें बहुत क्षुभित और शोकित किया है।

ईश्वर सावरकर के स्वास्थ्य को सबल बनाये। सावरकर हिन्दू भारत के प्राण और उसकी जीवन-नौका के [illegible] कर्णधार हैं।

सचित्र, मनोरंजक, शिक्षाप्रद, सरल, रोचक, जीवन ऊँचा उठाने वाली महापुरुषों की जीवनियाँ। मू०

1—श्रीकृष्ण
2—महात्मा बुद्ध
3—रानाडे
4—अकबर
5—महाराणा प्रताप
6—शिवाजी
7—स्वामी दयानन्द
8—लो० तिलक
9—जे० एन० ताता
10—विद्यासागर
11—स्वामी विवेकानन्द
12—गुरु गोविन्दसिंह
13—वीर दुर्गादास
14—स्वामी रामतीर्थ
15—सम्राट अशोक
16—महाराज पृथ्वीराज
17—श्रीरामकृष्ण परमहंस
18—महात्मा टाल्सटाय
19—रणजीतसिंह
20—महात्मा गोखले
21—स्वामी श्रद्धानन्द
22—नेपोलियन
23—बा० राजेन्द्रप्रसाद
24—सी० आर० दास
25—गुरु नानक
26—महाराणा सांगा
27—प० मोतीलाल नेहरू
28—प० जवाहरलाल नेहरू
29—श्रीमती कमला नेहरू
30—मीराबाई
31—इब्राहीम लिंकन
32—मुसोलिनी
33—अहिल्याबाई
34—हिटलर
35—सुभाषचन्द्र बोस
36—राजा राममोहनराय
37—लाला लाजपत राय
38—महात्मा गांधी
39—महामना मालवीय जी
40—जगदीशचन्द्र बोस
41—महारानी लक्ष्मीबाई
42—महात्मा मेजिनी
43—महात्मा लेनिन
44—महाराज छत्रसाल
45—अब्दुल गफ्फार खाँ
46—मुस्तफा कमालपाशा
47—अबुलकलाम आजाद
48—स्टालिन
49—वीर सावरकर
50—महात्मा ईसा
51—वीर केसरी हम्मीरदेव
52—डी० वेलरा
53—गैरीबाल्डी
54—स्वामी शंकराचार्य
55—सी० एफ० एन्ड्रूज
56—गणेश शङ्कर विद्यार्थी
57—डा० सनयात सेन
58—समर्थ गुरु रामदास
59—महारानी-संयोगिता
60—दादाभाई नौरोजी
61—सरोजिनी नायडू
62—वीर बादल
63—पट्टाभि सीतारामैया
64—देवी जोन
65—प्रिन्स बिस्मार्क
66—कार्लमार्क्स
67—कस्तूर बा
68—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
69—सरदार पटेल
70—संत ज्ञानेश्वर

गुरु गोविन्दसिंह

छात्रहितकारी पुस्तकमाला दारागंज, प्रयाग।

पढ़ते बस्त व ५.
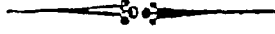
गुरु गोविन्दसिंह

लेखक

ठाकुर सूर्यनाथ सिंह 'विशारद'

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

छठवाँ संस्करण]　　　　मई १९४७　　　　[मूल्य

| पढ़ते वक्त व पढ़ने

गुरु गोविन्दसिंह

सिक्ख धर्म

जिस समय इस देश में मुसलमान मनमाना अत्याचार कर रहे थे, उसी समय एक साधारण क्षत्री के घर में 'नानक' नाम का एक बालक पैदा हुआ। बचपन ही से इस बालक ने अपनी योग्यता का परिचय देना आरंभ किया। गुरु से दो दुगुने चार, तीन दुगुने छः न पढ़कर उसने गुरु को बता दिया कि सच्ची विद्या किसको कहते हैं। यज्ञोपवीत करानेवाले पुरोहित को उसने सुना दिया कि सच्चा धर्म, कर्म करने में है, तागा पहनने में नहीं। बालक की ढिठाई पर किसी को क्रोध आया और कोई हँस दिया। आगे चलकर इसने एकमात्र ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया। बालक ने देखा कि जो धर्मान्ध धर्म, धर्मग्रंथ और ईश्वर के पुरोहितों ने खरीद लिया है, जनता से धन लेकर वैकुण्ठ का पट्टा लिखा देते हैं। उसने हिंदू धर्म के सुधार का बीड़ा उठाया और हिन्दुओं को पुरोहितों के पंजे से छुड़ाने का उद्योग किया। इन्होंने मुसलमानों के अत्याचार के विरुद्ध भी आवाज उठाई।

गुरु नानक के मरने के बाद उनके शिष्य लेहना गुरु अंगद के नाम से गद्दी पर बैठे। गुरु की गद्दी किसी की बपौती न थी। गुरु जिसको योग्य समझता उसी को

अपना उत्तराधिकारी बनाता था। उन लोगों के हृदय में गुरु की गद्दी कायम रखने की लालसा न थी, केवल शुद्ध 'खालिश' धर्मोपदेश का प्रचार ही इनका अभिप्राय था। इसलिए इस संप्रदाय का नाम 'पंच खालसा' (शुद्ध-मार्ग) पड़ गया। भक्त लोग इकट्ठे होकर खालसा-धर्म के व्याख्यान सुनने और उनसे लाभ उठाने लगे। अङ्गद के बाद गुरु अमरदास गद्दी पर बैठे। इनके समय में सिक्खों का जोर बहुत बढ़ गया। चौथे गुरु रामदास हुए। सिक्खों की जड़ इन्हीं के समय में पक्की हुई थी। बादशाह ने स्वयं आकर इनके चरणों की पूजा की और इन्हें थोड़ी-सी धरती भी दी। इन्होंने अपने बड़े पुत्र को अयोग्य समझकर अपने सबसे छोटे पुत्र अर्जुन को अपनी गद्दी का हकदार बनाया। इससे बड़ा पुत्र क्रुद्ध होकर बादशाह के दीवान से मिल गया और अंत में इनकी अकाल मृत्यु का कारण हुआ। इस कारण सिक्खों के दिल में क्रोध की आग धधकने लगी और वे बदला लेने का अवसर ढूँढने लगे। छठे गुरु हरगोविन्द ने इस जाति के ताकत का इम्तहान लिया, जिसमें यह खरी निकली। सातवें गुरु हररायदेव शान्तिप्रिय और धर्मात्मा थे। इन्हें मुसलमानों से मुठभेड़ न करनी पड़ी। आठवें गुरु हरकिशनदेव पाँच वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे और आठ ही वर्ष की अवस्था में स्वर्ग वासी हुए। मरते समय आपने

गद्दी का अधिकार स्वरूप खड्ग व छत्र अपने दादा के छोटे भाई गुरु तेगबहादुर के पास भिजवा दिया। किन्तु हरराय का बड़ा भाई रामराय मुगलों से मिलकर स्वयं गद्दी पर बैठने का स्वप्न देख रहा था और समय समय पर औरंगजेब का कान भर रहा था। सिक्खों के नवें गुरु तेगबहादुर देव सम्वत् १७२१ वि० में गद्दी पर बैठे। ये बड़े त्यागी, शान्तिप्रिय और ईश्वरभक्त थे। किन्तु साथ ही साथ ये उदार, वीर और देश-हितैषी भी थे। इन्होंने सिक्खों का संगठन करके उसे अपूर्व शक्तिशाली बना दिया। सिक्खों से मुगल बादशाह चौकन्ना तो रहता ही था, उसने तेगबहादुर को दरबार में बुलवा भेजा। परन्तु महाराज जयपुर ने, जो गुरुओं के भक्त थे, बीच में पड़कर इनको अपने साथ आसाम की तीर्थ-यात्रा में ले जाने के लिए बादशाह से आज्ञा प्राप्त कर ली।

गुरु गोविन्दसिंह का जन्म

आसाम जाते समय गुरु तेगबहादुरजी अपनी गर्भवती स्त्री माता गुजरीजी को पटने में छोड़ गये थे। वहाँ पर हमारे चरित्र नायक गुरु गोविन्दसिंह का जन्म संवत् १७२३ विक्रमी, ज्येष्ठ सुदी ७ शनिवार को आधी रात के समय हुआ था। कोई कोई इनका जन्म पौष शुक्ला त्र्योदशी संवत् १७२३ वि० को मानते हैं। इन्होंने अपने जन्म का हाल 'विचित्र नाटक' नामक ग्रंथ में यों लिखा

है—"पूर्वजन्म में मैं दुष्टदमन[१] नाम का राजा था और धर्मपूर्वक राज्य करता था। वृद्धावस्था प्राप्त होने पर मैं मण्डन ऋषि से उपदेश पा, अपने पुत्र विजयराय को गद्दी देकर हेमकूट[२] नामक पर्वत पर, जहाँ अर्जुन ने तपस्या की थी, चला गया और पद्मासन बाँध महाकाल के ध्यान में मग्न हुआ। कुछ काल तक तपस्या करने के बाद महाकाल पुरुष ने मुझे दर्शन देकर अपने 'निज पुत्र' की पदवी दी और कहा कि मेरे अन्य अवतार सब स्वमेव ईश्वर कहलाये हैं; पर तुम अपने को 'ईश्वर का सेवक' प्रसिद्ध करना।" इसी के बाद गुरु तेगबहादुर जी के यहाँ मेरा जन्म हुआ।

जयपुर के महाराज के साथ गुरु तेगबहादुर आसाम से ११ महीने बाद लौटे। इन्होंने अपनी माता और स्त्री को आनन्दपुर, जिसे हिमालय की तराई में इन्होंने बसाया, जाने को कहा। पर इन्होंने रामराय और अन्य शत्रुओं के भय से पटना ही में रहना अधिक पसन्द किया। गुरु-गोविन्दसिंह के जन्म पर बहुत से सिक्ख उपहार लेकर पटना आये और गुरुगोविन्दसिंह के मामा श्री कृपालचंद

१ दुष्टदमन या धृष्टद्युम्न किसी समय में काठियावाड़ प्रान्त में अमरकोट का राजा था।

२ यह पर्वत उत्तराखंड मे हिमालय पहाड़ की शृंखला के अन्तर्गत बदरी नाथ से करीब ७-८ कोस पर है।

ने उनका यथा योग्य सम्मान कर उन्हें विदा किया। पटने में कोई गुरु साहबों का शत्रु न था; इसलिए चारों ओर लोग आनन्द मनाने लगे। गुरु तेगबहादुर अकेले आनन्दपुर गये। सिक्ख पंजाब में उनके लौटने से निराश हो चुके थे। औरंगजेब के दर्बार में रामराय को गद्दी देने का जाल रचा जा रहा था। पाँच वर्ष की अवस्था तक गोविन्दसिंह पटने ही में रहे। इसी उम्र में इनका भविष्य झलकने लगा था। ये अपनी विचित्र बाल-लीला से अपनी माता को खुश रखने लगे। कभी लड़कों को एकत्र करते, उन्हें दो दलों में बाँट देते थे, एक सर्दार आप बनते और दूसरे दल का सर्दार किसी दूसरे लड़के को बनाते। किसी वृक्ष या वस्तु पर अधिकार करने के लिए दोनों दलों में युद्ध होता। जो बालक विजयी होता या जिसका कार्य प्रशंसनीय होता उससे ये प्रेमपूर्वक मिलते और उसे उचित पुरस्कार भी देते थे। कभी किसी स्थान को किला मानकर एक दल उस पर चढ़ाई करता और दूसरा उसकी रक्षा करता। कभी धनुष से तीरंदाजी के निशाने लगाने की बाजी लगती। बालक गोविन्द को बाण चलाने, नावों की दौड़ और घोड़-दौड़ कराने का बड़ा शौक था। वे पटने में सर्वप्रिय हो गये। जब इनके पिता ने सिक्खों के आग्रह से इन्हें अपनी माता सहित फिर पंजाब बुलाया तब सारे पटना-निवासी इनके वियोग में अधीर हो उठे।

क्या स्त्री, क्या पुरुष, कोई भी ऐसा न था जो इनके वियोग से दुखी न हुआ हो।

चतुर पिता आनंदपुर आने पर अपने पुत्र गोविंदसिंह का युद्धप्रिय स्वभाव समझ गये। उन्होंने इन्हें रेखागणित, बीजगणित की शिक्षा न देकर निशाना लगाना, घोड़े पर चढ़ना, कुश्ती लड़ना, तलवार चलाना और युद्ध के सब हुनर में होशियार कर दिया। सात वर्ष की अवस्था में गोविन्दसिंह ने साहबचन्द्र ग्रन्थी की अध्यक्षता में विद्याध्ययन आरम्भ किया। होनहार बालक ने थोड़े ही समय में आदि ग्रन्थ पढ़ लिया और अपने पठन-पाठन और उच्चारण से लोगों को चकित करने लगा। सर्वगुण सम्पन्न बालक गुरुगोविन्द ने पंजाब के एक-एक हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया। सात वर्ष की अवस्था में हमारे चरितनायक का शुभ विवाह लाहौर निवास हरियश क्षत्रिय की गुणवती कन्या के साथ बड़ी धूमधाम से हो गया।

गुरु तेगबहादुर की धर्मबलि

इस समय औरंगजेब दिल्ली में राज्य करता था। वह कट्टर मुसलमान था। इन्हीं दिनों औरंगजेब के अत्याचार से तंग आकर कुछ काश्मीरी ब्राह्मणों ने आकर गुरु तेगबहादुर की शरण ली। शरणागतों की दर्दभरी कहानी सुन कर गुरु के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह निकली और आपने कहा—"जब तक कोई ईश्वर का लाल

हवण न होगा, ईश्वर की प्रजा का यह घोर दुख दूर न होगा।" यह बात सुनकर सारा दरबार चकित हो, चुप हो गया। किन्तु पिता की गोद में बैठे हुए ९ वर्ष के बालक गोविन्द से रहा न गया। वह झट अपने स्थान से उठा और पिता के कमल चरणों में प्रणाम कर बोला, "पिता जी, आप साक्षात् धर्म के अवतार हैं। आपके सिवा दूसरा कौन इसके लिए बलि दे सकता है। आप ही प्राणों की आहुति दे, इन दीन दुखियो की रक्षा कीजिए।"

बालक गोविन्द की यह बात सुनकर सारे दरबारियों के रोंगटे खड़े हो गये। लोग चकित हो, कभी पुत्र की ओर और कभी पिता की ओर देखने लगे। गुरु तेगबहादुर अपने प्रिय पुत्र की बातें सुन बहुत प्रसन्न हुए और थोड़ी देर तक सोच-विचार कर उन्होंने ब्राह्मणों से कहा—तुम लोग यहाँ से सीधे दिल्ली जाओ और बादशाह से कह दो "निर्बल प्रजा के सताने से क्या लाभ ? यदि आप हिन्दुओं के धर्म गुरु तेगबहादुर से इस्लाम स्वीकार करा लें तो हम सब आप-से आप मुसलमान हो जायँगे।" ब्राह्मणों ने जाकर औरंगजेब से यह सन्देश ज्यों का त्यों सुना दिया। यह समाचार सुन कर औरंगजेब ने काज़ी और मुल्लाओं की एक सभा की और उनके निर्णय के अनुसार गुरु तेगबहादुर को दिल्ली बुलवा भेजा। बादशाह का आज्ञा-पत्र गुरुतेगबहादुर ने राजदूत को वापस किया

और कह दिया कि आप चलिए मैं आप दिल्ली पहुँच जाऊँगा। उन्होंने अपना अन्त समय निकट देखकर अपने प्यारे पुत्र गोविन्द को अपने हाथ से गद्दी पर बिठाया और उन्हें उचित आदेश देकर वहाँ चल दिये।

गुरु साहब स्थान-स्थान पर धर्म का उपदेश देते हुए धीरे-धीरे दिल्ली की ओर जा रहे थे। उधर औरंगजेब ने इनके आने में विलम्ब देख उनको पकड़ने के लिए अनेकों दूत छोड़ दिये और गुरु साहब का मस्तक लानेवाले के लिए एक बड़ा भारी इनाम नियत कर दिया। गुरु साहब अपने शिष्यों को दर्शन देने के लिए आगरा चले गये थे। वहाँ पर एक गरीब सैयद ने गुरु जी से प्रार्थना की कि यदि आप स्वयं न जाकर मेरे बन्धन में बादशाह के सामने चलें तो मुझे बड़ा भारी पुरस्कार मिलेगा और मेरा दुख छूट जायगा। फलतः गुरु तेग-बहादुर आगरे के एक बाग में बन्दी बनाकर पाँच शिष्यों सहित दिल्ली पहुँचाये गये।

गुरु पाँचों शिष्यों सहित औरंगजेबी दरबार में पेश किये गये। बादशाह ने गुरुजी से अनेकों प्रश्न पूछे और उन्हें मुसलमान बनाने के लिये शाही लड़की से शादी कर देने, पंजाब का सूबेदार बनाने और भारत के मुसलमानी धर्म का नेता बनाने का लालच दिया। गुरु जी ने उत्तर दिया "परमात्मा पक्षपात रहित है। उसे हिन्दू मुसलमान

बराबर हैं। धर्म दिल से स्वीकार कराया जाता है, मुख से नहीं। मेरे हृदय में इस्लाम धर्म के लिए स्थान नहीं है।" इस पर बादशाह ने क्रुद्ध होकर उन्हें पाँचों शिष्यों सहित कारागार में भेज दिया और आज्ञा दी कि उन्हें शारीरिक कष्ट देकर इस्लाम धर्म स्वीकार कराया जाय।

कुछ दिनों बाद दूसरी बार बादशाह ने फिर उन्हें दरबार में बुलाया और मिथ्या धर्म त्याग कर सत्य धर्म स्वीकार करने का हुक्म दिया। इस पर क्रुद्ध हो गुरु के शिष्यों में से दीवान श्री मतिराम ने कहा, "मुसलमान धर्म झूठा है, सिक्ख धर्म मिथ्या नहीं है, इसलिए हम-लोग सत्य धर्म का ही अनुकरण कर रहे हैं। यदि परमात्मा इस्लाम को अच्छा समझता तो मनुष्य को खतना (मुस-लमानी) किया हुआ पैदा करता।" इस उत्तर से औरंग-जेब बहुत नाराज हुआ और शीघ्र ही मतिराम का काम तमाम करवा दिया। यह देख दूसरे शिष्य श्री दयालदेव से न रहा गया। उन्होंने औरंगजेब को दुष्ट, निर्दयी और अत्याचारी संबोधित कर शाप दिया, "रे दुष्ट ! तेरे राज्य और कुल का शीघ्र ही पतन होगा।" यह सुनकर औरंगजेब का खून उबलने लगा और उसने इन्हें खौलते तेल के कड़ाह में छोड़वा दिया। उसने गुरु महाराज को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए तीसरा अवसर देकर उस दिन सभा विसर्जित की।

गुरूजी के शेष तीन शिष्य भी कारागार में मार डाले गये । गुरुजी भी ईश्वर की अराधना करते हुए अपनी मृत्यु की राह देखने लगे । एक दिन गुरूजी पर बादशाही अन्तःपुर (जनानखाना) की ओर देखने का अपराध लगाया गया । गुरुजी ने उत्तर दिया—"यह दोष तो झूठा और बेबुनियाद है । किन्तु मैं दक्खिन की ओर अवश्य देख रहा था, जहाँ से एक सफेद रंग की जाति आवेगी और मुगल साम्राज्य पर अपना अधिकार जमाकर राजमहल का घमण्ड चूर करेगी ।" इस भविष्यवाणी से नाराज होकर औरंगजेब ने गुरू जी को मृत्यु दण्ड दे दिया । वे चांदनी चौक में खड़े किये गये और उनका सिर धड़ से अलग कर दिया गया । साहसी सिक्खों ने आगे बढ़कर सिर को आनन्दपुर भेज दिया, जहाँ उसकी अग्निक्रिया की गयी और धड़ को उठा ले जाकर उन्होंने अग्नि संस्कार किया । गुरु महाराज की बलि-तिथि मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी, संवत् १७३२ वि० भारतीय इतिहास में सुनहले अक्षरों में लिखी रहेगी ।

जब गुरु तेगबहादुर की मृत्यु का समाचार आनन्दपुर पहुँचा तब उनकी माता श्रीनातकी देवी पुत्र-स्नेह से व्याकुल हो उठीं । परन्तु हमारे चरित्र नायक गुरुगोविंदसिंह ने उन्हें समझाया कि आपको अपने पुत्र की बलि से शोक नहीं बल्कि संतोष होना चाहिए, क्योंकि आपके पुत्र

उस अमरगति को प्राप्त किया हैं जो मृत्यु से परे है। मर कर भी अमर हो गये हैं। पौत्र के समझाने से हें कुछ संतोष हुआ। वीर गुरु गोविंदसिंह अपने पिता अत्याचार करनेवाले यवनों से बदला लेने का दृढ़ ल्प कर अपनी शक्ति बढ़ाने को चेष्टा करने लगे।

धर्मयुद्ध की तैयारी

गुरुगोविंदसिंह अपनी शक्ति को अच्छी तरह समझते। औरंगजेब ऐसे मुगल सम्राट से बदला लेना कोई खेल हीं था। आपने पहले विद्याभ्यास करना आरम्भ किया। पको विद्वानों से विशेष प्रेम था। बहुत से विद्वान् उनके रि की शोभा बढ़ाते थे। बड़े-बड़े अनेकों संस्कृत ग्रंथों का नुवाद कराया गया। गुरुसाहब नित्य प्रातःकाल उठकर तःक्रिया समाप्त कर जपजी का पाठ और ईश्वर की ासना करते और आनेवाले भक्तों से मिलकर उनके ोजन आदि का प्रबन्ध करके अपने घर चले जाते थे।

इन्होंने गुरु हरगोविन्दसिंह के समय के वीरों को लाया और उन्हें ऊँचे ऊँचे स्थान पर नियुक्त किया। वे त्य सायंकाल गुरुद्वारे में जाते और दूसरे दिन का ोग्राम निश्चित करके बहुत देर तक अपने भक्तों से तचीत करते थे। उनकी कविता बड़ी जोशीली और ावपूर्ण होती थी। उनके व्याख्यान को सुनकर सुनने-

वाले के हृदय में अपूर्व उत्तेजना और उच्च विचार उत्पन्न होते थे।

इन्होंने सोचा कि खालसा-धर्म का खूब जोर से प्रचार किया जाय और वीर-धर्म का उपदेश दिया जाय। साथ ही साथ इन्होंने युद्ध का भी सामान इकट्ठा करना आरंभ कर दिया। किंतु इसके लिए रुपयों की आवश्यकता थी। इन्होंने एक अच्छा उपाय सोचा:—आपने कहा कि प्रति दिन सैकड़ों भक्त दर्शन करने आते हैं। यदि प्रत्येक शिष्य एक-एक बंदूक या दस-दस गोलियां या एक-एक तलवार लावे; प्रत्येक नहीं, यदि सौ में दस भी लावें तो एक वर्ष में बिना द्रव्य खर्च किये ही चार हजार अस्त्र एकत्र हो जायँगे। इस प्रकार दो तीन वर्ष में मैं युद्ध क्षेत्र में उतरने योग्य हो जाऊँगा। इसलिए उन्होंने सोच-समझ कर यह आज्ञा निकाली कि अब से जो दर्शक द्रव्य या अशर्फी के स्थान में तलवार, पेचकस या गोली बारूद लावेगा या गुरु का सिपाही बनना स्वीकार करेगा उस पर गुरु साहब की विशेष कृपा होगी। भेंट में उन्होंने हाथी, घोड़े और खच्चर आदि लेना भी स्वीकार किया। आपकी यह आज्ञा शिष्यमंडली में बिजली की भाँति फैल गयी। चारों ओर से हथियार और हाथी-घोड़ों का भेंट आने लगा, सैनिक भर्ती होने लगे। नियमित रूप से सिपाहियों और सवारों की कवायद आरंभ हो गई।

ई भी शिष्य बिना हथियार की भेंट लिए खाली न
ता। गुरू साहब अपने हाथ में उस हथियार को लेते
ौर उसकी तारीफ़ करते। अट्ठारह के ऊपर और पचास
भीतर के जितने शिष्य आते उनसे ये ऐसे प्रेमपूर्वक
मिलते कि वे उन्हीं के पास रह जाते और अपने भाई
ंधु और परिवार को भूल जाते। गुरुजी अपने सैनिकों के
सामने भीम, अर्जुन, रामचंद्र, कृष्ण आदि की कथा सुन
कर ओजस्विनी भाषा में उपदेश देते थे। दधीच, शिवि
और हरिश्चंद्र आदि का दृष्टांत देकर वे अपने शिष्यों के
चित्त को ऐसे मोह लेते थे कि वे अपने गुरु साहब पर
तन, मन, धन सब कुछ न्यौछावर करने पर तैयार हो
जाते थे। मधुर भाषण ही तो वशीकरण मंत्र है।

जब गुरु साहब ने देखा कि कार्य आरंभ का
समय आ गया तो बादशाही ठाट से रहने लगे और
उन्होंने हिन्दू-प्रजा मात्र के धर्मरक्षक की पदवी धारण
की। हिन्दू जाति ने, जो आज तक दबी हुई थी, सिर उठाया
और अपने गुरुसाहब को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। लोगों
की नींद टूट गई और वे अपने अधिकार प्राप्त करने
की चेष्टा करने लगे। गुरु गोविन्दसिंह की शक्ति के सामने
औरंगजेब की शक्ति उन्हें फीकी मालूम होने लगी। भारत
वर्ष में एक नई जागृति फैल गई और बच्चा-बच्चा अपनी
खोई थाती को खोजने लगा।

वैसाखी उत्सव पर बलखारे और कंधार के शिष्यों ने दुनीचंद के हाथ एक ऊनी शामियान भेजा, जिसकी समता शाही दरबार में कोई भी शिविर नहीं कर सकता था। कामरूप का राजा रतनराय, जो गुरु तेगबहादुर के शिष्य का लड़का था, गुरू साहब के आशीर्वाद से पैदा हुआ था, दीवाली के दिन गुरू साहब का दर्शन करने आया था। उसने गुरू साहब को एक सफेद मस्तक का हाथी भेंट किया, जिसका नाम 'परशादी' था।

गुरू गोविन्दसिंह के समय में मनसदों की दशा बहुत शोचनीय हो गई थी। वे गुरू के प्रताप से ही प्रतिष्ठित हुए थे। किंतु वे अपने अधिकारों का बुरा प्रयोग करके अपनी प्रजा पर मनमाना जुल्म करते थे। किन्तु किसी को यह साहस न होता था कि गुरुदेव के सामने किसी मनसद की शिकायत करे। एक दिन अवसर पाकर भाँड़ों ने मनसदों की बुराई का चित्र दबार में खींचा। एक मनसद एक वेश्या को लेकर अपने शिष्य के यहाँ गया और बड़ी निर्लज्जता से व्यवहार किया। यही दृश्य गुरू साहब के सामने दिखाया गया। यह देखकर गुरू साहब की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। उनका धार्मिक और न्यायशील हृदय काँपने लगा। उन्होंने शीघ्र सभा भंग की और दूतों को भेजकर सारे मनसदों को लोहे की जंजीरों में बँधवा मँगाया। किसी को जेलखाने की सजा मिली, किसी को

कोड़े लगाये गये, किसी का लूटा हुआ धन उचित स्वामी को लौटा दिया और जो निर्दोष थे उन्हें छोड़ दिया गया। उसी दिन से मनसद-प्रथा का अन्त हो गया।

संवत् १७४१ विक्रमी में नाहन का राजा मेदनी प्रकाश गुरुजी का दर्शन करने के लिए आया। उसने बहुत से रत्न भेंट किये और गुरू साहब से अपनी राजधानी तक चलने का बहुत आग्रह किया। दोनों आदमियों को शिकार का बड़ा शौक था। दोनों में आपस में प्रीति यहाँ तक बढ़ी कि गुरू साहब उसी के राज्य में पाँवटा नामक एक नगर बसाकर वहीं अपने बाल बच्चों समेत रहने लगे।

गुरूजी की कीर्ति और ज्ञान-चर्चा की प्रशंसा सुन कर बुद्धू शाह नाम का एक फकीर इनसे मिलने आया। परस्पर आत्मविद्या, वेदान्तशास्त्र आदि गूढ़ विषयों पर बातचीत होने के कारण वह बहुत प्रसन्न हुआ। बुद्धू-शाह के कहने से गुरूजी ने उनके मित्र पाँच पाठन सर-दारों को, जो बादशाह के बागी थे, पाँच सौ सवारों सहित अपने यहाँ नौकर रख लिया। क्योंकि इन्हें युद्ध करने के लिए ऐसे लोगों की आवश्यकता थी जो बहादुर थे और बादशाह से शत्रुता रखते थे।

उस समय सिक्ख लोग हिन्दुओं से अलग समझे जाते थे, क्योंकि ये लोग उस समय पुरोहिती पंजों से कुछ अलग थे। किन्तु अनेकों चाल-ढाल, रीत-रिवाज उनमें

हिन्दुओं के से ही बने हुए थे, ब्राह्मणों का अत्याचार उनसे नहीं देखा गया। वे किसी तरह सिक्ख हिन्दुओं को ब्राह्मणों के पंजों से अलग करना चाहते थे।

गुरू साहब का यह नियम था कि नित्य संध्या समय पं० कालिदास से महाभारत और रामायण की कथा सुना करते थे। जब रामचन्द्र की पितृभक्ति, भरत का भाई पर प्रेम, भीष्म के बालब्रह्मचर्य, युधिष्ठिर की सत्यता और अर्जुन तथा भीम की वीरता का वर्णन आता तो गुरूजी वाह-वाह कह उठते थे। एक दिन पंडितजी ने गुरूजी से काली की हवन पूजा करके वर प्राप्त करने की सलाह दी। जिससे उनके सारे मनोरथ सिद्ध हो सकते थे। गुरूजी ऐसे बिना सिर-पैर की बातों से घृणा करते थे। वे धर्मान्ध थे। किन्तु अपने शिष्यों को पक्का बनाने और उनके अन्धकार को दूर करने के लिए उन्होंने पंडितजी की बात मान ली और पंडितों के कथनानुसार दो लाख रुपये काली का अनुष्ठान करने के लिए दे दिया। पंडितों ने उन्हें विश्वास दिलाया कि यज्ञ समाप्त होने पर काली अवश्य प्रकट होंगीं। हवन का कार्य्य बड़े धूम-धाम से आरम्भ हुआ और पं० कालिदास प्रधान पुरोहित बने। हवन करते-करते कई सप्ताह बीत गये, हवन समाप्त भी हो गया, किन्तु काली प्रकट न हुईं। तब तो गुरूजी ने पुरोहित से कहा कि आप का कहना असत्य

हुआ। पुरोहितजी को एक उपाय सूझी। उन्होंने उत्तर दिया कि महाराज यदि इस अवसर पर किसी धार्मिक पुरुष का बलिदान किया जाय तो काली अवश्य प्रगट होंगी। गुरूजी तो उडती चिड़िया को हल्दी लगाने वाले थे। पुराहितजी के छल को समझ गये। उन्होंने उत्तर दिया कि पुरोहितजी, आपसे बढ़कर धार्मिक पुरुष मिलना कठिन है। अतः मैं आपही को काली की भेंट करूँगा। गुरूजी की बात सुनकर पुरोहित जी के प्राण-पखेरू उड़ गये। वे अपनी मृत्यु निकट देख जो कुछ हाथ लगा लेकर रात को वहाँ से चल दिये।

दूसरे दिन वीर गुरू गोविन्दसिंह ने उसे तलाश किया किन्तु उसका कहीं पता न चला। गुरूजी ने अपने शिष्यों को इस प्रकार की झूठी बातों पर विश्वास न करने की शिक्षा दी और सायंकाल बचे हुए हवन और घृत को एक साथ ही आग में डाल दिया। आग भभक उठी और बड़े जोर की ज्वाला चारों ओर फैल गई। पहाड़ी ग्रामों के निवासियों ने समझा कि काली प्रकट हो गई और गुरूजी के पास सब दौड़ पड़े। सवेरा होते ही सहस्त्रों हिन्दुओं और सिक्खों की जमात इकट्ठी हो गई। गुरूजी ने उन्हें सारा हाल कह सुनाया और उनकी धर्मान्धता को दूर किया। गुरूजी हिन्दुओं के अन्धविश्वास से बहुत दुखी हुए और हँसना-बोलना, खेलना-कूदना सब

कर एकान्त में ईश्वरोपासना करने लगे।

इस समय गुरूजी को ईश्वर की कृपा से एक बात सूझी। वे अपने डेरे से एक नंगी तलवार हाथ में लेकर बाहर निकले। लोगों ने समझा कि यही तलवार गुरूजी ने काली से प्राप्त की है। गुरूजी ने तलवार को दिखाकर लोगों से कहा, "देखो, यहाँ सच्ची काली प्रगट हुई हैं। कहो, तुममें से कितने आदमी देश और जाति के लिए बलि चढ़ने को तैयार हैं।" सारी शिष्य मंडली ने चुप्पी साध ली। सब के चेहरे फक पड़ गये और किसी की जबान से आवाज न निकली। गुरूजी ने दुबारा यही प्रश्न किया। इस बार दयाराम नामक एक वीर क्षत्रिय ने अपना शीश चढ़ाना स्वीकार किया। गुरूजी ने उसे डेरे के भीतर ले जाकर बैठा दिया और एक बकरे को अपनी तलवार से ऐसे जोर से काटा कि उसकी आवाज डेरे के बाहर तक सुनाई दी और खून की धार डेरे के बाहर बह चली। गुरूजी ने बाहर निकलकर फिर वही प्रश्न किया। इस बार धर्मा जाट ने भेंट चढ़ना स्वीकार किया और उसकी भी वही दशा हुई। इधर निकाले हुए मसनदाधीसों ने गुरूजी की माता के पास जाकर यह सूचना दी कि गुरूजी पागल हो गये हैं, उन्होंने दो मनुष्यों को काट डाला है और न मालूम और कितनों के प्राण लेंगे। माताजी के दूत के आने के पहले ही गुरूजी इस क्रिया को तीन बार और

र चुके थे। हिम्मत कहार, सहेश नापित और मोहकम छीपी ने अपना-अपना प्राण न्यौछावर करना स्वीकार किया था और उनकी भी वही दशा हुई थी।

थोड़ी देर बाद वे पांचों व्यक्ति नवीन वस्त्र धारण किये हुए डेरे के बाहर निकले। उनको देखते ही सब लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे लोग समझते थे कि वे पाँचों मर चुके। गुरूजी ने पुकारकर कहा, देखो, यही हमारे प्रिय शिष्य हैं। हमें ऐसे ही वीरों की आवश्यकता है। ये पाँचों वीर सिक्खों में शिरोमणि हैं। उनके नाम सिक्ख इतिहास में सुनहले अक्षरों में लिखे हैं। गुरुदेव समझते थे कि हमारे सिक्खों में ऐसे बहुत हैं जो प्राण देने के लिए तैयार हैं। उन्होंने जब अपने शिष्यों से पूछा, 'क्या हमारे साथ हमारे सिक्ख हैं?' तो सारी जनता उत्तर में बोल उठी, 'सत श्री अखिल।' तत्पश्चात् गुरूजी ने एक लोहे के कड़ाह में शर्बत बनवाया और उन पाँचों शिष्यों को पाँच-पाँच चुल्लू पिलाया और पाँच बार इसी का उनकी आँखों, केशों पर छींटा मारा। फिर उसी कड़ाही में कड़ाह प्रसाद (हलुआ) तैयार कराकर पाँचों को भोजन कराया। गुरूजी के आज्ञानुसार पाँचों शिष्यों ने उसी एक पात्र में प्रेमपूर्वक एक ही साथ भोजन किया। इसी प्रकार गुरूजी ने अपने शिष्यों में से जाति-पाँति, खान-पान और छुआ छूत का भेद बात की बात में उठा दिया।

फिर उन्हीं शिष्यों द्वारा 'अमृत' बनवाकर गुरुजी ने स्वयं आचमन किया और सब को पिलाया। पुनः गुरुजी ने अपने शिष्यों के लिए इक्कीस नियम बनाये और सबों से उनका पालन करने के लिए प्रतिज्ञा कराई। इस प्रकार गुरुजी ने सिक्खों का नवीन संस्कार किया, जिससे सिक्खों में काफी यश कमाया। उस समय सिक्खों ने हिन्दू-धर्म रक्षा के लिए जो कार्य किये उनके लिए हिन्दू जनता सदैव ऋणी रहेगी।

जिस देश के निवासी आपस में भेद-भाव रखते हैं, कर्म का कुछ भी विचार न कर जन्म ही के कारण ऊँचे-नीचे माने जाते हैं, उच्च वंश का दुराचारी कल्पित नीच वंश के सदाचारी, महात्मा और पंडित से अधिक माननीय समझा जाता है उस देश की जो कुछ दुर्दशा हो कम ही है। इतिहास इस सब बात का प्रमाण है कि जिस देश या जाति में ऐसे अत्याचार होंगे उसका अवश्य ही अधःपतन होगा। मुसलमानों के पराजय का कारण भी भेद-भाव और पक्षपात ही था। गुरू गोविन्दसिंह सच्चे पारखी थे। उन्होंने अपने सूक्ष्म नेत्रों ने देख लिया कि भारत में इस समय अछूत, शूद्र व अन्त्यज के नाम से समाज का एक बहुत बड़ा अंश घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। यह एक ऐसा दोष है जिसने अन्य दोषों की भाँति हिन्दुओं का जातीयता और भातृ प्रेम से शून्य

बनाकर सदा के लिए दूसरों का गुलाम, निकम्मा, स्वार्थी और देशद्रोही बना दिया है। इन्होंने इस दोष को दूर किया। अपने समुदाय का नाम खालसा अर्थात् विशुद्ध रखा, और सबको अक्षर का सिंह नहीं वरन् दिल का सिंह बनाया। जब तक इनके मत का प्रचार भारत के कोने-कोने में न होगा भारत का उद्धार होना आकाश-कुसुम ही समझा जायगा। हमारे नेताओं का ध्यान अब इस ओर आकर्षित हुआ है। वे भी अब छुआछूत के भाव को निरर्थक और विनाशकारी समझ उसके मिटाने की चेष्टा कर रहे हैं। आशा है, भारतवासियों का सितारा भी शीघ्र ही चमकेगा।

आरम्भ काल में युद्ध और धन बढ़ाना

गुरु गोविन्दसिंह ने अपने शिष्यों और आस-पास के पहाड़ी राजाओं को एकत्र कर एक सभा की और देश रक्षा के लिए तत्पर होने के लिए उनको आदेश दिया। इन पहाड़ी राजाओं ने परस्पर मिलकर एक सभा की और अपना निर्णय गुरूजी के पास कहला भेजा कि मुसलमान बादशाह आज छः सौ वर्ष से हम लोगों पर शासन कर रहे हैं। हम लोग उनसे बैर करके अपनी दुर्दशा कराना नहीं चाहते। आपको भी सावधानी से काम करना चाहिए। गुरुसाहब उनका मतलब समझ

गये और उसके पास संदेशा भेज दिया कि मेरी तो इच्छा थी कि आप लोग साधारण से साधारण चक्रवर्ती राजा हो जायँ। किन्तु आप लोग इसी दशा में ही संतुष्ट हैं तो अनंदपूर्वक रहिए। गुरुसाहब ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि अपने व्रत पर दृढ़ रहो और जब कभी रसद-पानी की आवश्यकता पड़े तो शीघ्र ही सीमा के पहाड़ी राजाओं की रियासतों से बे खटके लूट लाओ। शिष्यों ने भी उनकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। इस कारण पहाड़ी राजा, जो पहले ही से ईर्षा रखते थे, इनके शत्रु बन गये।

इन्हीं दिनों जब गुरूजी कपालमोचन के मेले से प्रचार कर लौट रहे थे तब देहरादून के बाबा रामराय के घर की एक स्त्री पंजाबकुंवरि ने इनके पास यह संदेशा भेजा—"महाराज! मेरे पतिदेव कुछ काल के लिए समाधि लगाये थे। इस पर कर्मचारियों ने मेरे मना करने पर भी उनको मुर्दा कहकर जबरदस्ती जला दिया और मेरा सब धन लूट लिया। इस समय आप मेरी सहायता करें।" गुरूजी यह समाचार पाकर ५०० सवारों सहित देहरादून पहुँचे और उन अत्याचारियों का अंग-भङ्ग करके उन्हें उचित दण्ड दिया तथा रामराय की जायदाद का प्रबन्ध एक पुरुष को सौंप कर वे वापस चले आये।

संवत् १७५२ विक्रमी में जब पोठोहार की संगत होली के मेले से लौट रही थी तब मार्ग में मुसलमानों ने उसे लूट लिया। उन्होंने आकर गुरू साहब को इसकी सूचना दी। गुरूसाहब ने उत्तर दिया, "आप लोगों के पास अस्त्र-शस्त्र नहीं है, इसी कारण आप लोगों की यह दशा हुई। आप लोग जाइये और युद्ध-विद्या को सीखने में चित्त लगाइये।" वे अपने शिष्यों को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे, इसी कारण उन्होंने तत्काल उनको कुछ सहायता न दी।

आपको स्मरण होगा कि कामरूप के राज रतनराय ने परशादी नामक एक स्वेत मस्तक का हाथी गुरूजी को भेंट किया था। यह हाथी बड़ा सुन्दर और मदमत्त था। गुरुसाहब प्रायः इसी पर सवारी किया करते थे और जो कोई दर्शक इनके पास आता था उसे यह हाथी वे अवश्य ही दिखाते थे। इस हाथी में विचित्र गुण थे। यह सूंड़ में पकड़कर मसाल दिखाता, चँवर हिलाता, तलवार चलाता, चीजें उठा लाता, जूते साफ करता, और बड़े-बड़े जंगली जानवरों को मार डालता था।

एक समय विलासपुर का राजा भीनचंद्र गुरुजी का दर्शन करने के लिए आया और उस हाथी के गुणों को देखकर उस पर मोहित हो, गुरुजी से उसे अपने लिए माँगा। गुरुजी ने साफ इन्कार कर दिया। भीमचंद्र मन

में बहुत क्रुद्ध हुआ और यथायोग्य शिष्टाचार के बाद घर वापस आया। कुछ दिनों पश्चात् उसके पुत्र का विवाहोत्सव आया। इस अवसर पर उसने गुरु साहब से हाथी मँगनी माँगी। गुरुजी चट ताड़ गये और हाथी देना अस्वीकार कर दिया। भीमचंद्र का समधी श्रीनगर का राजा फतहशाह गुरुसाहब का मित्र था। गुरुसाहब ने पाँच सौ सवारों के साथ उसके पास टीका भेजा। जब भीमचंद्र ने गुरूसाहब का टीका देखा तो वह बहुत क्रोधित हुआ और फतहशाह से कहा कि यदि आप गुरु साहब का टीका लेंगे तो मैं आपकी कन्या न ले जाऊँगा। बेचारा फतशाह क्या करता, समधी के भय से उसने टीका वापस कर दिया। गुरुसाहब के दीवान नन्दचंद ने, जो टीका लेकर गया था, इसमें अपना और गुरुसाहब का अपमान समझा और क्रुद्ध होकर बारात को लुटवा लिया। थोड़ी देर तक सिक्खों ने ऐसी धूम मचाई कि बाराती राजा बड़े क्रुद्ध और दुखित हुए, बहुतों के तो अंग भंग हो गये। जब यह समाचार गुरुजी के पास पहुँचा तो उन्होंने कहा—'बारात और शुभ कार्य में विघ्न डालना उचित नहीं है; खैर जो अकाल पुरुष की मर्जी।' भीमचंद्र आग बबूला हो गया। उसने सब बाराती राजाओं की मदद से दस हजार प्रबल सेना के साथ गुरुजी पर चढ़ाई कर दी। इन्हें गुरुजी की शक्ति का पता न था। वे सम-

कते थे कि सहज़ ही में हम गुरुजी को परास्त कर देंगे।

उस समय गुरुजी पावटा नामक ग्राम में रहते थे। उनके पास इस अवसर पर केवल दो हजार सेना थी। गुरुजी ने भिनगादी नामक ग्राम पर उनका सामना किया, शत्रुदल के बहुत से वीर मारे गये। रात को जब लड़ाई बन्द हुई तो राजा लोग गुरुसाहब की सेना की फुर्ती, वीरता और उत्साह की प्रशंसा करने लगे। गुरु साहब की सेना में पाँच सौ नागे सवार थे जो केवल हलुआ पूड़ी के लिए गुरुजी की जय मनाया करते थे। वे मृत्यु के भय से अँधेरे में एक दो करके चल दिये। गुरुजी को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने इसकी कुछ भी परवाह न की और दूसरे दिन की लड़ाई के लिए तैयार रहने का हुक्म दिया। जब यह समाचार उन पाँचों पठान सरदारों को मिला जिन्हें गुरुजी ने बुद्धू शाह के कहने से नौकर रख लिया था, तो वे गुरुजी की सेना को अल्प समझ, माल-असबाब लूटने के लालच से अपने सवारों सहित शत्रुदल में जा मिले। गुरू साहब ने इन विश्वासघातियों का हाल बुद्धू शाह के पास उसी वक्त भेज दिया।

दोनों सेनाओं में युद्ध आरम्भ हुआ। इसी अवसर पर बुद्धू शाह सहसा दो हजार सिपाहियों सहित गुरुजी की सहायता करने के लिए आ पहुँचा। इससे सिक्खों का उत्साह चौगुना बढ़ गया और उन्होंने हजारों शत्रुओं

को मार गिराया। आज भी संध्या समय युद्ध बंद हुआ। तीसरे दिन गुरुजी ने अपने सवारों को मुर्चे पर खड़ा किया और चुन चुनकर शत्रु सरदारों पर तीर छोड़ने का परामर्श दिया। इस दिन गुरुजी को भी कुछ चोट आई; किन्तु लड़ाई में उन्हीं की विजय रही। शत्रु-दल भाग निकला। सिक्खों ने बहुत दूर तक उनका पीछा किया और बहुत-सा माल-असबाब उनके हाथ लगा। गुरुजी के भी बहुत से सैनिक मारे गये। बुद्धूशाह का पुत्र भी लड़ाई में काम आया। गुरुजी ने बुद्धूशाह को गले लगाया और अपनी आधी पगड़ी और एक बहुमूल्य काश्मीरी दुशाला उसे प्रदान किया। जो पांच सौ नागे युद्ध के आरम्भ में भाग गये थे उन्हीं में का एक महन्त कृपालदास अपने पाँच शिष्यों सहित सर्वदा गुरुजी के साथ डटा रहा। गुरुजी ने उसकी बहादुरी की प्रशंसा की और अपनी आधी पगड़ी उसे समर्पित कर दी।

जब पहाड़ी राजाओं को परास्त कर गुरुसाहब आनंदपुर आये तो उनकी माता ने पँवटा में रहना सुरक्षित न समझकर उन्हें आनन्दपुर में ही रहने के लिए सलाह दी। गुरुजी अपनी माता की आज्ञा न टाल सके और फिर आनन्दपुर ही में अपने परिवार सहित रहने लगे। यहीं पर एक सिक्ख खत्री ने अपनी कन्या सुन्दरी जी का डोला गुरुजी को अर्पण किया। गुरुजी ने उसे

आदर स्वीकार किया और आषाढ़ सुदी ७, संवत् १७४२ वि० को इनका दूसरा विवाह बड़े समारोह के साथ हुआ। एक वर्ष बाद इस स्त्री के गर्भ से उन्हें एक तेजस्वी सन्तान उत्पन्न हुई जिसका नाम अजीत सिंह रखा गया। गृहस्थी के सुख में पड़ कर भी गुरुजी ने अपने कर्तव्य को नहीं छोड़ा। वे बड़े उत्साह और आनन्द के साथ अपना सैनिक बल बढ़ाने लगे। नये नये भेंट फिर आने लगे। गुरुजी ने लोहगढ़, फतहगढ़, फूलगढ़ और आनंद गढ़ नामक चार किले शीघ्र ही तैयार करा दिये। अब गुरुजी ने शाही ठाट धारण किया और दुष्टों का दमन और संतों का पालन करने लगे। अपने इलाके के चोर, डाकू, दुष्ट और लुटेरों को पकड़कर उन्हें इतना दंड दिया कि वे या तो सीधे मार्ग पर आ गये या देश छोड़ चले गये। चारों ओर शान्ति का राज्य स्थापित हो गया और सब लोग उन्हें राजा मानने और हिन्दू धर्म का रक्षक समझने लगे। माघ सुदी ७, सं० १७४७ वि० को सुन्दरी जी के गर्भ से दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम धीरसिंह रखा गया।

गुरु गोविन्दसिंह की उन्नति, विजय, शक्ति और अद्भुत रणकुशलता को देखकर सब पहाड़ी राजा डर गये थे। उन्होंने गुरुजी से मित्रता करने का संदेशा भेजा गुरुसाहब स्वदेशी राजाओं से विरोध करना उचित न

समझते थे। उन्होंने भीमचंद्र आदि की मित्रता के संदेश को सादर स्वीकार किया। उनकी दिली ख्वाहिश आपस की फूट को मिटाकर मेल कायम करने की थी, जिससे मुसलमान हिन्दुओं पर अत्याचार न कर सकें। गुरु साहब ने इनसे मित्रता तो कर ली पर इन राजाओं का दिल अभी साफ़ न था। इन्होंने गुरुजी की सहायता पाकर नियमित बादशाही कर देना बन्द तो कर दिया पर भीतर ही भीतर ये इस घात में थे कि अवसर पाकर गुरुजी को नीचा दिखावें। गुरुजी इसकी कुछ भी चिन्ता न कर सदैव देशहित में रत रहते थे। इस समय दूर-दूर के देश को भी हिन्दू प्रजा मुगल बादशाह की कुछ भी चिन्ता न करके इन्हीं को अपना राजा मानने लगी थी।

इस समय मुगल सम्राट दक्खिन में मरहठों से युद्ध कर रहा था। उसकी घातक नीति ने उसके राज की जड़ को कमजोर कर दिया था। हिन्दू तो उसके प्राण के प्यासे थे। दक्षिण में वीर शिवाजी, राजपूताने में राजा राजसिंह ने इसका नाकों दम कर रखा था। इधर पंजाब में गुरु गोविन्दसिंह से भी लोहा लेने की बारी आई। जब उसे गोलकुंडा के युद्ध से अवकाश मिला और उसे यह ज्ञात हुआ कि पहाड़ी राजाओं ने कर देना बन्द कर दिया है तो उसने मियाँ खाँ, अलफखाँ और जुलफिकार खाँ नामक सरदारों की अधीनता में थोडी-सी सेना पहाड़ी

राजाओं को दमन करने और उनसे लगान वसूल करने के लिए भेजी। सरदार मियाँ खाँ ने जंबू पर और अलफ खाँ और जुलफिकार खाँ ने नाहन, कहलूर, नालागढ़ और चंग के राजाओं पर चढ़ाई कर दी और उन्हें ऐसा तंग किया कि वे त्राहि-त्राहि करने लगे। दो पहाड़ी राजा कृपालचन्द कजौठिया और दयालचन्द मुसलमानों से मिल गये। किन्तु यह भारत के इतिहास में कोई नई बात नहीं थी। घर की फूट के कारण मुगलों ने पहाड़ी राजाओं का सत्यानाश कर दिया।

लाचार हो इन लोगों ने पाँच हजार रुपये भेंट देकर गुरुजी से सहायता माँगी। गुरुजी ने उन्हें धैर्य दिया और पाँच सौ सिक्ख सवार उनकी मदद करने के लिए भेज दिये। इन सवारों के सामने मुसलमानी सेना न अड़ सकी और भाग निकली। सिक्खों ने बहुत दूर तक उनका पीछा किया। पर इसी समय हनगढ़ तथा हरिपुर के राजा मुसलमानों से जा मिले। उनकी सहायता पाकर मुसलमान फिर लौटे और घमासान युद्ध फिर आरंभ होगया। अब की बार राजा दयालचन्द हाथ जोड़ गुरुजी के पास गये। और उन्हें भी युद्धक्षेत्र में ला-उपस्थित किया। गुरुजी को देखते ही सिक्खों में नवीन उत्साह आ गया। गुरुजी की तीरंदाजी और गोलों के बौछार के सामने मुसलमान न ठहर सके और वहाँ से भाग निकले।

गुरुसाहब युद्ध में विजय प्राप्त कर आलसौना ग्राम को लूटते हुए आनन्दपुर को लौट आये। मुगलों की हार का समाचार सुनकर लाहौर का बादशाही सुबेदार दिलावर खाँ बहुत क्रोधित हुआ और संवत् १७४५ के भादों मास में एक नवीन सेना लेकर पहाड़ी राजाओं पर चढ़ाई कर दी। उसने अपने पुत्र रुस्तम खाँ को एक भारी सेना के साथ गुरुजी पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। रुस्तम खाँ ने आनन्दपुर को घेर लिया। दिन भर की लड़ाई के बाद रात को मुगल सेना एक नदी के किनारे विश्राम करने लगी। रात को जब सारी सेना सो रही थी तो उस पहाड़ी नदी में ऐसी बाढ़ आई कि सारी मुगल सेना बह गई। सवेरे उठने पर सिक्खों ने देखा कि नदी वेग से बह रही है और शत्रुओं का कहीं पता भी नहीं है। उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद दिया और नाले का नाम हिमायती नाला रख दिया।

रुस्तम खाँ किसी प्रकार नदी से निकलकर मार्ग के गाँवों को लूटते हुए वापस लौट गया। जब दिलावर खाँ को यह समाचार मिला तो उसने गुलामहसन खाँ को एक नई सेना देकर रुस्तम खाँ के साथ गुरु साहब पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। उसने पहले पहाड़ी राजाओं पर चढ़ाई की और राजमण्डी और काहनगढ़ के राजाओं को परास्त कर शेष कर वसूल किया। इसके बाद वह कह-

लूर और गुलेरी के राजा की ओर बढ़ा। गुलेरी के राजा ने भयभीत होकर गुरुजी से सहायता के लिए प्रार्थना की। इन्होंने भाई संगीता की अधीनता में तीन सौ सवार उसकी सहायता के लिए भेजे। सिक्खों की सहायता से राजा गोपालसिंह गुलेरी ने तीन दिन तक घमासान युद्ध किया। रुस्तम खाँ के कई सर्दार और चार सौ सिपाही मारे गये और वह पीठ दिखाकर भाग गया। राजा गोपाल सिंह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बहुत सी भेंट देकर गुरु जी के प्रति कृतज्ञता प्रगट की।

पर दिलावर खाँ कब-मानने वाला था। उसने फिर सं० १७४५ वि० गुरु जी पर चढ़ाई की। बहलात नामक ग्राम के समीप युद्ध हुआ। किन्तु फिर भी मुगलों को हार मान कर भागना पड़ा। अनेक बार पराजित होने के कारण दिलावर खाँ ने सारा समाचार औरंगजेब के पास लिख भेजा। मुगल सम्राट बहुत नाराज हुआ और उसने विद्रोहियों का दमन करने के लिए एक बड़ी भारी सेना शाहजादा मुअज्जम के साथ भेजी। मुअज्जम स्वयं तो लाहौर की ओर चला गया। किंतु तीन सर्दारों को पहाड़ी राजाओं से लड़ने के लिए भेजा। इन सर्दार ने आते ही इन राजाओं की बड़ी दुर्दशा की। उनके मकान और किले नष्ट कर दिये, धन लूट लिये और गावों में आग लगा दी। कई राजाओं को दाढ़ी मूँछ मुड़वा कर गधे पर

सवार करा कर गांवों में फिराया। सारे राजा भय से कांपने लगे।

इन राजाओं की मदद करने के अपराध में एक मुगल सरदार गुरू साहब को दण्ड देने के लिए भेजा गया। उसने आनन्दपुर को आ घेरा। गुरूजी के पास इस समय बहुत थोड़ी सेना थी। वे इस समय मुगलों का सामना करना उचित न समझ किले में बैठे रहे। जब रात को चारों ओर अँधेरा हो गया, तो उन्होंने अपनी सेना सहित बाहर निकल कर अकस्मात् मुगल सेन पर छापा मारा। बहुत से दुश्मन मारे गये, बहुत रं घायल हुए, शेष ने भागकर अपनी जान बचाई। उनक बहुत-सा माल-असबाब सिक्खों के हाथ लगा। सिक्ख ने आठ कोस तक मुगलों का पीछा किया और उन्हें परा जित करके वापस लौट आये।

शाहजादा मुअज्जम इस हार का बदला लेने वे लिए फिर तैयारी करने लगा। इसी समय मुन्शीलाल मुलतानी ने, जो गुरुजी का पुराना शिष्य और भक्त था हाथ जोड़कर शाहजादे से प्रार्थना की कि महाराज गोविन्दसिंह एक साधारण फकीर है। उसके साथ मुगल सेना का युद्ध करना उचित नहीं। यदि वह हार गया तो लँगोटी पहन कर जंगल में चला जायगा। यदि कहीं आपकी हार हुई तो बदनामी का टीका लगाना पड़ेगा।

अतः उससे छेड़छाड़ न करने में ही भलाई है। शाहजादे ने उसकी बात मान ली और कहा, "अगर वह भविष्य ने शांतिपूर्वक रहना स्वीकार करे तो मैं उसका सब अपराध क्षमा कर सकता हूँ।" इसी मुन्शी के द्वारा संधि की बातचीत चल रही थी कि बीच में एक नई आफत आ खड़ी हुई।

इधर तो गुरूजी और शाहजादे में प्रेम का पत्र व्यवहार चल रहा था उधर पहाड़ी राजाओं ने अवसर-पाकर गुरूजी पर चढ़ाई करने की तैयारी की। वे यह नहीं देख सकते थे कि एक मामूली सिक्ख इतना प्रबल हो जाय कि अवसर पड़ने पर उन्हें भी उससे सहायता के लिए प्रार्थना करनी पड़े। शाहजादे और गुरूजी के बीच पत्र-व्यवहार होने में भी वे अपनी मानहानि समझते थे। इन राजाओं में से बहुतों को गुरूजी ने समय-समय पर सहायता भी दी थी। उन्होंने सिक्खों के द्वारा लूट-मार होने का बहाना करके गुरूजी पर चढ़ाई कर दी। गुरूजी इनकी कृतघ्नता पर बड़े दुखी हुए। इन राजाओं में अजमेरचंद विलासपुरिया मुख्य था। इसने आनन्दपुर का किला चारों ओर से घेर लिया। गुरूजी ससैन्य किले में बैठे रहे। और किले के भीतर से ही तोपों और बन्दूकों से गोली बरसाते रहे। जब रात हुई और थकी हुई राजाओं की सेना सो गई तो गुरूजी बाहर निकले और एकाएक अनेक शत्रुओं को

तलवार के घाट उतार करके फिर किले में घुस गये। इसी प्रकार युद्ध जारी रहा। एक दिन राजाओं ने एक मतवाले हाथी को शराब पिला, सिर पर एक लोहे का बड़ा तावा बाँध और सूँड़ में तलवार पकड़वाकर किले का फाटक तोड़ने के लिए भेज दिया। गुरूजी ने अपने एक शिष्य विचित्रसिंह को हाथी से सामना करने की आज्ञा दी। उसने हाथी के सामने आकर ऐसी बर्छी मारी कि वह तावे को बेध कर हाथी के मस्तक में घुस गई। हाथी राजाओं की सेना को रौंदता हुआ पीछे भागा। गुरूजी ने गढ़ से बाहर निकलकर शत्रुदल पर हमला कर दिया। बहुत से सैनिक सिक्खों के हाथ से मारे गये। जब राजाओं की सेनाओं ने उन्हें घेरना चाहा चाहा तो वे फिर किले में घुस गये।

इस बार राजाओं ने एक आटे की गौ बनवाकर उसके गले में एक पत्र बांध दिया कि आपको इसी गौ की कसम है यदि आप किला छोड़कर बाहर न निकल आवें। गुरूजी अपनी माता के विशेष आग्रह से किला छोड़कर बाहर निकले और शत्रुदल को पराजित करते हुए कर्त्तारपुर पहुँच गये। राजाओं ने तंग आकर बादशाही सूबा सरहिंद के नवाब से सहायता माँगी। उसने बीस हजार रुपया युद्ध व्यय लेकर तीन हजार सुशिक्षित सेना अनुभवी सरदारों के साथ गुरूजी पर चढ़ाई करने

के लिए भेज दी। संवत् १७५८ वि० के अगहन महीने में कर्त्तारपुर में घमासान युद्ध हुआ। गुरुजी किले के भीतर से ही लड़ रहे थे। एक दिन जब गुरुजी एक बुर्ज पर बैठे साफा बाँध रहे थे तो राजा अजमेरचंद से गोलन्दाज को बुलाकर गुरुसाहब को गोले का निशाना बनाने की आज्ञा दी। किन्तु निशाना चूक गया। गोला चँवर हिलाने वाले सेवक के लगा और वह मर गया। गुरुजी का बाल भी बाँका न हुआ। जब रात हुआ तो गुरुजी इस किले को सुरक्षित न समझकर रातोरात आनन्दगढ़ में आ गये। शत्रुओं ने इस किले को भी आ घेरा। गुरुजी ने उनका सामना किया और उन्हें चार कोस तक पीछे हटा दिया। किन्तु अन्त में इन्हें लौट कर किले में शरण लेनी पड़ी। मुगल सेना कई दिनों तक किले को घेरे रही। सिक्ख मुट्ठी भर चने चबाकर मोरचे पर डटे रहे। जब सब रसद समाप्त हो चुकी तो सिक्खों ने एक दो दिन तक केवल पानी पर व्यतीत किया। गुरुजी ने किले में बन्द रहकर सिक्खों का मरना उचित न समझा और फाटक खोलकर अपनी सेना को व्यूहबद्ध करके लड़ते-लड़ते बसूली नामक ग्राम में पहुँच गये।

उनके हाथ की सफाई के सामने मुगलों की कुछ भी दाल न गली। बसूली का राजा गुरुजी का मित्र था। उसने गुरुजी की बड़ी आवभगत की। एक दिन आखेट

करते समय जंबु के राजा से गुरुजी की भेंट हो गई। वह इन्हें अपने यहाँ ले गया। यहाँ पर गुरु ने अपने शिष्यों और अनुयाइयों की एक सभा की। गुरूजी ने उनका उचित सम्मान करके एक दो नली बंदूक उठाई और शिष्यों से कहा की क्या कोई ऐसा वीर है जो आप लक्ष्य बनकर इसकी शक्ति की परीक्षा करे। ज्योंही गुरुजी के मुख से ये शब्द निकले त्योंही सब के सब सिक्ख खड़े होकर लक्ष्य बनने की इच्छा प्रकट करने लगे। गुरुजी इनकी शक्ति और श्रद्धा देखकर बहुत संतुष्ट हुए और अन्य राजाओं के उपस्थित गुप्तचर दाँतों तले उँगली दबाने लगे। जिसके सैनिक इस प्रकार जान की बाजी खेलने पर उद्यत हों, विजय क्यों न उसकी दासी बने! दरबार विसर्जित हुआ और फिर से युद्ध की तैयारी होने लगी। गुरूजी वहाँ से चलकर मार्ग में कलमीठा के राजा को युद्ध का मजा चखाते हुए फिर आनन्दपुर में आ विराजे।

सं० १६५६ विक्रमी में सूर्य-ग्रहण के अवसर पर गुरुजी कुरुक्षेत्र पहुंचे और वहाँ पर हिन्दुओं को उपदेश देते रहे। वहाँ से लौटते समय दो सहस्त्र बादशाही सेना से सिक्खों की मुठभेड़ हो गई। अंत में मुगलों को मैदान छोड़ अपना मार्ग लेना पड़ा। गुरुजी आनन्दपुर पहुँचे और किले की मरम्मत कराकर वहीं रहने लगे। इसी

अवसर पर काबुल का एक खत्री गुरुजी का दर्शन करने के लिए आया और उसने पचास अच्छे-अच्छे शूरवीर पठान गुरुजी को भेंट किये। गुरूजी उन्हें यथायोग्य स्थान पर नियुक्त करके आनन्दपूर्वक रहने लगे।

जब पहाड़ी राजा भीमचंद और अजमेरचंद ने यह समाचार सुना कि गोविन्दसिंह बड़ी धूमधाम से युद्ध की तैयारी कर रहे हैं तो वे क्रोध के मारे आगबबूला हो उठे। जब उनसे कुछ न बना तो उन्होंने औरंगजेब के पास पत्र लिखकर गुरूजी की शिकायत की और आप भी अन्य पहाड़ी राजाओं सहित मुगल सम्राट के सामने उपस्थित हो सारा हाल कह सुनाया। बादशाह सिक्खों की बढ़ती हुई शक्ति का समाचार सुनकर बहुत हताश हुआ और उसी समय सरहिंद के सूबेदार को गोविन्दसिंह को पकड़कर शाही दरबार में भेज देने की आज्ञा लिख भेजी। सरहिंद के सूबेदार ने यह आज्ञा-पत्र पाते ही पहाड़ी राजाओं के साथ सेना लेकर आनन्दपुर को घेर लिया। सिक्खों को भी इसकी खबर लग गई थी। वे भी युद्ध का स्वागत करने के लिए तैयार बैठे थे। कई दिनों तक युद्ध होता रहा। गुरू गोविन्दसिंह की सेना में कई पठान भी नौकर थे। इस अवसर पर उन्होंने अपने रण-कौशल से गुरूजी को मुग्ध कर दिया। अन्त में मुगलों को हार हुई। अजमेरचंद घायल हो

गया और उसका दीवान भी मारा गया।

जब इस हार का समाचार औरङ्गजेब के पास पहुँचा तो वह लज्जा और क्रोध के मारे काँपने लगा। उसने तुरन्त लाहौर और काश्मीर के सूबेदारों के पास गोविन्द-सिंह का सिर काटकर भेजने के लिए आज्ञा भेजी। फिर क्या था? लाहौर और काश्मीर दोनों सूबों की पचास हजार सेना ने बात की बात में आनन्दगढ़ को आ घेरा।

गुरूजी भी युद्ध के लिए तैयारी कर चुके थे। इस समय आठ हजार वेतन भोगी सेना और दस हजार वीर सिक्ख देश और धर्म के नाम पर प्राण न्योछावर करने के लिए तैयार थे। उन्होंने अन्य किलों की रक्षा का उचित प्रबन्ध कर दिया और कुछ सेना को किले से बाहर छिपे रहना भी मुनासिब समझा, जिससे अवसर आने पर दोनों ओर से छापा मारकर शत्रु को घेर ले। उन्होंने दो हजार सिक्ख जवानों के साथ अपने बड़े पुत्र अजीतसिंह को शेरगढ़ के किले में, नाहनसिंह और शेरसिंह को एक हजार सेना देकर लोहगढ़ के किले में, अलमसिंह और संगतसिंह को तीन सहस्त्र सेना के साथ दमदमे के किले में तथा उदयसिंह और ईश्वरीयसिंह को एक हजार सेना सहित आगमपुर के किले में तैनात किया। उन्हें आदेश दिया कि जब अवसर देखना मुगल सेना पर पीछे से टूट पड़ना। शेष सेना और अपने चारों पुत्रों सहित गुरूजी

आनंदपुरा के किले में जमे रहे।

जब बादशाही सेना बढ़ती हुई गोली की मार के बीच पहुँच गई तो गुरु साहब ने अपनी सत्तर तोपों को छोड़ने की आज्ञा दी। इन लोगों की मार से मुगल सेना का एक भाग उड़कर लापता हो गया। मुगलों ने भी अपने तोपखाने को आगे कर के गोलों की वर्षा आरंभ की। किन्तु सिक्ख किलों के भीतर से लड़ रहे थे इसलिए हानि न हुई। मुगलों की बहुत-सी सेना मारी गई। तीसरे दिन सन्ध्या समय जब बादशाही सेना थककर युद्ध बन्द करने का मार्ग देख रही थी उसी समय अजीतसिंह ने दो हजार जवानों के साथ शेरगढ़ के किले से बाहर निकलकर पीछे से मुगलों पर धावा बोल दिया। ज्योंही मुगल सेना अजीतसिंह का सामना करने के लिए मुड़ी, गुरु गोविन्दसिंह अपने पाँच हजार वीरों के साथ बादशाही सेना पर टूट पड़े। अँधेरी रात में मुगल शत्रु-मित्र की कुछ भी पहचान न कर सके और आपस ही में कट मरे। इसी गड़बड़ी में मुगल सेना का सिपहसालार दिलगीर खाँ भी मारा गया। मुगलों ने भागकर जान बचाई। सिक्खों ने तीन कोस तक उनका पीछा किया और फिर आनन्दगढ़ में वापस चले आये।

एक ऊँचे टीले पर बैठकर सरहिन्द का सूबेदार और राजा अजमेरचंद इस युद्ध का दृश्य देख रहे थे।

की हार देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन प्रातः काल मुगलों ने, जिस टीले पर सूबेदार सरहिन्द बैठा था उसी टीले से गोलों की वर्षा आरंभ कर दी। किले के अन्दर बहुत से सिक्ख मारे गये। अब तो गुरूजी ने घबड़ा कर धनुष-बाण सँभाला और मुगलों पर निशाना लगाना आरंभ किया। इनका निशाना इतना सच्चा था कि कोई वार खाली न गया, यहाँ तक कि दो कोस की दूरी पर जहाँ काशमीर और लाहौर के सूबेदार चौसर खेल रहे थे, इनके कई बाण गये। वे खेल छोड़, सेना का व्यूह रचकर आनन्दगढ़ आये। ये लोग कई दिन तक घेरा डाले रहे। गुरूजी किले के भीतर से लड़ रहे थे। एक दिन अँधेरी रात में नाहरसिंह और शेरसिंह ने लोहगढ़ के किले से बाहर निकलकर मुगलों पर आक्रमण कर दिया। उधर से गुरुजी भी अपने दलबल सहित आनन्दगढ़ से बाहर निकले और मुगलों पर टूट पड़े। मुगलों को यह भी पता न लगा कि सिक्खों के पास कितनी सेना है। वे डरकर भाग निकले। सिक्खों ने दस कोस तक मुगलों का पीछा दिया। मुगलों के बहुत से सामान सिक्खों के हाथ लगे। सूबा सरहिन्द और लाहौर गुरु गोविन्दसिंह की सेना और विजय के कारण पर विचार करने लगे। वे अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचे कि गोविन्दसिंह के पास पचास हजार सेना है और उनसे

हम लोग किसी प्रकार जीत नहीं सकते। उन्होंने इसकी सूचना औरंगजेब को दी। इस बार वह क्रोधित न होकर चिन्तित हुआ। उसने पंजाब के कुल सूबेदारों के नाम एक ही साथ आनन्दगढ़ पर चढ़ाइ करने के लिए आज्ञा-पत्र लिख भेजा। आज्ञा पाते ही सारी मुगल सेना बादलों की भाँति आनन्दगढ़ पर उमड़ आई।

यह दृश्य विचित्र था। चारों ओर उमड़ते हुए समुद्र की तरह मुगल सेना के मध्य में आनन्दगढ़ एक द्वीप की भाँति टिमटिमा रहा था। गुरुजी ने बुर्ज पर चढ़कर इस सेना को देखा और बहुत चिन्तित हुए। फिर परिणाम ईश्वर के आधीन समझ युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए। इस बार बहुत होशियारी से काम लेना था! अतः गुरुजी ने अपने गोले बारुदों का दुरुपयोग नहीं किया। तोप दागती हुई जब मुगल सेना निकट आ जाती थी तो साथ ही गोले, गोली और तीरों की वर्षा गुरुजी किले में से आरंभ कर देते थे और मुगल-सेना बहुत पीछे हट जाती थी और उनके बहुत से सैनिक मारे जाते थे। बार-बार के अनुभव से मुगल-सेना रात को भी विशेष सावधान रहती थी और वरदी पहने और हाथ में बंदूक लिये सोती थी। दिन भर के घोर परिश्रम के बाद रात को भी विश्राम नहीं मिलता था। कई सप्ताह तक इसी प्रकार युद्ध जारी रहा। मुगल अब लड़ना-भिड़ना

छोड़कर चारों ओर से किले को घेरकर बैठ गये और बाहर से रसद का किले के अंदर जाना बन्द कर दिया। आनन्दगढ़ ऐसे छोटे किले में पंद्रह-बीस हजार सेना के लिए दो सप्ताह से अधिक के लिए खाने पीने का सामान संचित करना असंभव था। रसद चुक गई और बाहर की आमदनी भी मुगलों द्वारा रोक दी गई। कई दिनों तक सिक्ख सेना ने भाजी, तरकारी और चने पर दिन बिताये, जब सब कुछ समाप्त हो गया तो वे भूखों मरने लगे। इधर मुगल भी घेरा डाले ऊब गये थे। उन्होंने गुरु गोविन्दसिंह के पास एक पत्र भेजा कि यदि आप चुपचाप निशस्त्र हो किला छोड़ दें तो हमलोग किसी प्रकार की छेड़छाड़ न करेंगे। अधिकांश सिक्ख इस पर राजी हो गये और ऐसा ही करने के लिए गुरुजी पर जोर डालने लगे। गुरुजी ने सिक्खों को समझाया कि देखो, शत्रुओं के दिल में काला है। अगर हम लोग निरस्त्र हो बाहर निकलेंगे तो वे हमें मार डालेंगे। पर सिक्खों ने कहा कि किले के अन्दर भूखों मरने की अपेक्षा युद्ध-क्षेत्र में मरना कहीं अच्छा है। हम लोग सशस्त्र बाहर निकलेंगे और लड़ते भिड़ते अपना रास्ता लेंगे। गुरुजी ने लाख समझाया किन्तु वे न माने और गुरु-शिष्य का नाता तोड़कर बहुत से सिक्ख बाहर चले गये। केवल गुरु के पचास सच्चे भक्त गुरुजी के साथ रह गये। गुरुजी ने उन्हें ढाढ़स दिया और समझाया

हम तुम्हें भूखों मरने नहीं देंगे। अतः आधी रात के
समय गुरुजी अपनी माता स्त्री, पुत्रों के साथ किले से
बाहर निकले। उन्हीं पचास वीरों से उन्होंने सूचीव्यूह
बनवा जिसके मुंह पर आप डटे रहे और बाल बच्चों को
बीच में करके सिक्खों को पीछे रखा। मुगलों ने इन्हें
भागते देखकर आक्रमण किया; किन्तु गुरु साहब ने उन्हें
अपने तीव्र बाणों से दूर ही रखा। जो सामने आता वही
तीरों का निशाना बनकर मृत्यु को प्राप्त होता था। एक
बार उन्हें मुगलों ने बिल्कुल घेर लिया। माता, स्त्री और
बच्चों से उनका साथ छूट गया। सिक्खों ने उनकी माता
और स्त्री बच्चों की रक्षा की और अपने शत्रुओं के सिर
पर से घोड़ी उछालते हुए कुछ सिखों और अपने तीनों
पुत्रों सहित चमकौड़ा नामक किले में शरण ली। इसी
किले में पाँच सौ सिक्ख सैनिक भी थे। मुगल सेना
आनन्दगढ़ में जा घुसी, किन्तु उन्हें कुछ हाथ न लगा।
तोपों को गुरु साहब ने पहले ही नष्ट करवा दिया था।
और रत्न व जवाहिरात साथ लेते गये। मुगल बड़े
परेशान हुए कि बादशाह के सामने क्या उत्तर देंगे।
मुगलों ने पता लगाते-लगाते चमकौड़ के किले को भी
आ घेरा। युद्ध आरंभ हो गया। जब थोड़े से सिक्ख
बच गये तो गुरुजी ने सोचा कि हममें से चुने हुए सैनिक
बाहर निकलकर चुन-चुनकर सेनापतियों का संहार करें।

यह सलाह हो ही रही थी कि गुरुजी का ज्येष्ठ पुत्र अजीतसिंह, जिसकी अवस्था केवल अठारह वर्ष की थी, सामने आया और हाथ जोड़कर बोला, "पिताजी, मेरी यह दिली अभिलाषा है कि एक बार मुसलमानों से दिल खोलकर लड़ूँ और उन्हें अपनी तलवार की करामात दिखाऊँ। यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपने दिल का अरमान पूरा करूँ।"

गुरुजी ने उनकी पीठ पर हाथ फेरा और कुछ जवानों के साथ उन्हें सहर्ष विदा किया। वह भूखे शेर के बच्चे की भाँति मुगलों पर टूट पड़ा और उसकी तलवार बिजली की भाँति रण-भूमि में नाचने लगी। उसने एक, दो, तीन सरदारों को बात की बात में मार डाला और चौथे पर हाथ साफ करना चाहता ही था कि एक ही साथ पाँच-सात गोलियाँ इस वीर बालक को लगीं और वह "वाह गुरू" का उच्चारण करते हुए स्वर्ग में जा विराजा। मुगल इस स्वर्गीय बालक की वीरता देख चकित थे। गुरूजी एक ऊँचे टीले पर चढ़कर पुत्र की वीरता देख रहे थे। वे मन ही मन बहु संतुष्ट थे, शोक का तो कहीं पता ही न था। इतने में अजीतसिंह का छोटा भाई जुझारसिंह, जिसकी अवस्था केवल चौदह वर्ष की थी, गुरुजी के पास आया और बोला, "पिता जी, मैं भाई साहब की तरह क्या धन्यवाद का पात्र नहीं बन सकता?"

गुरू साहब बोले, "क्यों नहीं, तुम भी जाओ और सिद्ध कर दो कि तुमने भी क्षत्राणी का दूध पिया है।" वह बालक अपनी तलवार घुमाता हुआ शत्रु-दल में जा पहुँचा। मुगलों ने समझा कि कोई बालक पागल हो गया है औ योंही तलवार भाँजता आ रहा है। पर जब उसने दो-चार को सुर-धाम भेज दिया तब उनकी आँखें खुलीं। वे चारों ओर से उसपर टूट पड़े, शत्रु की तलवार ने उसका एक हाथ काट डाला। किंतु तो भी वह दाहिने हाथ से तलवार चलाता रहा; पर दूसरी चोट उसके कंधे पर और तीसरी उसके मस्तक पर पड़ी, जिससे वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा और थोड़ी ही देर में वीर गति को प्राप्त हुआ।

इतने में शाम हो आई। गुरू साहब ने सब सिक्खों को, जिनकी संख्या लगभग चार सौ थी, दूसरे दिन अपने पुत्रों का अनुगामी बनने का आदेश दिया। इतने में एक वीर सिक्ख खड़ा होकर बोला—"गुरूजी, यों तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, किन्तु इस समय आपके प्राण देने से सिक्ख जाति की बड़ी हानि होगी। अभी उसकी जड़ कमजोर है और उसे आपही के ऐसे एक चतुर मालिक की आवश्यकता है। मैं आपकी रक्षा का उपाय भी आधी रात को कर दूँगा। हमलोग भले ही मर जायँ पर खालसा-धर्म की भलाई के लिए आपकी प्राण-रक्षा बहुत जरूरी है।" गुरु साहब ने शिष्य की बात मान ली। जब आधी

रात हुई, चारों ओर अंधकार छा गया तो वह शिष्य थोड़े से सिपाहियों को लेकर किले के बाहर निकला और मुगलों के खेमे के पास जाकर यह चिल्लाते हुए भागने लगा कि "गोविन्दसिंह भागा जाता है, पकड़ो।" मुगल एकबारगी उठ बैठे और सभी सेना उस ओर दौड़ पड़ी जिधर वे सिक्ख भागे जाते थे। इधर गुरु साहब का मार्ग साफ हो गया। वे बाहर निकले और थोड़े से सैनिकों के साथ सवेग होते होते एक ग्राम में पहुँचे। किन्तु वहाँ भी बादशाही सिपाहियों को घूमते देख नजर बचाकर वे एक जंगल में छिप गये। रात भर बन्दूक चढ़ाये गुरुजी वहीं पड़े रहे। प्रातःकाल किसी तरह रास्ता मिला। वे वहाँ से निकल मछवाड़ा नामक गाँव में जा पहुँचे। यहाँपर उन्होंने फारसी के अध्यापक काजी मीर मुहम्मद और एक सेवक गुलाबराय को बुलाकर एक युक्ति निकाली। तीनों ने मुसलमान मुल्लाओं का वेष बनाने के लिए नीला कपड़ा धारण किया और पूरे मुसलमान बन गये। उन दिनों पंजाब में यह रिवाज था कि मुसलमान लोग अपने पीर को चारपाई पर बैठा कर और बड़े सम्मान से उसे अपने कन्धे पर रखकर एक गाँव से दूसरे गाँव पहुँचा देते थे। उन लोगों ने भी यही चाल चली। मुसलमान का वेष बनाकर गुरु साहब को चारपाई पर बैठाकर अपने कन्धे पर ले चले। जब

कोई पूछता तो वे अपना पीर बताते। इस प्रकार चलते-चलते गुरु साहब घनगाली नाम के गाँव में पहुँचे।

यहाँ पर कुछ दिन ठहर कर गुरु साहब आगे बढ़े। इस बार इन्हें देखकर एक बादशाही सेना ने रोक-टोक की। पहले का-सा उत्तर मिलने पर सेनापति ने कहा, "अगर ये मुसलमानों के पीर हैं तो हमारे साथ खाना खाएँ। गुरु साहब बड़े धर्म संकट में पड़े। यदि वे मुसलमानों का छुआ हुआ अन्न खाते हैं तो हिन्दू धर्म के नियमानुसार पतित होते हैं और यदि नहीं खाते तो जान से हाथ धोते हैं। गुरु साहब प्राण की तो कुछ भी चिन्ता न करते थे किन्तु उन्होंने सोचा कि "जिस उद्देश्य को पूरा करने के लिए मैंने युद्ध से मुँह मोड़कर अपनी जान बचाई, वह अब मिट्टी में मिला जा रहा है।" गुरु साहब छुआछूत के भेद में विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने सोचा कि ऐसे संकट में यदि मुसलमानों का छुआ हुआ अन्न ग्रहण भी कर लिया जाय तो उसका प्रायश्चित हिन्दू धर्म के अनुसार हो सकता है। यदि न भी हो तो मुझे उसके दंड स्वरूप नर्क की तकलीफें और संसार का कलंक सहना पड़ेगा। पर मैं अपनी प्राण-रक्षा कर अपनी जाति और हिन्दू मात्र का उपकार कर सकता हूँ। मैं अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सब कुछ सहने को तैयार हूँ। यह सोच-कर गुरु जी ने मुसलमानों के साथ भोजन करके अपनी

प्राण-रक्षा की।

गुरु साहब के खाना खा लेने से सेना-नायक को निश्चय हो गया कि वे वास्तव में मुसलमान हैं और उसने जाने में रोक-टोक नहीं की। आगे बढ़कर गुरु साहब रायकोट पहुँचे। यहाँ एक रईस ने बड़ा सम्मान किया और उसने एक घोड़ा और कई अस्त्र उन्हें भेंट दिये।

यहीं पर कुछ भागे हुए सिक्ख भी गुरु साहब से मिले, जिनके द्वारा इन्हें अपने दो पुत्र की धर्म बलि का समाचार ज्ञात हुआ।

दो कुमारों की विचित्र धर्मबलि

हम पहले बता चुके हैं कि आनन्दगढ़ से निकलते समय गुरुजी का साथ अपनी माता, स्त्रियों और दो बच्चों से छूट गया था। इनकी दोनों स्त्रियाँ पुरुष का वेष धारण कर दिल्ली की ओर चली गईं और एक सिक्ख के यहाँ जिसका नाम जवाहरसिंह था, रहने लगीं। माता गुजरी अपने दो पौत्र जोरावरसिंह और फतहसिंह सहित, जिनकी अवस्था नौ और सात वर्ष की थी, कुछ सिक्खों द्वारा एक ब्राह्मण के घर पहुँचाई गईं। उस ब्राह्मण का नाम गंगाराम था और वह गुरु साहब का बहुत पुराना रसोइया था। माताजी के पास कीमती जवाहिरात और गहनों की एक पेटी थी। वे उसे अपने सिरहाने रखकर सोती थीं।

एक दिन उस ब्राह्मण की टेढ़ी निगाह उस पेटी पर पड़ी। लोभवश उसने रात को उसे चुरा लिया। सवेरे माताजी के पूछने पर वह अपने को निर्दोष बताने लगा और सारा भेद मुसलमानों से खोल देने की धमकी दी। माताजी बालकों के मोह से बहुत डरीं और ब्राह्मण से प्रार्थना करके उसे शान्त कर दिया ! किन्तु वह नीच सोचने लगा कि यदि ये लोग यहीं रहे तो मैं हजम नहीं कर सकता ! एक न एक दिन भेद खुल ही जायगा। यह सोच कर उसने कोतवाल को इसकी सूचना दे दी ! कोतवाल ने आकर दोनों बच्चों सहित माताजी को गिरफ्तार कर लिया। माताजी को जब अपनी गिरफ्तारी का रहस्य मालूम हो गया तो उन्होंने कोतवाल से अपनी चोरी का समाचार कह कर उस ब्राह्मण को भी गिरफ्तार करा दिया। उसके घर की तलाशी ली गई और पेटी अन्न के गल्ले में पाई गई। कोतवाल सब को थाने में लाया और रिपोर्ट लिखकर उन्हें पेटी सहित सरहिन्द के सूबेदार के पास भेज दिया। सूबेदार ने तो ब्राह्मण को छोड़ दिया और उस जवाहिरात की पेटी में से कुछ अमूल्य पदार्थ अपने पास रखकर बाकी कोतवाल के पास भेज दिया। इसी सूबेदार को गुरु गोविन्दसिंह ने हराया था। अब गुरु साहब के निस्सहाय परिवार को अपने वश में देखकर उसने बदला लेने का अच्छा मौका

देखा और दोनों राजकुमारों को दरबार में बुला भेजा। विदा होते समय माताजी ने अपने दोनों पौत्रों का मुँह चूमा और उन्हें अपने धर्म पर दृढ़ रहने के लिए आदेश दिया। ये दोनों बच्चे दरबार में उपस्थित हुए। इनकी सुकुमारता, सुन्दरता और निर्भयता को देखकर सारे दरबार का जी भर आया।

सूबेदार ने इन्हें आज्ञा दी—देखो काफिरो, या तो तुम कलमा पढ़ कर सच्चे इस्लाम पर-विश्वास करो या मृत्यु-दण्ड स्वीकार करो। इस पर इन सिंह के बच्चों ने उत्तर दिया—'हमारे गुरुजी का यही उपदेश है कि गुण-रहित भी अपना धर्म दूसरे धर्म से श्रेष्ठ है, दूसरा धर्म स्वीकार करने से मृत्यु प्राप्त करना कहीं अच्छा है।' सूबे-दार ने इनको मुसलमानी धर्म स्वीकार करने के लिए अनेकों शारीरिक कष्ट दिये, पर ये टस से टम न हुए। अंत में क्रोधित होकर उसने इन्हें जीते जी दीवार में चुन देने की आज्ञा दे दी। मुसलमान बड़े प्रसन्न हुए। इन दोनों कुमारों को खड़ा करके चारों ओर ईंट की दीवाल बनने लगी। बीच-बीच में सूबेदार इन्हें मुसलमान हो जाने के लिए सलाह देता रहा। किन्तु उसे सदा कोरा उत्तर मिलता रहा। जब दीवाल छाती तक पहुँची तो जोरावर-सिंह ने अपने छोटे भाई की ओर देखकर कहा, 'क्यों भाई, कोई चिन्ता तो नहीं है?' फतहसिंह ने उत्तर दिया,

नहीं भाई, चिन्ता नहीं, खुशी है कि शीघ्र ही अकाल पुरुष के चरणों में पहुँचूँगा। और सुनिये—

चिन्ता ताकी कीजिये, जो अनहोनी होय।
यह मारग ससार में नानक थिर नहिं कोय॥

बड़े भाई ने फतहसिंह को दृढ़ देखकर उसे धन्यावाद दिया। चुनाई बराबर जारी रही। जब भीत कान तक पहुँची तो फिर सबेदार ने कहा, "देखो अब भी समय है। कलमा पढ़ कर अपनी जान बचाओ?" जोरावरसिंह ने झल्लाकर कहा, "चुप रह पापी" गुरू के ध्यान में विघ्न न डाल। हम गुरुगोबिन्दसिंह के पुत्र हैं, हमें मृत्यु का क्या भय दिखाता है?" छोटा भाई फतहसिंह बोल उठा, "हम अवश्य प्राण न्योछावर करेंगे। मैं अपने रक्त से सींच कर भारत माता के उन लालों को उत्पन्न करूँगा जो तुम्हारे द्वारा किये हुए अन्याय और अत्याचार का अवश्य बदला लेंगे। रे दुष्ट! तू अपने खून की प्यास बुझा।"

इन बालकों की सच्चाई, वीरता, देश-भक्ति और धर्म-प्रेम को देखकर वजीर खाँ जैसा पत्थर दिल का मनुष्य सूबेदार भी सन्नाटे में आकर बालकों के मुँह की ओर देखने लगा। इतने में मालियर कोटले के हाकिम ने सूबेदार को समझाकर कहा कि इन बच्चों का वध करना निर्दयता और बदनामी का कारण होगा, आप उन्हें कम-से कम वध न करें। किन्तु ऐसे दबारों में निकम्मे, हराम-

खोर, देश-द्रोही लोगों की भी कमी नहीं रहती। सूबेदार का मुसाहब आला सूचा खत्री ने कहा, "इन काले नाग के बच्चों को अपने आस्तीन में पालना ठीक नहीं।" सूबेदार ने शीघ्र ही मारने की आज्ञा दे दी। इस पापी के मुँह से 'मारो' शब्द निकलते ही जल्लादों ने दोनों निर्दोष बच्चों का सिर धड़ से अलग कर दिया।

नगर में चारों ओर हाहाकार मच गया। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, सब ने सूबेदार और सूचा के प्रति घृणा प्रकट की। जब यह शोक-समाचार माता गुजरी के पास पहुँचा तो उन्हें बहुत दुःख हुआ और उन्होंने भी कारागार की खिड़की से गिरकर प्राण त्याग दिया। यह समाचार भारत के कोने-कोने में बिजली की भाँति फैल गया और सबों ने इन अत्याचारों के प्रतिकार और मुसलमानी राज्य के पतन के दिन निकट देखा।

गुरु गोविंदसिंह का भाग्योदय

अपने पुत्रों के वध का शोक-पूर्ण समाचार सुनकर गुरुजी बहुत दुखी हुए और उन्होंने कहा कि मुसलमानी राज्य के नष्ट होने का समय अब बहुत निकट आ गया है और सरहिंद के सूबेदार की, जिसने यह अत्याचार किया है, बड़ी बुरी मृत्यु होगी। गुरुसाहब का यह शाप सुनकर रानकल्ला का हाकिम, जो मुसलमान होते हुए भी गुरुजी का बड़ा भक्त था, बोला, "महाराज आपने यह शाप

मुसलमान मात्र के लिए दे दिया है। मैंने तो जी जान से आपकी सेवा की है, मुझ पर इतनी अकृपा क्यों।" गुरुजी ने उनके विनीत शब्दों को सुनकर उसे एक तलवार दी और कहा कि जब तक तुम्हारे कुल में इसकी पूजा होती रहेगी, तुम्हारा बाल बाँका न होगा। ईश्वर की कृपा से ऐसा ही हुआ। रायकोट से चलकर गुरु साहब दीना नामक नगर में पहुँचे। यहाँ इनके एक शिष्य लक्ष्मीधर चौधरी ने इनकी बड़ी प्रतिष्ठा की और इन्हें खामगढ़ के किले में ठहराया। यहीं पर धर्म्मचक्र और प्रेमचंद नामी दो शिष्य इनका दर्शन करने के लिए आये और इन्हें गुरू हरगोविन्द जी के अमानत रखे हुए बहुत-से अस्त्र-शस्त्र दिये।

उधर आनन्दगढ़ से जो सिक्ख प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करके गुरुजी का साथ छोड़ घर चले गये थे, उन्हें उनके इष्ट मित्रों ने धिक्कारना आरंभ किया। उनकी स्त्रियों ने भी उन्हें कायर कहकर उनका अपमान किया। अब उन लोगों ने अपनी गलती महसूस की और गुरुजी से क्षमा माँगने के लिए उनके पास आये। किन्तु भीड़ अधिक होने के कारण उन्हें गुरूजी से बातचीत करने का अभी अवसर न मिला था। पर गुरुजी ने देख लिया था कि वे लोग आ गये हैं।

सरहिन्द के सूबदार ने गुरुजी की बढ़ती हुई शक्ति

का समाचार पाकर उनपर चढ़ाई कर दी। गुरूजी ने भी एक तालाब के पास, जहाँ पर एक टीला भी था, अपने सैनिकों को खड़ा कर दिया। उधर चालीस जवानों ने भी जो गुरूजी से क्षमा माँगने के लिए आये थे, अच्छा अवसर देखा और आगे बढ़कर मुसलमानों का सामना किया। सहस्रों यवनों को यमलोक भेजकर आप भी स्वर्गवासी हुए। दोनों ओर से लड़ाई होती रही, अन्त में मुसलमान प्यास के मारे तड़पने लगे। पता लगाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यहाँ दस कोस तक कहीं पानी नहीं है और सिक्खों की सेना के पीछे जो तालाब है उसका भी पानी खराब कर दिया गया है। अन्त में मुगल सेना भाग खड़ी हुई। सिक्खों ने उनका तीन कोस तक पीछा किया। यहाँ से चलकर गुरुजी भटिण्डा पहुँचे! यहीं पर गुरुजी की धर्मपत्नी भी आ पहुँचीं।

यहीं पर गुरू साहब ने ग्रन्थ साहब का कार्य पूरा किया। इस काम को समाप्त करके वे दक्षिण यात्रा को चलकर अजमेर के पास पुष्कर राज में आ विराजे! यहाँ पर उन्होंने एक सुन्दर घाट बनवाया जो गोविन्द घाट के नाम से विख्यात है। यहीं पर गुरुजी को औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला।

औरंगजेब की मृत्यु दक्षिण में हुई! उसका पुत्र आजमशाह उसके पास था! पिता के मरते ही उसने

अपने भाई कामबक्श को मरवा कर बादशाह की उपाधि धारण की। औरंगजेब के बड़े पुत्र बहादुरशाह ने पिता की मृत्यु का समाचार पाकर दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार जमा लिया! एक म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकती थीं। आजमशाह बड़ी भारी सेना लेकर दिल्ली की ओर बढ़ा। बहादुरशाह के पास सेना बहुत थोड़ी थी। उसने गुरु साहब से सहायता माँगी। उन्होंने बहुत सोच-विचारकर मदद देना स्वीकार कर लिया और दो हजार सिक्खों सहित दिल्ली पहुँच गये। युद्ध आरंभ हो गया। गुरुजी अवसर देख रहे थे। जब दोनों ओर की सेना थक गई तो गुरु साहब ने सिक्खों को आक्रमण करने की आज्ञा दी। मुअज्जम गुरु साहब की तीर का लक्ष्य बनकर हाथी से नीचे गिर गया। उसके मरते ही उसकी सेना भाग निकली। बहादुरशाह निष्कंटक राज्य करने लगा। उसने गुरु साहब का बड़ा एहसान माना और उनकी कुछ सेवा करने की इच्छा जाहिर की। गुरु साहब ने कहा, "पंजाब के कुछ पहाड़ी राजाओं ने, विशेषकर सूबेदार सरहिन्द ने हमारे साथ बहुत अत्याचार किया है, तुम उन्हें मेरे सुपुर्द कर दो" किन्तु बादशाह इस पर राजी न हुआ। उसने घर पहुँच कर बीस लाख अशर्फियाँ गुरु साहब के पास भेज दीं। कुछ दिनों बाद बादशाह अपने राज्य में दौरा करने के लिए गया। बादशाह की प्रार्थना पर गुरु

साहब अपनी गृहस्थी को दिल्ली में छोड़ कर दौरे पर चल दिये। बादशाह राजपूताना, मालवा होते हुए उज्जैन पहुँचा। यहीं पर महन्त चेतराम साधू घूमता-फिरता आ गया। उसने दक्षिण प्रान्त नादेड़ ग्राम निवासी माधवदास बैरागी का हाल भी गुरुजी को बताया, जिसका वर्णन आगे किया जायगा।

बन्दा का सूबेदार सरहिन्द से बदला लेना

बहादुरशाह के साथ गुरु साहब बुर्हानपुर में पहुँचे। वहाँ मुसलमान और सिक्ख सिपाहियों में एक सूअर के शिकार के बारे में तलवार चल जाने के कारण गुरु साहब ने बादशाह का साथ छोड़ दिया और कई स्थानों की सैर करते हुए नादेड़ ग्राम में पहुँचे। यहीं माधव दास वैरागी रहता था। वह इस समय वहाँ पर नहीं था। उसके शिष्यों ने गुरूजी का बड़ा सत्कार कर उन्हें एक ऊँचे मंच पर बैठाया और उन्हें वहाँ से गिराने के लिए अनेक मन्त्र-तंत्र करने लगे। परन्तु अनेक प्रयत्न करने पर भी वे न गिरे तो शिष्यवर्ग बड़े चकित हुए और अपने गुरू के पास जाकर सब वृतान्त सुनाया। माधवदास गुरूजी का प्रताप सुनकर काँपता हुआ आया और उनके चरणों पर गिरकर उनका दास हो गया। गुरूसाहब ने उसे सिक्ख धर्म की शिक्षा दी और उनका नाम बन्दासिंह रख दिया।

बन्दा राजपूताने के एक जागीरदार रामदेव का

पुत्र था। बचपन में वह बड़ा चंचल और उपद्रवी था। इसका नाम लक्ष्मणदेव था। एक दिन अनजान में उसने एक गर्भवती हिरणी को मार डाला। उस हिरणी के पेट को चीरकर दो बच्चे निकाले गये। जब बहुत प्रयत्न करने पर भी वे बच्चे जीवित न रह सके तो लक्ष्मणदेव के दिल में बड़ी चोट लगी। उसने वैराग्य धारण कर लिया और एक प्रसिद्ध महात्मा का शिष्य होकर अपना नाम माधवदास रख लिया। उसने एक औघड़ से तंत्र-मन्त्र भी सीख लिया था।

गुरु साहब उसे देखते ही पहचान गये कि यही वैरागी भविष्य में खालसा का नेता बनकर मेरे पवित्र उद्देश्य को पूरा कर सकता है। उन्होंने उससे निवेदन किया कि 'आप मेरा काम सँभालिए और मेरे पिता और पुत्रों की हत्या का बदला मुसलमानों से लीजिए।' गुरू साहब ने उसे एक खड्ग तथा पाँच बाण दिये और नीचे लिखे पाँच उपदेश दिये—

१—दूसरी स्त्री की ओर निगाह न डालना और जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करना। २—सदा मन, वचन-कर्म से सत्य का पालन करना। ३—अपना अलग मत हर्गिज न चलाना। ४—सदा अपने को खालसा का सेवक समझना और सबसे भाई-भाई का व्यवहार करना। ५—अपनी विजयों पर कभी न इतराना।

बन्दा ने गुरूजी की आज्ञाओं को पालन करने की प्रतिज्ञा की। गुरू साहब ने उसे तमाम पंजाब के सिक्खों के नाम एक पत्र दिया जिसमें उन्होंने सिक्खों को आज्ञा दी कि वे बन्दा को अपना नेता मानें और उसके झण्डे के नीचे लड़ें। गुरू साहब ने उसे पचीस चुने हुए शिष्यों को देकर पंजाब रवाना किया। पंजाब पहुँचते ही उसने गुरुजी के नाम एक घोषणा निकाली कि सिक्खों को दलबद्ध होकर मुसलमानों से युद्ध करना चाहिए। यह समाचार पाते ही सिक्ख एकत्र होने लगे। यहाँ तक कि मालवा के सिक्ख भी सम्मिलित हो गये।

बन्दा ने सबसे पहले सरहिन्द नगर पर चढ़ाई की और उसे तहस-नहस कर डाला। सूबेदार सरहिन्द यह समाचार पाकर अपनी सेना सहित बन्दा से युद्ध करने के लिए अग्रसर हुआ, किन्तु अब उसकी किस्मत का सितारा डूब चुका था। उसकी सेना में एकता न होने के कारण सिक्ख दल शीघ्र ही विजयी हो गया। सूबेदार सरहिन्द सपरिवार पकड़ा गया और बन्दा ने उसके सामने उसके बाल बच्चों का बध करवाया और उसे दहकते हुए अग्निकुण्ड में फेंककर अपनी क्रोध की आग बुझाई। इस प्रकार बन्दा ने मुसलमानों से पूरा बदला लिया और उन्हें सिक्खों के सामने सिर झुकाना पड़ा। इस विजय का हाल सुनकर गुरु साहब को निश्चय हो

घाव के टांके टूट गये और रक्त की धारा बहने लगी और अनेकों प्रयत्न करने पर भी बन्द न हुई। गुरूजी ने अपना अंत समय निकट देखकर गुरू ग्रन्थ साहब को मँगवा कर सामने रखा और प्राचीन प्रथा के अनुसार पाँच पैसे और एक नारियल भेंट दिया। इसके बाद गुरूजी ने फौजी पोशाक धारण की और पाँचों शस्त्र यथास्थान कसकर वीरासन से बैठ गये और अपने शिष्यों को चन्दन की चिता सजाने की आज्ञा देकर 'सत्त श्री अकाल' का उच्चारण करते हुए कार्तिक शुकला पंचमी संवत् १७६५ वि० को ४२ वर्ष की अवस्था में शरीर त्याग दिया। शिष्यों ने उन्हें चन्दन की चिता पर जलाकर उस स्थान पर समाधि-मन्दिर बनवा दिया, जो अब तक गोदावरी के किनारे अविचल नगर में मौजूद है।

सचित्र, मनोरञ्जक, शिक्षाप्रद, सरल, रोचक, जी.
ऊँचा उठाने वाली महापुरुषों की जीवनियाँ। मू०

१—श्रीकृष्ण
२—महात्मा बुद्ध
३—रानाडे
४—अकबर
५—महाराणा प्रताप
६—शिवाजी
७—स्वामी दयानन्द
८—लो० तिलक
९—जे० एन० ताता
१०—विद्यासागर
११—स्वामी विवेकानन्द
१२—गुरु गोविन्दसिंह
१३—वीर दुर्गादास
१४—स्वामी रामतीर्थ
१५—सम्राट अशोक
१६—महाराज पृथ्वीराज
१७—श्रीरामकृष्ण परमहंस
१८—महात्मा टाल्स्टाय
१९—रणजीतसिंह
२०—महात्मा गोखले
२१—स्वामी श्रद्धानन्द
२२—नेपोलियन
२३—बा० राजेन्द्रप्रसाद
२४—सी० आर० दास
२५—गुरु नानक
२६—महाराणा सांगा
२७—पं० मोतीलाल नेहरू
२८—पं० जवाहरलाल नेहरू
२९—श्रीमती कमला नेहरू
३०—मीराबाई
३१—इब्राहीम लिंकन
३२—मुसोलिनी
३३—अहिल्याबाई
३४—हिटलर
३५—सुभाषचन्द्र बोस
३६—राजा राममोहनर
३७—लाला लाजपत र
३८—महात्मा गांधी
३९—महामना मालवी
४०—जगदीशचन्द्र बो
४१—महारानी लक्ष्मी
४२—महात्मा मेजिनी
४३—महात्मा लेनिन
४४—महाराज छत्रसाल
४५—अब्दुल गफ्फार खाँ
४६—मुस्तफ़ा कमालपाशा
४७—अबुलकलाम आजाद
४८—स्टालिन
४९—वीर सावरकर
५०—महात्मा ईसा
५१—वीर केसरी हम्मीरदेव
५२—डी० वेलरा
५३—गैरीबाल्डी
५४—स्वामी शंकराचार्य
५५—सी० एफ० एन्ड्रूज
५६—गणेश शङ्कर विद्यार्थी
५७—डा० सनयात सेन
५८—समर्थ गुरु रामदास
५९—महारानी संयोगिता
६०—दादाभाई नौरोजी
६१—सरोजिनी नायडू
६२—वीर बादल
६३—पट्टाभि सीतारामैया
६४—देवी जोन
६५—प्रिन्स बिस्मार्क
६६—कालमार्क्स
६७—कस्तूर बा
६८—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
६९—सरदार पटेल
७०—संत ज्ञानेश्वर

अब्दुल गफ्फार-खां

जीवन-चरित्र

छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग

बाल-चरित-माला सं०—४५

खान साहब
अब्दुल गफ्फार खाँ

लेखक
श्रीयुत व्यथित हृदय

प्रकाशक
छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग

खान साहब
अब्दुल गफ्फार खाँ

सरहद के पठान

यह आम तौर से मशहूर है कि सरहद के पठान बड़े लड़ाके और बहादुर होते हैं। पिछले इतिहास से उनके लड़ाकूपन और वीरता की बहुत सी कहानियां पढ़ने को मिलती हैं। किसी की कड़ी बात को बर्दाश्त करना उनकी आदत के बाहर की बात है। ऐसी दशा में वे इस बात की परवाह नहीं करते कि कड़ी बात कहने वाला, या वे स्वयं, दुनिया में रहेंगे या न रहेंगे, वे बिना किसी हिचक के अपमान करने वाले के ऊपर वार कर बैठते हैं। एक दिन था, जब सारे सीमा प्रान्त में मामूली कारणों को लेकर इसी तरह मारपीट; लूट और हत्या का बाज़ार गरम था। पठान मनुष्य होते हुये भी अपने लड़ाकूपन के जोश में इन्सानियत को भूल गये थे। लेकिन कुछ दिनों के बाद उनकी आंखों के सामने से वह पर्दा हटा, और वे इन्सानियत की

नई रोशनी को देखने लगे। ऐसी नई रोशनी को देखने लगे, जिससे आज सारी दुनिया उन्हें धन्य कह रही है।

इन्सानियत की उस नई रोशनी में सरहद के पठान बिलकुल बदल गए। जहां पहले लड़ाकूपन, हत्या, लड़ने-झगड़ने और मार-पीट करने की भावनाएँ थीं, वहाँ अब अहिंसा के पुजारी बन गए। हिन्दुस्तान की बीती हुई आज़ादी की लड़ाइयों में लम्बे लम्बे डील-डौल के मजबूत पठानों पर जिन्होंने सरकार के सिपाहियों के डण्डे पड़ते हुए देखे थे, अधिक आश्चर्य हुआ था। वे रह-रह कर यही सोचते थे कि बात-बात पर लड़ने-झगड़ने वाले सरहदी पठान इन डन्डों की मार को चुपचाप किस प्रकार बर्दाश्त कर रहे हैं।

लड़ाई के दिनों में सारी दुनिया पठानों की इस बदली हुई हालत पर ताज्जुब कर रही थी। उन पर ज़ुल्म होते थे, उनकी आँखों के सामने बेगुनाहों पर डन्डे बरसते थे. लेकिन फिर भी वे चुप रहते थे, हँस कर उसे सहने का उपदेश देते थे। किन्तु क्या तुम जानते हो कि सरहद पठानों के भीतर इन्सानियत का यह बीज किसने बोया सुनो,खान अब्दुल गफ्फार खाँ ने। वही खान अब्दुल गफ्फार खाँ ने, जिन्हें हम सरहदी गाँधी कहते हैं, और जिन्होंने हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए फकीरी का बाना

 किया है।

वंश-परिचय

खान साहब का जन्म मुहम्मद जई जाति के खान परिवार में हुआ है। 'जई' का मतलब है पैदा होना और 'खान' का मतलब है 'सरदार'। खान साहब के पिता बेहराम खाँ सचमुच अपनी जाति के सरदार थे। वे अपने उतमान जई गाँव के खान थे। यह गाँव पेशावर जिले की चरसद्दा तहसील में है। बेहराम खाँ बड़े धार्मिक पुरुष थे। गाँव और गाँव के आस पास के लोग इनकी बड़ी इज़्जत करते थे। दोस्त शत्रु, सबके साथ इनका बड़ा अच्छा व्यवहार होता था। बहुत से ऐसे मौके आए हैं, कि इनके अच्छे व्यवहारों के कारण इनके दुश्मनों को लज्जित होना पड़ा है।

इन्होंने अपनी जिन्दगी में दोस्त बहुत पैदा किए। इनके जो दुश्मन थे, उनके साथ भी इनका मित्रों का सा ही व्यवहार होता था। वे अपनी बात के बड़े धनी थे। इतने धनी थे कि दुश्मन और विरोधी भी इनकी बातों पर विश्वास किया करते थे। अक्सर लोग इनके पास झुन्ड के झुन्ड आते, और अपना रुपया जमा करके चले जाते थे। इनसे कोई रसीद न लेता था। लोगों का कहना था कि खान साहब का खाता एक ऐसा खाता है, जो कभी नहीं डूब सकता।

खान साहब बेहराम खाँ बड़े धार्मिक पुरुष थे। वे प्रति दिन नियम से खुदा की इबादत किया करते थे। उन्हीं की तरह उनकी स्त्री भी रोज़ नमाज़ पढ़ा करती थीं। नमाज पढ़ने के बाद वे प्रति दिन शान्त चित्त से बैठ जातीं और घन्टों खुदा का ध्यान किया करती थीं। खान साहब बेहराम खाँ बड़े ऊँचे ख्याल के व्यक्ति थे। इन्सानियत में बट्टा लगाने वाले कामों को वे हमेशा घृणा की नजर से देखते थे। अक्सर वह कहा करते थे कि धोखा खाने में कोई बेइज्जती नहीं है, बल्कि बेइज्जती तो धोखा देने में है।

खान साहब बेहराम खाँ का बड़ा दब-दबा भी था। मामूली आदमी से लेकर बड़े-बड़े आदमी तक उनकी इज्जत करते थे। बड़े-बड़े अँगरेज अफसर उन्हें 'चचा' कह कर पुकारते थे। अँगरेज़ अफसरों को हमेशा उनकी नाराजगी का डर लगा रहता था। वे जब कोई काम करते, तब सोच समझ करके करते थे। खान साहब बेहराम खाँ की नाराजगी का ख्याल हमेशा उन्हें सताया करता था। अपनी जिन्दगी में खान साहब बेहराम खाँ ने कभी किसी की चापलूसी न की। बड़े-बड़े अँगरेज़ अफसरों को भी उनके सामने झुकना पड़ा था।

खान साहब बेहराम खाँ यद्यपि बहुत पिछड़े हुए में पैदा हुए थे, लेकिन फिर भी बहुत आगे बढ़े

हुए थे। वे लकीर के फकीर न थे। सच्ची बात के लिए उनके दिल में काफी जगह थी। तालीम के वे बहुत बड़े प्रेमी थे। उनकी बहुत सी बातों का मौलवी-मुल्ला विरोध करते थे, लेकिन उनके विरोध का उनके दिल पर कुछ भी प्रभाव न पड़ता था। उनके दिल में देश के लिए भी काफी प्रेम था। अपने इसी देश-प्रेम के कारण वे बुढ़ाई में जेल गए थे। अपनी जेल-यात्रा पर उन्होंने बड़ी खुशी जाहिर की थी। ९५ वर्ष की उम्र में १९०६ ई० में उनकी मृत्यु हो गई।

जन्म

खान साहब अब्दुल गफ्फार खाँ दो भाई हैं। इनके बड़े भाई का नाम डाक्टर खान साहब है। डाक्टर खान साहब १८८३ ई० में और खान साहब १८९० ई० में पैदा हुए। ये दोनों भाई उतमान जई गाँव में पैदा हुए थे। यह गाँव पेशावर जिले की चरसद्दा तहसील में है। गाँव के पास ही स्वात नाम की एक छोटी सी नदी बहती है। नदी के किनारे बहुत ही रमणीक स्थान है। आस पास पहाड़ियाँ, पहाड़ियों की गोद में हरा भरा स्थान, दिन रात शान्ति खेलती रहती है। खान साहब अपनी जन्मभूमि की इस अनोखी शांति पर दिल से मोहित रहते हैं। एक बार उन्होंने महात्मा गाँधी जी से उसकी तारीफ करते हुए कहा था, कि हम नहीं समझते कि उससे भी अधिक शान्त

और सुन्दर वातावरण वाली कोई जगह है। सारी पेशावर घाटी सब तरह के फलों से लदी हुई है। हम आपको यकीन दिलाते हैं कि वहाँ आपका वजन खूब बढ़ जाएगा।

दोनों भाई प्रकृति की इसी सुन्दर गोद में पैदा हुए। इसी में खेले और बढ़े। इसी से दोनों भाइयों को गाँव की जिन्दगी बड़ी प्यारी लगती है। छोटे भाई की तो कोई बात ही नहीं, पर बड़े भाई भी जो बहुत दिनों तक यूरोप इत्यादि देशों में घूम चुके हैं, गाँव की जिन्दगी को अधिक पसन्द करते हैं। दोनों भाई कहीं भी रहते हैं, पर उन्हें उनके गाँव की पहाड़ियाँ और गाँवों के गन्ने के खेत बराबर याद आया करते हैं। वे बराबर उनकी चर्चा भी किया करते हैं।

शुरू की जिन्दगी

खान साहब एक ऐसी जगह और एक ऐसी जाति में पैदा हुए थे, जहाँ पहले तालीम के लिये कोई विशेष जगह न थी। जो कुछ थोड़ी बहुत तालीम थी, वह मस्जिदों और मकतबों ही तक खतम हो जाती थी। अँगरेजों के आने के पहले पेशावर इत्यादि जगहों में स्कूलों का नाम निशान तक न था। स्कूल की जगह मस्जिदों में पढ़ाई होती थी और पढ़ाई भी क्या, बहुत मामूली। लेकिन अँगरेजों के आने के बाद तमाम देश की तरह सीमाप्रान्त भी बहुत से स्कूल खुले और शिक्षा का प्रचार होने

लगा। पर पठानों में अब भी वही बात थी। पठान अब भी अपने बच्चों को स्कूलों में न भेज कर मस्जिदों और मकतबों ही में भेजते थे। जो अपने बच्चों को पढ़ने के लिये अंगरेज़ी स्कूलों में भेजता, मौलवी और मुल्ला लोग उसका विरोध भी किया करते थे। उनका कहना था कि मुसलमानों के लड़कों को अँगरेज़ी स्कूलों में पढ़ाना मज़हब के खिलाफ है।

खान साहब बेहराम खां के सामने जब अपने लड़कों के पढ़ाने का सवाल आया, तब उनके रास्ते में भी यही कठिनाई पेश आई। मगर वे ऊँचे विचार के आदमी थे। वे मजहबी होते हुए भी मौलवियों की ऊल ज़लूल बातों में विश्वास न करते थे। वे शिक्षा के बड़े प्रेमी थे। इस लिये उनके दिल पर मौलवियों की बात का कुछ भी असर न पड़ा। उन्होंने अपने दोनों लड़कों को पेशावर के मिशन स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया।

उन दिनों मिशन स्कूल के प्रिंसिपल एक अँगरेज थे। उनका नाम रेवरेण्ड विग्रम था। विग्रम साहब अपने चरित्र और न्याय के लिये बहुत मशहूर थे। स्कूल के सभी लड़के उन्हें बड़ी इज्जत की नज़र से देखते थे। इन दोनों भाइयों के हृदय पर विग्रम साहब के सादे जीवन का बहुत असर पड़ा। कहना तो यह चाहिये कि खान साहब ने विग्रम साहब की ज़िन्दगी से ही सेवा का पाठ पढ़ा था, ये दोनों

भाई इस समय भी कभी-कभी विग्रम साहब को बड़ी इज्जत से याद किया करते हैं।

बड़े भाई डाक्टर खान साहब ने मिशन स्कूल से ही पंजाब यूनिवर्सिटी की मैट्रिक की परीक्षा पास की। मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद वे बम्बई के ग्रांट मेडिकल कालेज में चले गए। वहां से फिर वे डाक्टरी पढ़ने के लिये विलायत चले गये। जिस समय उनके विलायत जाने की बात उठी थी, उनकी बिरादरी में एक तूफान-सा खड़ा हो गया था। लोग शक्ति भर उनके विलायत जाने का विरोध कर रहे थे। लोगों को भय था कि कहीं वे विलायत जाकर ईसाई न बन जायँ, और अँगरेज़ लड़की से विवाह न कर लें। लेकिन शिक्षा-प्रेमी होने के कारण खान साहब बेहराम खाँ के दिल पर इन बातों का कुछ भी असर न पड़ा और उन्होंने डाक्टर खान साहब को डाक्टरी पढ़ने के के लिये विलायत भेज दिया।

बड़े भाई तो विलायत चले गए। लेकिन खान साहब अब्दुल गफ्फार खाँ विलायत न जा सके। ये मैट्रिक में फेल हो गए थे। फेल हो जाने पर भी ये विलायत जाना चाहते थे। लेकिन इसी समय इनके परिवार में दो-तीन मौतें हो गईं। फिर भी कुछ दिनों के बाद शायद विलायत चले ही जाते; लेकिन इसी समय यह खबर मिली कि बड़े भाई डाक्टर खान साहब ने एक अँगरेज़ लड़की

से शादी कर ली। बस, फिर क्या? खान साहब अब्दुल गफ्फार खाँ के विलायत जाने की बात बिल्कुल खतम कर दी गई। इतना ही नहीं, इनका पढ़ना भी बन्द हो गया।

पढ़ना बन्द हो जाने के बाद खान साहब के दिल में एक नया ख्याल पैदा हुआ। इन्होंने सेना में भरती होकर ख्याति प्राप्त करने की बात सोची। बस फिर क्या? सेना में भरती होने के लिये इन्होंने दरख्वास्त भेज दी। एक तो पठान, दूसरे अच्छे खानदान के। इनकी दरख्वास्त मंजूर हो गई; और उन्हें आफिस में मुलाकात करने के लिये बुलाया गया। ये ठीक समय पर अँगरेज़ अफसर से मिलने के लिये आफिस में गये। आफिस में इनकी जान पहचान के कई आदमी काम करते थे। उस आफिस में जाकर इन्होंने जो कुछ देखा, उससे इनकी आँख खुल गई। वहाँ इन्होंने एक मामूली अङ्गरेज को एक बड़े हिन्दुस्तानी अफसर का बड़ी बुरी तरह अपमान करते हुए देखा। इस अजीब बात को देखकर खाँ साहब के मन में घृणा पैदा हो उठी। उनके दिल के अंदर बहुत बड़ा स्वाभिमान जाग उठा और उन्होंने सेना में भरती होने की बात हमेशा के लिये अपने दिल के अन्दर से निकाल दी।

इसके बाद खाँ साहब अलीगढ़ चले गए। ये एक साल तक अलीगढ़ में रहे। अलीगढ़ में रहते समय २न

मन में उर्दू पढ़ने का चाव पैदा हुआ। इन दिनों मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद साहब 'अल हिलाल' पत्र निकाल रहे थे। खान साहब इस पत्र को बड़े प्रेम से पढ़ा करते थे। 'अलहिलाल' के साथ ही ये 'ज़मींदार' को भी पढ़ते थे। इन्हीं पत्रों के पढ़ते-पढ़ते खान साहब के हृदय में एक नई प्रकार की विचार-धारा उत्पन्न हुई। वे अपने आपको समझने लगे, और समझने लगे अपने देश को। उनके हृदय के अन्दर देश और जाति के प्रति एक गहरा प्रेम पैदा हो उठा। यद्यपि वह प्रेम अभी प्रगट न हुआ था, किन्तु वह भीतर ही भीतर अधिक शक्तिशाली बन रहा था।

पठानों के बादशाह

खान साहब का दिल मुल्क की मुहब्बत की ओर झुक गया था। वे मुल्क और जाति के लिये मन ही मन अपने को लुटा चुके थे। यद्यपि वे खुलकर कोई काम न करते थे, पर उनके कामों से देश और जाति-भक्ति की भावना अवश्य प्रगट हो रही थी। जिन दिनों यूरोप में महासमर छिड़ा हुआ था, खान साहब अपने सूबे में एक नए प्रकार के स्कूल खोलने में लगे हुये थे। इन स्कूलों की नींव राष्ट्रीय ढङ्ग पर डाली गई थी। यद्यपि ये राष्ट्रीय स्कूल संख्या में बहुत ही कम थे, लेकिन फिर भी सरकार की कड़ी निगाह खान साहब के ऊपर जा पड़ी थी। सरकार

कुछ बोल तो न रही थी, पर खान साहब के काम उसे पसन्द भी न आ रहे थे ।

महासमर के बाद ही हिन्दुस्तान में एक नई लहर पैदा हुई । देश के कोने कोने में रोलट-बिल के खिलाफ आन्दोलन होने लगा । बड़े बड़े नेता गिरफ्तार किए जाने लगे । खान साहब के दिल के अन्दर देश-प्रेम तो मौजूद ही था । वे भी आन्दोलन में कूद पड़े । इन्होंने शक्तिभर बिल के खिलाफ प्रचार किया । इसका फल यह हुआ कि खान साहब गिरफ्तार कर लिये गए । दो हफ्ते तक किसी को यह न मालूम हुआ कि खान साहब गिफ्तार करके कहाँ रखे गये हैं ।

पुलिस के आदमी खान साहब और इनके पिता बेहराम खां को डरा कर उन्हें देश-सेवा से अलग कर देना चाहते थे । इसी ख्याल से खान साहब की गिरफ्तारी के बाद सरकार की ओर से एक डेपुटेशन बेहराम खाँ के पास भेजा गया था । डेपुटेशन के एक अंगरेज़ अफसर ने बेहराम खाँ को समझाते हुए कहा कि लोग, बादशाह को मार देंगे । खान साहब उन दिनों पठानों के बादशाह समझे जाते थे । उनकी गिरफ्तारी के समय उनसे भी यह सवाल पूछा गया था क्या तुम पठानों के बादशाह थे ? इस पर खान साहब ने जवाब दिया था, मुझे मालूम नहीं । पर यह मैं जानता हूँ, कि मैं अपनी जाति का नम्र सेवक

और इन बिलों को हम चुपचाप कुबूल नहीं कर सकते।'
इसी तरह खान साहब और उनके पिता को अनेक प्रकार से डराने, धमकाने और मिलाने की कोशिश की गई थी। पर खान साहब की तो कोई बात ही नहीं, उनके बूढ़े बाप के भी दिल पर धमकियों का कोई प्रभाव न पड़ा। प्रभाव पड़ने को कौन कहे, वे स्वयं भी जेल चले गये। उनके साथ और कई पठान गिरफ्तार हुए थे।

जेल में

खान साहब गिरफ्तार करके जेल में भेज दिए गये। अपनी इस पहली जेल की जिन्दगी के बारे में खान साहब ने स्वयं कहा है, "मैं एक मामूली कैदी नहीं, बल्कि एक भयानक कैदी समझा जाता था। हथकड़ियां डालकर मैं जेल ले जाया गया और जब तक मैं जेल में रहा, मेरे पैरों में बेड़ियाँ पड़ी रहीं। उस समय आज से दूना मेरा डील डौल था, और पौने तीन मन मेरा वज़न था; अतः मेरे पैरों के लायक़ बेड़ियाँ ही वहाँ नहीं थीं। यह तो मुझे नहीं मालूम कि मेरे लिए खास तौर पर बेड़ियाँ बनवाई गई थीं या नहीं, पर उन्हें प्राप्त करने में काफी दिक्कत उठानी पड़ी थी।"

जिस समय खान साहब और उनके पिता जेल में थे, उस समय इनके बड़े भाई डाक्टर खान साहब फ्रान्स में थे। वे लन्दन से डाक्टरी की परीक्षा पास करके फ्रांस

इन दोनों चीजों के साँचे में खान साहब ने शुरू से ही अपनी जिन्दगी को ढालना शुरू कर दी थी। खान साहब ने एक बार महात्मा गाँधी से खुद इसके बारे में कहा था कि यदि मैंने आरामतलबी की जिन्दगी बिताई होती और जेल के सुख तथा उसकी सब सख्तियों की परीक्षा का मौक़ा मुझे न मिला होता, तो न जाने मेरा क्या हाल हुआ होता? पहली और दूसरी बार गिरफ़्तार होने पर मुझे कैसी-कैसी तकलीफें झेलनी पड़ी थीं। मगर इस बात के लिए मैं खुदा का बहुत शुक्रगुज़ार हूँ कि उसने शुरू से ही मुझे तकलीफों के सहने का आदी बना दिया था।"

१६२० ई० में नागपुर में काँगरेस का अधिवेशन हुआ। खान साहब भी कांगरेस के इस अधिवेशन में शामिल हुए थे। नागपुर कांगरेस के बाद जब देश में खिलाफत का आन्दोलन शुरू हुआ, तब खान साहब जोरों से उसका काम करने लगे। सीमाप्रान्त में खिलाफत के अन्दोलन का भार खान साहब ही के कन्धे पर रखा गया था। खान साहब सीमा प्रान्तीय खिलाफत-संघ के सभापति बनाए गए थे। लेकिन कुछ कारणों से इन्हें उससे अलग हो जाना पड़ा। ये खिलाफत-संघ के सभापतित्व से इस्तीफा देकर 'मुहाजरीन' का नेतृत्व करने लगे। मुहाजरीन की ओर से इन्हें अपने साथियों के साथ अफग़ानिस्तान भी जाना पड़ा था। मुहाजरीन के साथ इनके पिता भी, जिनकी

उम्र उस समय ६० साल की थी, अफ़गानिस्तान जाना चाहते थे। परन्तु खान साहब ने उन्हें बहुत समझा-बुझा कर जाने से रोक दिया था। खान सहब और उनके साथियों को अफ़गानिस्तान से लौटते समय रास्ते में बड़ी-बड़ी तकलीफें उठानी पड़ी थीं।

राष्ट्रीय स्कूल

वह १९२० और २१ ई० का ज़माना था। सारे हिन्दुस्तान में महात्मा गाँधी के असहयोग की लहर फैली हुई थी। फिर उस लहर से सीमा-प्रांत कैसे बचा रह सकता था और जब कि वहाँ खान साहब अब्दुल गफ्फार खाँ ऐसे देश-सेवी हों। देश के और हिस्सों की तरह सीमा प्रान्त में भी ज़ोरों से काम होने लगा। खान साहब ने आन्दोलन को बढ़ाने के लिए रचनात्मक कार्य करने शुरू कर दिए। इन्होंने अपने उतमान ज़ई गाँव में एक राष्ट्रीय स्कूल की स्थापना की। ये इसी प्रकार के राष्ट्रीय स्कूल तमाम सूबे भर में खोलना चाहते थे। इन्हीं स्कूलों के खोलने में खान साहब ने अपनी पूरी ताक़त लगा दी। इसके लिए इन्होंने जगह-जगह दौरे करने शुरू कर दिया। इनके दौरों को देख कर सरकार चौकन्ना हो उठी। सरकार ने इनके दौरों पर रोक लगा कर इनसे ज़मानत तलब की। पर इन्होंने ज़मानत देने से इनकार कर दिया। सीमा प्रान्त के चीफ़ कमिश्नर सरजान मैफीने इसी बात

को लेकर खान साहब के पिता को समझाने की कोशिश की थी। उनका मतलब था कि खान साहब बेहराम खाँ अपने लड़के से कह दें कि वे स्कूलों का खोलना बन्द कर दें। उन्होंने यह भी बेहराम खाँ से कहा कि यह काम अँगरेज़ों के खिलाफ़ है और जब कोई इस काम में दिलचस्पी नहीं ले रहा है, तब आपका ही लड़का क्यों उसमें दिलचस्पी ले रहा है।

कमिश्नर साहब की बातों का खान-पिता के दिल पर क्या प्रभाव पड़ा यह तो नहीं कहा जा सकता। लेकिन उन्होंने इसके बारे में खान साहब से बातचीत अवश्य की थी। खान साहब ने उनकी बातों का जवाब देते हुए कहा था, 'पिता जी, फर्ज कीजिए कि और सब लोग नमाज़ में दिलचस्पी लेना छोड़ दें, तो क्या आप मुझसे भी नमाज़ छोड़ कर अपना फ़र्ज़ भूल जाने के लिए कहेंगे या दूसरे लोग निरादार करें, तो भी मुझे अपना मज़हबी फ़र्ज़ अदा करते रहने को कहेंगे ?"

'कभी नहीं' पिता ने जवाब दिया -'दूसरे लोग चाहे जो करें, मगर तुम्हें मज़हबी फ़र्ज़ छोड़ देने के लिए कभी न कहूंगा।'

"तो पिता जी ?"—खान साहब ने जवाब दिया—"राष्ट्रीय शिक्षा का यह काम भी उसी तरह का है। अगर नमाज़ छोड़ी जा सकती है तो स्कूल भी छूट सकता है।

नहीं तो नमाज़ जैसे नहीं छोड़ी जा सकती, उसी तरह स्कूल का काम भी बन्द नहीं किया जा सकता।"

'अब मैं समझ गया' पिता ने कहा—"तुम ठीक कहते हो।"

इस तरह खान साहब अपना काम बन्द न करके बराबर उसे करते ही गए। सरकार ने जो कुछ भी कोशिश की, सब बेकार गई। अन्त में सरकार ने उन्हें गिरफ़्तार करके जेल में डाल दिया।

जेल की दूसरी ज़िन्दगी

इस बार जेल में खान साहब को बड़ी-बड़ी तकलीफों का सामना करना पड़ा। उन्हें कई दिन तक काल कोठरी में रहना पड़ा था। महीनों तक पैरों में बेड़ियां पड़ी हुई थीं। चक्की चलाने का काम मिला हुआ था। कठिनाइयों और तकलीफों को सहने के कारण खान साहब का वज़न ५५ पौण्ड कम हो गया। उनके शरीर में एक-पित्त की बीमारी हो गई तथा कमर में दर्द भी होने लगा। इतनी कठिनाइयाँ झेलने के बाद भी खान साहब जेल में हमेशा खुश रहते थे। जेल में भी सरकार ने खान साहब को मिलाने की बहुत सी कोशिशें कीं, लेकिन सफलता न मिली। खान साहब बराबर देश-सेवा के मार्ग पर डटे रहे। खान साहब को ज्यों ज्यों तकलीफों और मुसीबतों का

सामना करना पड़ता था त्यों त्यों उनकी सेवा-भावना और भी अधिक निखरती जाती थी।

खान साहब जेल में बड़े क़ायदे से अपनी जिन्दगी को बिताते थे। जेल के क़ायदों के मुताबिक चलना वे अपना कर्तव्य समझते थे। जेल में उन्हें जो काम मिलता था, उसे वे बड़ी खुशी से करते थे। जेल में किसी से रू-रियायत नहीं चाहते थे। कई ऐसे अफ़सर थे जो इनके साथ रियायत करना चाहते थे। पर इन्होंने हमेशा इन्कार किया। कई सज़ायाफ़्ता वार्डर इनके कामों को खुद अपने हाथों से करना चाहते थे, पर ये यह कह कह कर उन्हें लाचार कर देते थे कि मैं आप से बिलकुल साफ कह देता हूँ कि मैं झूठ नहीं बोल सकता।

जेल के कैदी और सिपाही भी खान साहब को बड़ी इज्जत की निगाह से देखते थे। खान साहब शुद्ध हृदय से उन्हें बुराई से बचने के लिए उपदेश दिया करते थे। वे सिपाहियों और कैदियों से कहते थे कि जहाँ तक हो आदमी को बुराइयों से बचने की कोशिश करनी चाहिये। एक बार एक आदमी ने जो जेल में नौकर था, खान साहब से कहा कि 'अगर मैं ऐसा न करूँ तो मेरी गुज़र नहीं हो सकती।' खान साहब ने उसकी बातों का जवाब देते हुए कहा कि यह तो मैं नहीं कह सकता कि तुम क्या करो,

लेकिन यह कह सकता हूँ कि तुम जो कर रहे हो वह बहुत ही बुरा और नामुनासिब है।

खान साहब की बातों का उस आदमी के दिल पर इतना असर पड़ा कि उसने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। यद्यपि यह एक मामूली घटना थी, पर सरकार को इसमें राजनैतिक गन्ध मिली; और उसने खान साहब को सीमा-प्रांत की जेल से गोगाजी खाँ की जेल में भेज दिया। पंजाब की जेल में खान साहब राजनीतिक कैदियों ही के साथ रखे गए थे। यहाँ इन्होंने गीता, ग्रंथ साहब और बाइबिल का अध्ययन किया। गीता तो इन्होंने कई बार पढ़ी। गीता पढ़ने के बाद उसमें इनका प्रेम अधिक बढ़ गया। गाँधी जी की जीवनी भी इन्होंने पञ्जाब की जेल ही में पढ़ी थी। ये हर हफ़्ते उपवास भी किया करते थे।

खान साहब जेल में दूसरे कैदियों की धार्मिक भावनाओं का भी बहुत ख्याल रखते थे। इस जेल की एक घटना का उल्लेख किये बिना नहीं रहा जाता। इस जेल में खान साहब ने ६ महीने तक इसलिए गोश्त नहीं खाया कि इससे गोश्त न खाने वाले कैदियों का जी दुखेगा। गोश्त न खाने के कारण खान साहब की तन्दुरुस्ती खराब होगई। डाक्टर ने उन्हें सलाह दी कि अगर आपको अपनी तन्दुरुस्ती रखनी है और दांत बनाए रखने हैं, तो गोश्त जरूर खाना चाहिए।

खान साहब की गोश्त खाने की इच्छा न थी, लेकिन जब डाक्टर ने राय दी, तब वे गोश्त खाने के लिए तैयार हुए। अब यह सवाल सामने आया कि गोश्त पके कहाँ? सुपरिंटेंडेन्ट ने कहा कि आम रसोई में ही पक जाया करेगा। लेकिन खान साहब ने जवाब दिया कि मैं आम रसोई में गोश्त पकवा कर अपने गोश्त न खाने वाले भाइयों के दिलों को चोट नहीं पहुँचाना चाहता। इससे तो यही अच्छा है कि मैं गोश्त ही न खाऊँ। खान साहब की इस ऊँची भावना को देखकर सुपरिंटेडेन्ट को अलग गोश्त पकाने का इन्तज़ाम करना पड़ा था।

खुदाई खिदमतगार

खान साहब जब जेल से छूटे, तब देश की हवा बदल चुकी थी। महात्मा गाँधी ने अपना असहयोग आंदोलन बन्द कर दिया था। देश के बड़े-बड़े नेता कांगरेस की ताक़त बढ़ाने में लगे हुए थे। बड़े बड़े शहरों में हिन्दू मुसलिम झगड़े भी हो रहे थे। खान साहब इन झगड़ों से बहुत दुखी हो रहे थे। हिन्दू-मुसलमान का भेद भाव खान साहब को इस समय भी हमेशा सताता है।

खान साहब कभी इस झगड़े में नहीं पड़े, उन्होंने हमेशा से अपने को इस झगड़े से दूर रखा है। वे एक ऊँचे दर्जे के मुसलमान हैं। खुदा में उनका अटूट विश्वास है। वे सबको खुदा की औलाद समझते हैं। इसीलिए जब

हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुस्लिम झगड़े ज़ोर पकड़ रहे थे, तब खान साहब ने समाज की सेवा तथा उसमें सुधार करने के लिए एक दल स्थापिता किया। खान साहब खुदा के सच्चे भक्त हैं। इसलिए उन्होंने अपने दल का नाम भी खुदा ही के नाम पर रखा, 'खुदाई खिदमतगार'। इस दल का उद्देश्य था समाज की सेवा करना। पठानों में जो लूट खसोट होता था तथा उनमें जो शिक्षा की कमी थी, उसी को दूर करने के लिए इस दल की स्थापना की गई थी। शादी इत्यादि मौकों पर होने वाली फिज़ूल खर्चियों का रोकना भी इस दल का उद्देश्य था।

पहले इन्हीं उद्देश्यों को लेकर यह दल कायम किया गया था; किन्तु १९२९ ई० में जब देश में फिर राजनीति की लहर दौड़ी, तब इस दल के उद्देश्यों में भी हेर फेर हो गया। यह सामाजिक से राजनैतिक बन गया और कांगरेस के कार्यक्रमों को पूरा करने लगा। मगर १९३० ई० तक इसमें पाँच सौ से अधिक स्वयंसेवक नहीं थे। इस संस्था के उद्देश्य बड़े ऊँचे थे। खान साहब अपनी इसी संस्था के द्वारा चार-पाँच वर्षों तक बराबर समाज की सेवा करते रहे।। खान साहब की सेवाओं से पठानों के हृदय पर उनका अधिक अधिकार हो गया। पठान दिल से उनकी इज्जत करने लगे। सारे सीमा-प्रान्त में चारों ओर खान

साहब का नाम गूँज उठा। हिन्दुस्तान में लोग उन्हें सीमा
प्रान्त का गाँधी कहने लगे।

लाल कुर्तीदल

चार पाँच वर्षों के बाद देश ने फिर करवट बदली और
चारों ओर फिर सत्याग्रह संग्राम की सदा गूँज उठी। व
१६२६ और ३० का समय था। महात्मा गाँधी ने हिन्दुस्तान
के कोने-कोने में अपनी नमक कानून तोड़ने की आवाज
पहुँचा दी। चारों ओर सरकार का नमक क़ानून तोड़
जाने लगा और लोग गिरफ़्तार होने लगे। थोड़े ही दिनों मे
हिन्दुस्तान की बड़ी-बड़ी जेलें क़ैदियों से भर गईं। क़ैदियो
को रखने के लिए सरकार को अलग नये जेल बनवाने
पड़े थे।

सीमाप्रान्त में 'खुदाई खिदमतगार' दल की पहले ही
स्थापना की गई थी। पहले यह दल सामाजिक सुधार मे
लगा रहता था, लेकिन १६२६ ई० में जब सत्याग्रह की
लड़ाई शुरू हुई, तब इसने राजनैतिक कामों में भी हिस्स
बँटाना शुरू कर दिया। सरकार पहले ही से इस दल को
कड़ी निगाह से देख रही थी। जब इसने राजनीतिक कामो
में भी हिस्सा लेना शुरू कर दिया, तब तो सरकार को
एक बहाना मिल गया। सरकार की ओर से इस दल का
नाम 'लाल कुर्तीदल' रखा गया। इसका कारण यह था कि
इस दल में जितने स्वयं सेवक थे, वे सभी लाल रंग के

कुर्ते पहनते थे। सरकार इससे यह मतलब निकालती थी कि लालकुर्ती दल वाले रूस के वसूलों पर काम करते हैं। लेकिन दर असल यह बात न थी। पहले उन लोगों की पोशाक जल्दी मैली हो जाया करती थी। इसीलिए उसे ईंट के रङ्ग में रङ्ग कर लाल बना दिया गया था।

मगर सरकार को यह समझने की जरूरत न थी। वह तो किसी न किसी तरह खुदाई खिदमतगारों को बदनाम करना चाहती थी। सरकार की नजर में इन सभी झगड़ों की जड़ खान साहब थे। इसलिए सरकार ने खान साहब को गिफ्तार कर लिया। सरकार ने सोचा था कि खान साहब की गिरफ्तारी के बाद सीमाप्रान्त का सारा आन्दोलन ठंडा पड़ जायगा, लेकिन बात उल्टी हुई। खान साहब की गिरफ्तारी के बाद ही सारे सीमा प्रान्त में आन्दोलन की लहर दौड़ पड़ी। 'खुदाई खिदमतगारों' की तादाद जोरों से बढ़ने लगी। उस दल को मिटाने के लिए सरकार की ओर से ज्यों-ज्यों कोशिशें की जाने लगीं, त्यों-त्यों आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। हिन्दुस्तान के दूसरे सूबों का आन्दोलन शिथिल भी हो गया, पर सीमा-प्रान्त का आन्दोलन बराबर जोर पकड़ता गया। खान साहब खुदाई खिदमतगारों में देश-भक्ति का जो बीज बो गए थे वह बराबर बढ़ता गया और फूलता-फलता गया।

गुजरात जेल में

खान साहब गिरफ्तार करके गुजरात की जेल में रखे गए थे। इन्हें किसी खास मियाद तक की सजा न दी गई थी। यह सरकार की इच्छा पर था कि वह जब तक चाहे, खान साहब को जेल में बन्द किए रहे। गुजरात जेल में भी खान साहब एक आदर्श कैदी थे। ये जेल के कायदों को बड़ी प्रसन्नता के साथ मानते थे। ये कहा करते थे कि देश-सेवा के लिए जेल आने पर जेल के कायदों को न मानने से अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं होता।

गुजरात जेल में खान साहब के साथ और भी कई राजनीतिक कैदी थे। उनमें हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। खान साहब हिन्दुओं के साथ अपना अधिक मेल-जोल बढ़ाना चाहते थे। हिन्दुओं और मुसलमानों में जो भेद-भाव था उसे वे दूर कर देना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने एक नई तरकीब निकाली। खान साहब ने हिन्दुओं और मुसलमानों के आपसी भेद-भाव को दूर करने के लिये जेल में दो क्लास (दर्जे) खोले। एक का नाम उन्होंने 'गीता' क्लास रखा और दूसरी का 'कुरान क्लास'। दोनों क्लासें कुछ दिनों तक बराबर बड़े कायदे से अपना काम करती रहीं। इन क्लासों के चलाने का काम योग्य और विद्वान् कैदियों के हाथों में सौंपा गया था। मगर कुछ दिनों के बाद गीता क्लास में खान साहब

को छोड़ कर और कोई मुसलमान विद्यार्थी न रहा। इसके लिए खान साहब को बदनाम भी किया जाने लगा। बहुत से मुसलमान खान साहब को हिन्दू कहने लगे। मगर खान साहब ने गीता का पढ़ना न छोड़ा। वे बराबर गीता पढ़ते रहे। खान साहब को गीता में एक अनोखी चीज़ मालूम होती है। उसी चीज़ के लिए खान साहब इस समय भी गीता पढ़ते हैं। खान साहब का कहना है कि चाहे वह किसी मजहब की किताब क्यों न हो. मगर यदि उसमें इन्सानियत को ऊँचा उठाने वाले भाव हैं, तो उसे किसी भी मज़हब के आदमी को ज़रूर पढ़ना चाहिए।

सन्धि का जमाना

जिस समय काँगरेस के सभी बड़े बड़े नेता जेलों में थे और काँगरेस का आन्दोलन जोर पकड़ रहा था, उन्हीं दिनों सरकार और काँगरेस में एक अस्थाई सन्धि हुई। इस सन्धि के मुताबिक सभी काँगरेसी नेता जेलों से छोड़ दिए गए और महात्मा गाँधी गोलमेज़ कान्फ़रेंस में शामिल होने के लिए विलायत चले गए। खान साहब भी जेल से छोड़ दिए गए। काँगरेस ने अपना आन्दोलन बन्द ही कर दिया था। खान साहब अपने सूबे में जाकर काँगरेस की असली ताकत बढ़ाने लगे।

समझौते के ज़माने में खान साहब ने कई जगहों का दौरा भी किया था। इन्होंने मेरठ इत्यादि जगहों में

लेक्चर भी दिए थे। सीमा-प्रान्त की कई मस्जिदों में भी इनका व्याख्यान हुआ था। किन्तु उन दिनों इनके जितने व्याख्यान होते थे, उनका राजनीति से कोई ताल्लुक न होता था। क्योंकि उस समय काँगरेस का ऐसा हुक्म ही था। मगर खान साहब के मामूली लेक्चरों में भी सरकार को राजनीति की गंध मिला करती थी। सरकार की ओर से बराबर खान साहब पर यह दोष लगाया जा रहा था कि वे काँगरेस और सरकार के समझौते को तोड़ रहे हैं। सरकार के इसी रुख के कारण, जब कि सारे हिन्दुस्तान में काँगरेस का आन्दोलन बन्द था, फिर कुछ ज्यादती होने लगी। सरकार की ज्यादतियों का यह काम हुआ कि वहाँ आन्दोलन ने फिर एक शकल धारण कर लिया। महात्मा गाँधी अभी विलायत ही में थे, मगर सीमा-प्रान्त में होने वाली घटनाओं को लेकर सारे हिन्दुस्तान मे फिर एक हलचल सी पैदा हो गई।

सारा कुटुम्ब जेल में

सीमा-प्रान्त में माल-गुजारी की अदायगी के लिए लोगों पर कड़ी से कड़ी सख्तियाँ की जा रही थीं। खुदाई खिदमतगारों को इसके लिए बहुत सताया जा रहा था। बहुत से खुदाई खिदमतगार पकड़ कर हवालात में बन्द कर दिये गए थे। खान साहब ने यद्यपि अपनी [illegible] दे दी थी तो भी वे दोष से बरी न हुए।

सरकार ने खान-बन्धुओं को दरबार में शामिल होने के लिए निमंत्रित किया था। लेकिन खान-बन्धुओं ने सरकार के निमंत्रण को नामंजूर कर दिया। इससे सरकार की नाराज़गी और बढ़ गई। सरकार ने सीमा-प्रान्त में एक कड़ा आर्डी-नेन्स जारी कर दिया। इस आर्डीनेन्स के साथ सरकार की ओर से जो घोषणा प्रकाशित हुई थी उसमें खान साहब के ऊपर बहुत से दोष लगाए गए थे।

२६ दिसम्बर को महात्मा गाँधी विलायत से लौटने वाले थे। खान साहब गाँधी जी से मिलने के लिए बम्बई जाने वाले थे; और बड़े भाई डाक्टर खान साहब इलाहाबाद जाने की बात सोच रहे थे। क्योंकि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें बड़े दिन में इलाहाबाद बुलाया था। पर २४ तारीख की रात को ही दोनों भाई गिरफ्तार करके अटकब्रिज भेज दिए गये। डाक्टर खान साहब, खान के बड़े लड़के, सादुल्ला खाँ, जो अभी हाल ही में इंगलैंड से लौट कर आए थे, गिरफ्तार करके उसी ट्रेन में पहुँचा दिए गए, जिसमें डाक्टर खान साहब थे। खान साहब की स्त्री को आधी रात के समय जगा कर यह हुक्म दिया कि वे अपने परिवार के साथ मकान छोड़ दें ताकि पुलिस अच्छी तरह मकान की तलाशी ले सके। डाक्टर खान साहब का दूसरा लड़का उबेदुल्ला भी जो बीमार था, पकड़ लिया गया। खान साहब की स्त्री इसके दस साल पहले

लेक्चर भी दिए थे। सीमा-प्रान्त की कई मस्जिदों में भी इनका व्याख्यान हुआ था। किन्तु उन दिनों इनके जितने व्याख्यान होते थे, उनका राजनीति से कोई ताल्लुक न होता था। क्योंकि उस समय काँगरेस का ऐसा हुक्म ही था। मगर खान साहब के मामूली लेक्चरों में भी सरकार को राजनीति की गंध मिला करती थी। सरकार की ओर से बराबर खान साहब पर यह दोष लगाया जा रहा था कि वे काँगरेस और सरकार के समझौते को तोड़ रहे हैं। सरकार के इसी रुख के कारण, जब कि सारे हिन्दुस्तान में काँगरेस का आन्दोलन बन्द था, फिर कुछ ज्यादती होने लगी। सरकार की ज्यादतियों का यह काम हुआ कि वहाँ आन्दोलन ने फिर एक शकल धारण कर लिया। महात्मा गाँधी अभी विलायत ही में थे, मगर सीमा-प्रान्त में होने वाली घटनाओं को लेकर सारे हिन्दुस्तान मे फिर एक हलचल सी पैदा हो गई।

सारा कुटुम्ब जेल में

सीमा-प्रान्त में माल-गुजारी की अदायगी के लिए लोगों पर कड़ी से कड़ी सख्तियाँ की जा रही थीं। खुदाई खिदमतगारों को इसके लिए बहुत सताया जा रहा था। बहुत से खुदाई खिदमतगार पकड़ कर हवालात में बन्द कर दिये गए थे। खान साहब ने यद्यपि अपनी मालगुजारी दे दी थी तो भी वे दोष से बरी न हुए।

सरकार ने खान-बन्धुओं को दरबार में शामिल होने के लिए निमंत्रित किया था। लेकिन खान-बन्धुओं ने सरकार के निमंत्रण को नामंजूर कर दिया। इससे सरकार की नाराज़गी और बढ़ गई। सरकार ने सीमा-प्रान्त में एक कड़ा आर्डीनेन्स जारी कर दिया। इस आर्डीनेन्स के साथ सरकार की ओर से जो घोषणा प्रकाशित हुई थी उसमें खान साहब के ऊपर बहुत से दोष लगाए गए थे।

२८ दिसम्बर को महात्मा गाँधी विलायत से लौटने वाले थे। खान साहब गाँधी जी से मिलने के लिए बम्बई जाने वाले थे; और बड़े भाई डाक्टर खान साहब इलाहाबाद जाने की बात सोच रहे थे। क्योंकि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें बड़े दिन में इलाहाबाद बुलाया था। पर २४ तारीख की रात को ही दोनों भाई गिरफ्तार करके अटकब्रिज भेज दिए गये। डाक्टर खान साहब, खान के बड़े लड़के, सादुल्ला खाँ, जो अभी हाल ही में इंगलैंड से लौट कर आए थे, गिरफ्तार करके उसी ट्रेन में पहुँचा दिए गए, जिसमें डाक्टर खान साहब थे। खान साहब की स्त्री को आधी रात के समय जगा कर यह हुक्म दिया कि वे अपने परिवार के साथ मकान छोड़ दें ताकि पुलिस अच्छी तरह मकान की तलाशी ले सके। डाक्टर खान साहब का दूसरा लड़का उबेदुल्ला भी जो बीमार था, पकड़ लिया गया। खान साहब की स्त्री इसके दस साल पहले

की मर चुकी थीं। अतः अब घर पर डाक्टर खान साहब की बीवियों और अबोध बच्चों को छोड़ कर कोई न रहा। डाक्टर खान, खान साहब और लड़कों की गिरफ़्तारी के बाद डाक्टर खान साहेब की दो स्त्रियों ने भी आन्दोलन में हिस्सा लेना शुरू कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि वे दोनों भी गिरफ्तार कर ली गईं। इसके बाद तो खान साहब के परिवार से जितने लोगों का सम्बन्ध था, तथा जितने लोग उनके रिश्तेदार थे, सब के सब एक-एक करके गिरफ़्तार कर लिए गए।

उबेदुल्ला खाँ पहले ही काफी बदनाम हो चुका था। उसने पहले बार ३२ दिनों तक की भूख हड़ताल की थी। वह तभी से बीमार था। वह गिरफ्तार करके लुधियाना ले जाया गया, इसके बाद मुलतान और फिर स्यालकोट स्यालकोट की जेल में उसकी तन्दुरुस्ती कुछ सुधरी ज़रूर, मगर वह वहाँ अधिक दिनों तक न रहा। कुछ ही दिनो के बाद वह फिर मुल्तान भेज दिया गया, और फिर उसके बाद स्यालकोट। फिर जब तक जेल से न छूटा, वह स्यालकोट ही के जेल में रहा। यहां उबेदुल्ला खाँ की चर्चा इसलिए की जा रही है कि इस वीर ने मुलतान की जेल में ७८ दिनों की भूख हड़ताल की थी। उसकी यह मांग थी कि वह स्यालकोट की जेल में भेज दिया जाए। अन्त में सरकार को उबेदुल्ल खाँ की माँग के सामने

झुकना पड़ा और वह स्यालकोट की जेल में भेजा दिया गया।

जिस समय मुलतान की जेल में उबेदुल्ला खाँ अन-शन कर रहा था, उस समय खान बन्धु हज़ारी बाग जेल में थे। उबेदुल्ला खाँ की तन्दुरुस्ती दिन ब दिन बिगड़ती जा रही थी। सरकार की तरफ़ से उबेदुल्ला खाँ की तन्दु-रुस्ती के बारे में कभी कोई खबर खान बन्धुओं को न दी गई। अखबारों में जो कुछ खबरें छपती थीं, उन्हीं के द्वारा खान बन्धुओं को उबेदुल्ला खाँ की तन्दुरुस्ती के बारे में कुछ न कुछ मालूम हो जाता था। अन्त में उन्हें अखबारों के द्वारा यह भी मालूम हुआ कि उबेदुल्ला खाँ की जीत हुई और सरकार ने सराहनीय सेवा करके उसकी जाती हुई ज़िन्दगी बचा ली।

वर्धा में

तीन साल के लम्बे समय के बाद जब दोनों भाई जेल से छूटे तब जमुनालाल जी बजाज के बुलाने पर वर्धा में जाकर रहने लगे। महात्मा गाँधी भी वहीं रहते थे। सीमा-प्रान्त में जाने को इजाज़त इन दोनों भाइयों को नहीं थी। इसलिए खानबन्धु अपने परिवार के साथ वर्धा में ही रहने लगे। वर्धा में महात्मा गाँधी के पास रहने में खान साहब को विशेष सुख मिलता था। कहना

तो यह चाहिए कि खान साहब ने अपने आपको महात्मा गाँधी के हाथों में सौंप दिया था। ये उन दिनों जो कुछ भी काम करते थे, महात्मा गाँधी की सलाह से करते थे। महात्मा गाँधी इन्हें हिदायतें देते थे, और ये उनका अक्षरशः पालन करते थे। जहाँ कहीं इन्हें लेक्चर देना होता था ये उसके बारे में भी महात्मा गाँधी जी से सलाह ले लिया करते थे।

वर्धा में रहते समय खान साहब ने संयुक्त प्रान्त, बङ्गाल और मध्य प्रान्त के जिलों का दौरा किया। इन जिलों के दौरों का कार्य क्रम स्वयं महात्मा गाँधी ने ही तैयार किया था। खान साहब अपने को राजनीतिक नेता के रूप में प्रगट नहीं करना चाहते थे। केवल एक मामूली सिपाही की हैसियत से काम करना चाहते थे। इसीलिये वे नेतागिरी के सभी कामों से हमेशा अपने को अलग रखते थे, स्वदेशी प्रदर्शिनी के उद्घाटन के लिये बम्बई वालों ने खान साहब से प्रार्थना की, लेकिन उन्होंने उसे भी नामंजूर कर दिया। अन्त में बम्बई वालों ने महात्मा गाँधी से सिफारिश की कि वे उद्घाटन करने के लिए खान साहब को राजी कर दें। अन्त में महात्मा गाँधी के कहने से खान साहब बम्बई गये। महात्मा गाँधी के कहने से ही खान साहब ने काँगरेस की कार्य-समिति की सदस्यता स्वी-की थी।

१६३४ ई० में जब पटने में कार्य-समिति की बैठक हुई, तब उसमें खान साहब भी शरीक हुये थे। लेकिन ये कार्य-समिति के वाद-विवादों में किसी तरह का भाग न लेते थे। वे एक मामूली कार्यकर्ता थे, वह सब से अलग ही रहते थे। इनसे जब किसी ने कहा, तब इन्होंने जवाब दिया, मेरी वहाँ क्या ज़रूरत है? मैं तो उन लोगों में हूँ, जो कार्य-समिति के फैसले का इन्तज़ार किया करते हैं। कार्य समिति जो फैसला करेगी, मैं उसे एक सिपाही की तरह मानूँगा।"

१६३४ ई० में लोग खान साहब को कांगरेस का सभापति बनाना चाहते थे। लेकिन खान साहब ने यह कह कर इन्कार कर दिया, कि मैं तो पैदाइशी सिपाही ही हूँ और जिन्दगी भर सिपाही की हैसियत से रहना भी चाहता हूँ। कहने का मतलब यह कि खान साहब सदा नेतागिरी से दूर रहे। ये काँगरेस के एक सच्चे सिपाही हैं। महात्मा गाँधी और महात्मा गाँधी की अहिंसा में इनका अटूट विश्वास है।

यहां बड़े भाई डाक्टर खान साहब की भी चर्चा कर देना अनुचित न होगा। छोटे भाई खान साहब तो महात्मा गांधी की इच्छानुसार काम में लगे हुये थे, और बड़े भाई डाक्टर खान साहब कर रहे थे रोगियों की सेवा। जमुनालाल बजाज़ तथा महात्मा गाँधी से मिलने के लिये

आने वाले रोगी मनुष्यों की सेवा सुश्रुषा खान साहब ही किया करते थे। वे आसपास के गाँवों में भी जाते थे और गाँव वालों का इलाज किया करते थे। इसके लिये प्रतिदिन दस पन्द्रह मील की यात्रा किया करते थे।

डाक्टर खान साहब को किसी भी काम से नफरत नहीं थी। रोगियों की सेवा करने में इन्हें बड़ा सुख मिलता था। ये मरीज़ के बिस्तरे पर बैठ जाते और प्रेम से उसे सेंक लगाया करते थे। शाक-सब्जी भी अपने हाथ ही से काटते थे। उधर खान साहब वर्धा के कन्या आश्रम की देख रेख करते थे। कन्या आश्रम की पढ़ाई और वहाँ के शुद्ध रहन सहन को देखकर खान साहब ने अपनी लड़की मेहरताज को भी उसमें भरती करने का निश्चय किया। उन दिनों मेहरताज डाक्टर खान साहब की अङ्गरेज पत्नी की देख-रेख में लण्डन में पढ़ रही थीं। खान साहब ने अपना यह निश्चय महात्मा गाँधी को सुनाया। महात्मा गाँधी बहुत खुश हुये। उन दिनों मीरा बहन इङ्गलैंड में थीं। पर वे शीघ्र ही हिन्दुस्तान आने वाली थीं। महात्मा गाँधी ने मीरा बहन को तार दिया, कि वे आने लगें तो अपने साथ मेहरताज को लेती आयें। परिणामतः १९३४ ई० की २२ वीं नवम्बर को मेहरताज वर्धा आ पहुँचीं, और कन्या आश्रम में पढ़ने लगीं।

मेहरताज डेढ़ साल के बाद अपने पिता से मिल गई

थीं। मेहरताज का छोटा भाई: अब्दुल अली देहरादून के कर्नल ब्राउन स्कूल में पढ़ता था। उसे खान साहब को देखे हुए चार साल हो गए थे। यू० पी० के दौरे के सिलसिले में खानसाहब जब देहरादून गए, तब चार साल के बाद अब्दुल अली उनका दर्शन कर पाया था। खान साहब उसे भी अपने साथ वर्धा लेते आये थे। एक तरह से खान साहब का पूरा परिवार ही वर्धा मे रहा करता था।

खान साहब महात्मा गाँधी और जमुनालाल बजाज में अधिक हिल-मिल गए थे। इन दोनों व्यक्तियों पर उनका अधिक विश्वास था; और इस समय भी है। अपने पारिवारिक मामलों में भी खान साहब महात्मा गाँधी से सलाह लिया करते थे। महात्मा गाँधी प्रतिदिन रामायण का पाठ करते थे। खान साहब महात्मा गाँधी की प्रार्थना में प्रतिदिन शामिल हुआ करते थे। उनके दिल को गाँधी जी की प्रार्थनाओं से बड़ी शान्ति मिलती थी। वे अक्सर हिन्दी की प्रार्थनाओं का उर्दू में अनुवाद कराके उनका पाठ किया करते थे।

फिर गिरफ्तारी

खान साहब जब बम्बई गये थे, तब उन्होंने वहां एक लेक्चर दिया था। यद्यपि वह लेक्चर बहुत मामूली
मगर तो भी सरकार की दृष्टि में वह एक भयानक ए
समझा गया, और सरकार ने खान साहब को गि

करने की बात सोच ली। किसी को यह यकीन न था कि खान साहब गिरफ़्तार किये जायेंगे। खुद खान साहब को भी अपनी गिरफ़्तारी की बाबत कुछ मालूम न था।

खान साहब जब बङ्गाल गए थे, तब उन्होंने बङ्गाल के देहातियों से यह वादा किया था कि हम फिर बङ्गाल आयेंगे; और आप लोगों की सेवा करेंगे। दो महीने पहले अपने बङ्गाल के दौरे में खान साहब ने देहातों में रहने वाले ग़रीब मुसलमानों की विपत्तियाँ देखी थीं। उनकी विपत्तियों को देखकर खान साहब को बड़ी तकलीफ हुई थी। इसीलिये खान साहब फिर बङ्गाल जाना चाहते थे, और ग़रीब मुसलमानों में खादी का प्रचार करना चाहते थे।

खान साहब ने अपना जो प्रोग्राम बनाया था, उसके अनुसार वे ६ दिसम्बर को बङ्गाल चले जाते मगर ग्राम-उद्योग संघ की कार्य-समिति का निर्माण होने वाला था इसलिये जमुनालाल जी बजाज ने उनसे १५ दिसम्बर तक के लिये रुक जाने को कहा। लेकिन पन्द्रह दिसम्बर के पहले ही खान साहब गिरफ्तार कर लिये गये। ७ दिसम्बर की शाम को पुलिस का डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट गिरफ्तारी का वारंट लेकर आ पहुँचा। खान साहब ने गिरफ्तारी का वारंट देखते ही कहा—"मैं तैयार हूँ।"

खान साहब ऐसे कामों के लिये हमेशा तैयार रहते हैं। गिरफ़्तार होने के पहले उन्हें इस बात का मौका दिया गया, कि वे थोड़ी देर तक अपने बच्चों, मित्रों तथा परिवार वालों से मिल लें। ७ दिसम्बर की शाम को खान साहब की गिरफ्तारी का हाल उनके बच्चों को जमुनालाल जी बजाज़ ने सुनाया था। पिता की गिरफ़्तारी का हाल सुनकर बारह वर्ष के छोटे से बच्चे ने जमुना लाल जी से पूछा, "जब आप और महात्मा जी आदि सब लोग आज़ाद हैं, तब मेरे पिता ही क्यों गिरफतार किये गये!" बच्चे की सकरुण बात सुनकर जमुनालाल जी की आँखों में आँसू भर आए थे, और उन्होंने बच्चे को तसल्ली देते हुये कहा था कि सरकार का कहना है, कि खान साहब ने बम्बई में राजद्रोह का भाषण दिया था।

खान साहब की गिरफ्तारी के समय महात्मा गाँधी भी मौजूद थे। महात्मा गांधी और खान साहब में उस समय जो थोड़ी सी बातचीत हुई थी, उससे खान साहब की गांधी जी के प्रति बड़ी गहरी श्रद्धा टपक रही थी। खान साहब बड़े खुश दिखाई दे रहे थे। बड़े भाई डाक्टर खान साहब के लिये छोटे भाई खान साहब की गिरफ़्तारी अवश्य एक दुख की बात थी। कारण कि अब तक जो दुःख सुख पड़ा था, डाक्टर खान साहब ने बराबर उसमें हिस्सा लिया था। तीन वर्ष तक दोनों भाई एक साथ हजारी-

बाग जेल में रहे थे। अब अकेले खान साहब को जेल जाता हुआ देख कर डाक्टर खान साहब को दुख होना ही चाहिये था। पर वश की बात क्या थी? डाक्टर खान साहब मन मसोस कर रह गए।

खान साहब ने अपनी गिरफ्तारी के समय अपने बच्चों से कहा, कि वे बहादुर बनें और महात्मा गाँधी तथा जमुनालाल जी बजाज से सादगी तथा आत्मसंयम के सबक पढ़ें। जेल जाते समय खान साहब बहुत खुश दिखाई दे रहे थे। लेकिन फिर भी उन्होंने अपने एक दिली दुख को प्रगट किया। उन्होंने जेल जाते समय बड़े ही तकलीफ के साथ कहा, कि मेरी बड़ी इच्छा थी कि बङ्गाल के गाँवों में रहने वाले ग़रीब मुसलमानों से मैंने जो वादा किया था, मैं उसको पूरा कर सकता। मैंने उनसे वादा किया था कि मैं उनके साथ रह कर उन्हीं के बीच काम करूंगा। अब मैं छोटी सी सेवा भी न कर सकूँगा। सीमा प्रान्त के बारे में मैं क्या कहूँ। यह मैं नहीं जानता, मैं चाहता हूँ कि मेरी गिरफ्तारी से जोश में आकर मेरे भाई कोई गड़बड़ न करें। अन्त में सबसे विदा होते हुये उन्होंने जमुनालाल जी बजाज और उनकी धर्म पत्नी जानकी देवी से कहा था कि मुझे पूर्ण विश्वास है, कि यह सब अल्लाह का अंश है, उसने मुझे इतने समय तक

 रक्खा, जितने समय के लिये उसे बाहर मेरा

उपयोग करना था। अब उसकी इच्छा है कि मैं अन्दर रह कर सेवा करूँ तो यही सही। जिसमें वह खुश रहे, उसी में मेरी भी खुशी है।"

नया ज़माना

खान साहब के जेल जाने के बाद ही हिन्दुस्तान में एक नया ज़माना आया। महात्मा गांधी ने कार्य समिति को यह सलाह दी की वह सत्याग्रह की लड़ाई बन्द करके कांग्रेस वालों को कौन्सिलों और एसेम्बली में भेजे। सत्याग्रह की लड़ाई तो पहले ही बन्द हो चुकी थी, मगर फिर भी लोग अपनी इच्छा के मुताबिक जेल जा रहे थे। पर ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम थी। महात्मा गाँधी की बात मान कर कार्यसमिति ने आज़ादी की लड़ाई एक तरह से बिलकुल बन्द कर दी, और काँगरेस कर्मियों को इस बात की इजाज़त देदी कि वे कौन्सिलों में जा सकते हैं। इसी बात को लेकर दिल्ली में काँगरेस कार्य-समिति की एक बड़ी सभा हुई थी, और उसमें यह निश्चय किया गया था कि काँगरेस कौन्सिलों के चुनाव में भाग ले।

अभी तक खान साहब जेल ही में थे। जेल में रहते हुये उन्हें करीब दो साल बीत चुके थे। इधर जब कांगरेस ने अपनी सत्याग्रह की लड़ाई बन्द कर दी, तब खान साहब जेल से रिहा कर दिए गए। खान साहब की रिहाई

पर देश के सभी नेताओं ने अपना हार्दिक हर्ष प्रगट किया था ।

अपने वतन में

खान बन्धुओं को सीमाप्रान्त में जाने की इजाज़त नहीं थी । सरकार ने उन्हें मातृ-भूमि की गोद से हटाकर बहुत दूर कर दिया था । दोनों भाई कई वर्षों से जेलों की दुनिया में घूम रहे थे । जब कभी बाहर भी आये तब सरकारी रोक होने के कारण अपनी मातृ-भूमि से दूर ही रहे । मातृ भूमि प्रेमी खान बन्धुओं के दिल में यदि इससे गहरा दुःख पैदा होता रहा हो तो आश्चर्य की बात क्या ?

खान साहब जब जेल से छूट कर आये तब कांग्रेस का कार्य-क्रम बदल चुका था । काँगरेस ने अपनी लड़ाई बन्द कर दी थी, और सरकार ने अपने कानून ढीले कर दिये थे । कांग्रेस और सरकार दोनों समझौते और मित्रता के एक रास्ते पर चल रहे थे । कांगरेस वाले कौन्सिलों के चुनाव की तैयारियां कर रहे थे । इस नवीन युग में खान बन्धुओं पर लगी हुई रोक उठा ली गई । वे फिर अपनी जन्म भूमि की गोद में जा पहुँचे । इतने दिनों के बाद खान-बन्धुओं ने उस जगह को देखी थी, जहाँ वे पैदा हुए थे, और जहाँ उन्होंने अपने बचपन के दिन बिताये थे । जन्म भूमि को देखकर खान बन्धुओं के दिल में कितनी खुशी हुई होगी ?

खान साहब और महात्मा गांधी

खान साहब सीमा-प्रान्त के गांधी कहे जाते हैं। इसी से समझ लेना चाहिये कि खान साहब महात्मा गांधी की ही एक दूसरी शकल हैं। महात्मा गांधी की जिन्दगी, उनकी सादगी, उनकी सचाई और उनकी अहिंसा में खान साहब दिल से विश्वास करते हैं। खान साहब खुद इस बात को स्वीकार करते हैं कि उन्होंने गाँधी जी की जिन्दगी से एक सबक सीखा है, और ऐसा सबक सीखा है, जिसका उनके हृदय पर अमिट रूप से प्रभाव पड़ गया है।

महात्मा गाँधी की अहिंसा पर खान साहब ने स्वयं एक स्थान पर कहा है—मुझ सरीखा कोई पठान या मुसलमान उसे मन्जूर करे, इसमें ताज्जुब की बात क्या है ? अहिंसा कोई नई चीज़ नहीं है। १००० वर्ष पहले जब पैगम्बर साहब मक्का में थे, तब उन्होंने बराबर इस पर अमल किया था, और उसके बाद भी वे सब लोग इस पर अमल करते रहे हैं, जिन्होंने किसी अत्याचारी के जुए को हटाना चाहा। लेकिन हमने इसको इतना भुला दिया है, कि जब महात्मा जी ने उसे हमारे सामने रक्खा, तब वह हमें बिलकुल अनोखा और अजीब मालूम हुआ।

खान साहब महात्मा गाँधी पर अधिक विश्वास और भरोसा करते हैं। कई ऐसे मौके आये हैं, जब उन्होंने पारिवारिक मामलों में भी महात्मा जी से सलाह ली

है। महात्मा जी की राय की खान साहब दिल से इज्जत करते हैं। इसीलिये वे हर एक काम में महात्मा जी की राय की सलाह लिया करते हैं। महात्मा जी भी खान साहब की बड़ी इज्जत करते हैं। महात्माजी ही नहीं, काँगरेस के सभी बड़े बड़े नेता दिल से खान साहब की प्रतिष्ठा करते हैं। खान साहब के त्याग ने हर एक आदमी के दिल पर उन्हें बिठा दिया है। लोगों ने कई बार चाहा, कि खान साहब कांगरेस के सभापति बनें पर खान साहब कांगरेस के सभापति बनने से हमेशा इनकार ही करते गए। खान साहब के इस बड़प्पन ने देश में उन्हें और भी अधिक आदरणीय बना दिया है। मुसलिम कांगरेसी नेताओं में खान साहब की इज्जत सबसे अधिक है। खान साहब एक अनोखे व्यक्ति हैं। ऐसे अनोखे व्यक्ति हैं, कि उनके समान व्यक्तियों पर संसार के राष्ट्र गर्व करते हैं।

खान साहब का महात्मा गाँधी और उनकी अहिंसा में अटूट विश्वास है। वे सब कुछ छोड़ सकते हैं, किन्तु अहिंसा को नहीं छोड़ सकते। अभी कांगरेस की कार्य-समिति ने जब अहिंसा के बन्धन को कुछ ढीला कर दिया, तब खान साहब ने कार्य-समिति की मेम्बरी तक से इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देते समय उन्होंने जो वक्तव्य दिया था, उससे उनके अहिंसक हृदय का भली भाँति परिचय मिलता है। देखिये:—

"कांगरेस की वर्किङ्ग कमिटी द्वारा पास किये गये कुछ प्रस्तावों से विदित होता है कि अहिन्सा का उपयोग वह केवल भारत की आज़ादी की लड़ाई के लिये सीमित कर रही है। इस बीच में मेरे लिये यह कठिन है, कि मैं कांगरेस की वर्किङ्ग कमेटी में रह सकूँ, इसलिये मैं उससे इस्तीफा दे रहा हूँ। जिस अहिन्सा में मैंने विश्वास रक्खा है, और जिसका प्रचार अपने खुदाई-खिदमतगार भाइयों में कराया है, वह बहुत व्यापक है। जब तक हम अहिन्सा के इस सबक को सीख नहीं लेते तब तक हम यह घातक झगड़े समाप्त नहीं कर सकते। चूँकि हमने अहिन्सा को ग्रहण किया है और अहिन्सा और खुदाई-खिदमतगारों ने अपने को प्रतिज्ञा बद्ध किया है; इसलिए इन झगड़ों को समाप्त करने में हम बहुत कुछ सफल हुये हैं। अहिन्सा ने पठानों का साहस बहुत बढ़ा दिया है। हम लोग सिवाय अहिन्सा के अन्य किसी उपाय से अपनी रक्षा वास्तविक और प्रभावशाली रूप से नहीं कर सकेंगे।"

अहिन्सा के लिये खान साहब के हृदय में जो भक्ति है, उस पर महात्मा गाँधी जी ने अपने एक लेख के द्वारा बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं:—
"जहाँ हर तरफ 'शुद्ध अहिन्सा' की होली जल रही है, वहाँ खान साहब की जीती जागती अहिन्सा कायम है। यह बात हमारे लिये चिराग जैसी रोशन है। खान साहब का

निवेदन मनन करने के काबिल है। खान साहब को शोभा भी यही देता है। खान साहब पठान हैं। पठान तो तलवार, बन्दूक साथ लेकर पैदा हुये हैं, ऐसा कहा जा सकता है।

"रौलट एक्ट की लड़ाई के ज़माने में जब खुदाई-खिदमतगार आमद हुये तब खान साहब ने उनके हथियार छुड़वा दिये। सरकार के साथ तो लड़ना ही था। लेकिन खान सहाब ने अहिंसा का सच्चा तजरुबा दूसरी जगह पाया। पठानों में बदला लेने का क़ानून ऐसा सख्त है, कि अगर एक खान्दान में खून हो गया हो तो उसका बदला खून से ही लेकर छुटकारा होता है। एक बार खून का बदला लिया तो फिर घून का बदला लेना होता है। इस तरह पीढ़ी दर पीढ़ी खून का बदला खून से लेने का कहीं अन्त ही नहीं आता था। यह भी हिंसा की हद और हिंसा का दिवाला था। क्योंकि इस तरह खून का बदला लेते लेते खान्दान बरबाद हो जाते थे। खान साहब ने पठानों की ऐसी बरबादी देखी और अहिंसा में उनकी बेहतरी पायी। उन्होंने सोचा, कि अगर मैं पठान लोगों को समझा सकूँ कि हमको सिर्फ खून का बदला नहीं लेना है, बल्कि खून को भूल जाना है, तो एक दूसरे से बदला लेना बन्द हो जायगा, और हम ज़िन्दा रह सकेंगे तथा ज़िन्दगी को कामयाब भी बना सकेंगे। यह नक़द का सौदा है। उनके अनुयायियों ने इस पर अमल किया।

अब ऐसे खुदाई खिदमतगार पाए जाते हैं, जो खून का बदला लेना भूल गये हैं। यह ताक़तवर की अहिंसा या सच्ची अहिंसा कही जा सकती है।

अगर खान साहब काँगरेस में रहते तो उनकी जिन्दगी का काम खाक़ में मिल जाता। वह पठानों से किस मुँह से कहते, कि तुम लड़ाई में भरती हो जाओ, वह बदला न लेने का क़ानून अब रद्द हुआ समझो, ऐसी भाषा पठान समझ ही नहीं सकते। वह तो तुरन्त यही जवाब देते, कि जर्मनी अपना बदला ले रहा है, इंगलैंड मुक़ाबिला कर रहा है। यह हार जायगा तो खुद लड़ाई की तैयारी करेगा। इसलिये इस लड़ाई में और हमारे खून का बदला खून से लेने में रत्ती भर फ़र्क़ नहीं। ऐसी दलीलों के सामने खान साहब की जुबान बन्द हो जाती, इसलिये उन्होंने अपना ही काम जारी रखना पसन्द करके काँगरेस से निकल जाने का फ़ैसला किया। खान साहब को अहिंसा का पैगाम पहुँचाने में कहाँ तब कामयाबी हुई है, वह मैं नहीं जानता। इतना ही जनाता हूँ, कि खान साहब की श्रद्धा दिमागी नहीं केवल दिल से निकली हुई है। इसलिये वह हमेशा कायम है। अब कब तक उनके चेले उनके तालीम में लगे रहेंगे, यह खुद खान साहब भी नहीं कह सकते और न इसकी उनको परवाह है। उनको तो अपना फर्ज पूरा करना है। परिणाम खुदा पर छोड़ दिया है। उनकी

अहिंसा का आधार कुरान शरीफ़ है। खान साहब पक्के मुसलमान हैं। वह लगभग एक साल तक मेरे साथ रहे। बावजूद बीमार रहने के उन्होंने न कभी नमाज कजा की न रोजा। खान साहब के दिल में दूसरे मजहबों के प्रति पूरा आदर है। जो पढ़ते या सुनते हैं, वह अमल में लाने के काबिल हो तो उस पर अमल करने में उन्हें देर नहीं लगती।"

हिन्दू-मुस्लिम एकता

खान साहब एक ऊँचे दर्जे के मुसलमान हैं। वे इस्लाम के सच्चे प्रेमी होते हुए भी दूसरे मजहबों से प्रेम करते हैं। वे अपने मजहब में विश्वास रखते हुए हर एक मजहब को आदर व इज्जत की निगाह से देखते हैं। अपने इसी विचार के कारण इन्होंने गीता, बाइबिल और ग्रन्थ साहब का प्रेम से अध्ययन किया था। गीता को तो खान साहब बड़े आदर से पढ़ते हैं। उनका कहना है कि गीता बार-बार पढ़ने से भी तबीयत नहीं भरती।

खान साहब हिन्दू-मुस्लिम एकता के बड़े पक्षपाती हैं। ये हिन्दू-मुस्लिम के बीच में जो भेद-भाव है, उसे बिलकुल दूर कर देना चाहते हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकता के सम्बन्ध में खान साहब के बड़े ऊँचे विचार हैं। खान साहब कहते हैं कि जब हम सफर करते हैं, तब हमें हिन्द

पानी, मुसलमानी पानी, हिन्दू चाय और मुसलमानी चाय की आवाजें हैरान कर देती हैं। भला हिन्दू मुसलमान को एक दूसरे के बर्तन से साफ पानी पीने में कोई एतराज क्यों होना चाहिये ?

खान साहब हिन्दू और मुसलिम धर्म के बारे में एक दूसरी जगह कहते हैं—इस्लाम और हिन्दू धर्म दोनों ही सफाई पर सबसे ज्यादा जोर देते हैं। जहाँ तक सफाई का सवाल है, उसमें कोई फर्क नहीं है, और न हो ही सकता है। पर उसके आचरण में मिलता है। इस्लाम में सूखी दातौन का इस्तेमाल बताया गया है, जब कि हिन्दू धर्म में ताजी हरी दातौन करने का आदेश है। हिन्दू धर्म रोज या कई बार नहाने पर जोर देता है, जब कि इस्लाम हफ्तों में कम से कम एक बार नहाने को कहता है ? ये उदाहरण क्या साबित करते हैं ? इनसे यही जाहिर होता है, कि हिन्दू धर्म गङ्गा से सींची हुई जमीन में पैदा हुआ, जहाँ पानी की कोई कमी न थी, और इस्लाम ऐसे रेगिस्तान में पैदा हुआ, जहाँ कभी कभी कई दिनों तक एक बूँद भी पानी नहीं मिलता। इसलिये इसका यह मतलब नहीं, कि मुसलमान रोज नहाये या ताजी दातौन करे तो वह इस्लाम के खिलाफ होगा।

खान साहब के इन्हीं सच्चे विचारों के कारण बहुत से [मुस]लमान खान साहब की निन्दा किया करते हैं। पर

खान साहब कभी इसकी परवाह नहीं करते। वे तो सच्चे दिल से हरएक इन्सान की सेवा किया करते हैं। खान साहब का कहना है, कि हरएक धर्म के आदमी को अपने धर्म में विश्वास करते हुये भी दूसरे धर्म की उचित और फायदेमन्द बातों को मानना ही चाहिये।

खान साहब दूसरे धर्म वालों का बहुत ख्याल रखते हैं। वे अपने तईं किसी की धार्मिकता को चोट नहीं पहुँचाना चाहते। खान साहब जब डेरा गाजी खाँ जेल में थे, तब उन्होंने गोश्त खाना इसलिये छोड़ दिया था, कि उनके गोश्त खाने से हिन्दू कैदियों को तकलीफ होती थी। महात्मा गांधी के पुत्र देवदास गांधी जब खान साहब के मेहमान हुये थे, तब खान साहब ने उनका ख्याल करके अपने घर में गोश्त का मँगाना ही छोड़ दिया था!

खान साहब की जिन्दगी

खान साहब की जिन्दगी एक बड़े ऊँचे दरजे की जिन्दगी है। इतने ऊँचे दरजे की जिन्दगी है, कि यदि खान साहब को एक ऊँचे दरजे का फकीर कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। खान साहब के हर एक काम से फकीरी ही जाहिर होती है। खान साहब का त्याग बहुत सराहनीय है। बिना किसी फकीर के कोई इतना बड़ा त्याग कर ही नहीं सकता। दुनिया के बड़े से बड़े नेता के

हृदय में तृष्णा और पद-गौरव का लोभ छिपा हुआ पाया गया है, पर खान साहब दुनिया के बड़े-बड़े नेताओं में भी एक अनोखे पुरुष हैं। इन्होंने पद-गौरव के लोभ से अपने को इतना दूर रक्खा है, कि उतना कोई क्या रख सकेगा ? खान साहब ऐसा कांगरेस का बड़ा नेता अभी तक कांगरेस का सभापति न बन सका। यह बात नहीं कि लोगों ने खान साहब की इज्जत नहीं की, बल्कि सच बात तो यह है कि खान साहब नेता के रूप में देश के सामने आना ही नहीं चाहते। देश ने जब-जब खान साहब को काँगरेस का सभापति बनाना चाहा, तब-तब खान साहब ने इन्कार कर दिया। खान साहब इसके जवाब में कहते हैं, कि मैं तो पैदाइशी सिपाही हूँ और सिपाही की ही हैसियत से अपनी जिन्दगी बिताऊँगा।

खान साहब बड़े सादे चाल-ढाल से रहते हैं। यदि खान साहब को कोई अपरिचित आदमी देखे तो शायद ही उन्हें पहचान सकेगा। खान साहब ने गरीबों में अपने को मिला दिया है। एक बार खान साहब बारडोली गए हुये थे। स्टेशन पर बल्लभ भाई पटेल उनका स्वागत करने के लिए गये थे। जब गाड़ी स्टेशन पर आई, तब बल्लभ भाई जी उन्हें फर्स्ट क्लास और इण्टर क्लास के डिब्बों में खोजने लगे। मगर खान साहब उतरे एक

तीसरे दर्जे के डिब्बे से। उनके पास सामान वगैरह भी ज्यादा न था। एक हैण्ड बेग, दो एक धोती और एक टाइम टेबुल को छोड़कर और कुछ भी न था। खान साहब के इस सादे जीवन को देखकर बल्लभ भाई जी को भी ताज्जुब करना पड़ा था।

खान साहब बड़े-बड़े कष्टों को हँसते और मुसकुराते हुए बर्दाश्त करते हैं। उनका दिल बड़ा बहादुर और साहसी है। अपने कर्तव्य पालन में वे कभी किसी प्रकार की कमी नहीं होने देते। कर्तव्य-पालन के रास्ते पर वे किसी का एहसान भी नहीं चाहते। जेलों में खान साहब को बड़ी-बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ा। पर उन्होंने कभी जेल के कायदों का उलंघन नहीं किया। खान साहब के सामने जितनी मुसीबतें आई, सबको उन्होंने एक वीर की तरह बर्दाश्त किया। सारे हिन्दुस्तान को अपने इस महान नेता पर गर्व है।

दो साल के दिन

खान साहब अब्दुल गफ्फार खाँ जहाँ देश के एक बहुत बड़े नेता हैं. वहाँ उनमें इन्सानियत का हिस्सा भी बहुत ज्यादा है। वे राजनीति में रहते हुये भी राजनीतिक झमेलों से अक्सर दूर रहा करते हैं। उनके सम्बन्ध में उनके एक मित्र ने ठीक ही लिखा है. कि खान साहब

राजनीति में केवल इसीलिये भाग लेते हैं, कि उनसे हिन्दुस्तान की गरीब जनता को अंगरेजी राज्य से छुटकारा मिल सकेगा। सचमुच गरीबों की भलाई के लिये ही खान साहब राजनीति में भाग ले रहे हैं। नहीं, यों तो वे एक ऊँचे दरजे के फकीर हैं। यही कारण है कि आज राजनीति में जिस चीज का त्याग हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा नेता भी नहीं कर सका है, उसकी ओर खान अब्दुल गफ्फार खाँ ने कभी आँख उठाकर देखा तक नहीं, और जब कभी वह चीज अपने आप उनके पास आती हुई दिखाई पड़ी, तो उन्होंने अपने आप उसे लौटाल दिया। वह चीज थी, कांगरेस के भीतर सबसे बड़ा नेता होना। खान साहब अगर चाहते तो देश में उनका वही स्थान होता, जो गाँधी जी का है। पर खान साहब ने कभी इस चीज की इच्छा तक न की। वे सचमुच गरीबों के एक बहुत बड़े खिदमतगार हैं, और आज जब देश के बड़े-बड़े नेता चुनाव के चक्र में फंसे हुये सच झूठ कह रहे हैं, तब खान साहब चुनाव के दलदल से दूर गरीबों की सेवा में ही अपना समय बिता रहे हैं।

भारत के छः प्रान्तों की तरह सीमा प्रान्त में भी कांगरेस मन्त्रि-मंडल स्थापित हुआ था। किन्तु कुछ दिनों के बाद जिस तरह सभी प्रान्तों के मन्त्रियों ने इस्तीफा दे दिया, और अन्य प्रान्तों की तरह सीमा प्रान्त में भी

गवर्नर शासन चालू हो गया। पर सीमा प्रान्त में कुछ ही दिनों तक गवर्नरी शासन चालू रहा। कांगरेसी मन्त्रियों के इस्तीफ़ा के बाद मुसलिम लीग ने सीमाप्रान्त में अपनी मिनिस्टरी बनाई; और जब देश के सारे बड़े-बड़े नेता जेल में बन्द थे, तब सीमा प्रान्त में मुसलिम लीग की सरकार हुकूमत कर रही थी।

यों तो खान साहब का विश्वास अँगरेजी कानूनों के पीछे चलने वाली इन मिनिस्टरियों में नहीं है, पर जब सीमाप्रान्त में कांगरेस की मिनिस्ट्री थी, तब वे मन्त्रियों के द्वारा गरीबों की अधिक से अधिक सहायता कराया करते थे। कांगरेसी मन्त्रियों के इस्तीफे के बाद खान साहब गरीबों और असहायों की सेवा में लग गये। उन्होंने सारे सीमा प्रान्त का दौरा किया, और खुदाई खिदमतगारों के सङ्गठन मे अपना समय लगाया। १६४० से लेकर १६४२ तक अर्थात दो साल तक खान साहब इन्हीं कामों में लगे रहे, और एक सच्चे सिपाही की भाँति कांगरेस की आज्ञाओं का पालन करते रहे।

पुनः नजरबन्द

दो साल के बाद १६४२ में पुनः देश में एक राजनीतिक आँधी आई। दो साल पहले से ही संसार में

लड़ाई छिड़ गई थी, और बिना हिन्दुस्तान से सलाह लिये हुये ही अँगरेजों ने इस लड़ाई में हिन्दुस्तान को भी शामिल कर लिया था। इसी बात को लेकर कांगरेस के नेताओं और सरकार के बीच में बरमों से चख-चख चल रही थी। आखिर १६४२ के अगस्त महीने में बम्बई के आल इंडिया कांगरेस कमेटी की बैठक में जो प्रस्ताव पास होने वाला था, उसके पास होने से पहले ही देश के सभी बड़े-बड़े नेता गिरफ़्तार कर लिये गये। और कांगरेस एक गैर कानूनी संस्था घोषित कर दी गई। खान साहब के छोटे भाई डाक्टर खान जो बम्बई आये हुये थे, वे भी गिरफ़्तार कर लिये गये। खान साहब भी अपने प्रान्त में गिरफ्तार करके जेल पहुँचाये गये। और लगभग तीन साल तक नजर बन्द की हालत में जेल में रहे।

पुनः काँगरेस की मिनिस्ट्री

तीन साल के बाद १६४५ में दुनिया में फिर एक नया अध्याय शुरू हुआ, अर्थात् लड़ाई में अँगरेजों की जीत हुई और जापान तथा जर्मनी हार गये। अँगरेजों ने इस जीत के परिणाम स्वरूप कांगरेस के नेताओं को धीरे-धीरे जेल से छोड़ना आरम्भ कर दिया। खान साहब के भाई डाक्टर खान जेल से रिहा कर दिये गये, और उनके साथ ही साथ उनके भाई भी छोड़ दिये गये, किन्तु खान साहब अब भी जेल में ही थे।

डाक्टर खान ने जेल से निकल कर पुनः सीमा प्रान्त में कांगरेस की मिनिस्ट्री बनाने की कोशिश की, और इन्हें इस काम की सफलता भी प्राप्त हुई। उन्होंने अपने साथियों की सहायता से सीमाप्रान्त से मुसलिम लीगी सरकार को हटाकर पुनः कांगरेस की सरकार स्थापित की। डाक्टर खान के इस प्रयत्न की कांगरेसी क्षेत्रों में बड़ी तारीफ की गई और मुसलिम लीग को इससे बड़ा धक्का लगा।

पुनः जेल से बाहर

सीमाप्रान्त में कांगरेस की सरकार स्थापित होने के साथ ही साथ खान साहब की रिहाई का आदेश जारी हुआ; किन्तु खान साहब ने जेल से बाहर निकलने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, कि जब तक उनके सभी साथी जेल से नहीं छूट जाते, तब तक वे जेल में ही रहेंगे। परिणामतः कांगरेस की सरकार ने सब की रिहाई का हुक्म जारी किया और सबके रिहा हो जाने के बाद ही खान साहब जेल से बाहर निकले।

जेल से बाहर निकल कर खान साहब पुनः गरीबों की सेवा में लग गये। कांगरेस के बड़े बड़े नेता जेल से बाहर निकल कर चुनाव में लग गये। किन्तु खान साहब चुनाव से अलग ही रहे। उन्होंने इस सम्बध में एक

वक्तव्य भी दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि उनका चुनाव में कोई विश्वास नहीं है। फिर भी उनका आशीर्वाद तो कांगरेस को प्राप्त ही था। इसलिए सीमाप्रान्त के चुनाव में कांगरेस की ही जीत हुई और फिर सीमाप्रान्त में कांगरेस की सरकार बनने जा रही है।

पर खान साहब को इससे क्या वास्ता? उनकी निगाह तो गरीबों की सेवा और गुलामी की जंजीर को तोड़ने की ओर लगी हुई है। वे एक सच्चे पठान हैं। उन्हें यह मंजूर नहीं है, कि वे जूठा निकला अपने मुंह में डालें। अभी अभी गत ४ मार्च को उन्होंने सीमाप्रान्त के कार्य-कर्त्ताओं के बीच में भाषण देते हुये कहा है :—

"हमारा पहला और खास उद्देश्य देश को स्वतंत्र करना है। आर्थिक, सामाजिक और नैतिक पतन का कारण गुलामी है। जब तक विदेशी हुकूमत ख़तम नहीं होती, हम गरीब जनता की भलाई नहीं कर सकते।"
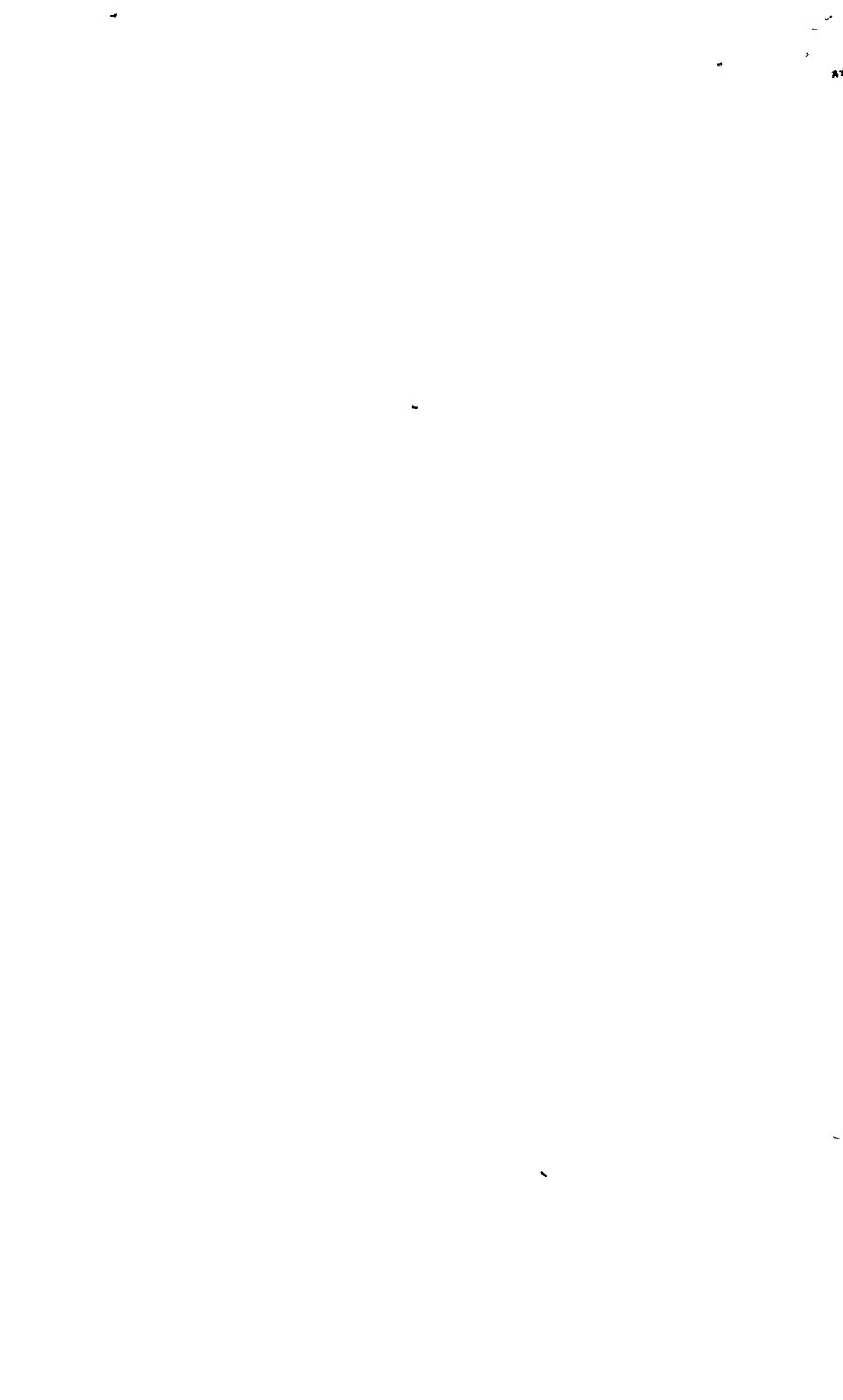
सचित्र, मनोरंजक, शिक्षाप्रद, सरल, रोचक, जीवन को उठाने वाली महापुरुषों की जीवनियाँ। मू० ।≈)

१—श्रीकृष्ण
२—महात्मा बुद्ध
३—रानाडे
४—अकबर
५—महाराणा प्रताप
६—शिवाजी
७—स्वामी दयानन्द
८—लो० तिलक
९—जे० एन० ताता
१०—विद्यासागर
११—स्वामी विवेकानन्द
१२—गुरु गोविन्दसिंह
१३—वीर दुर्गादास
१४—स्वामी रामतीर्थ
१५—सम्राट अशोक
१६—महाराज पृथ्वीराज
१७—श्रीरामकृष्ण परमहंस
१८—महात्मा टाल्स्टाय
१९—रणजीतसिंह
२०—महात्मा गोखले
२१—स्वामी श्रद्धानन्द
२२—नेपोलियन
२३—बा० राजेन्द्रप्रसाद
२४—सी० आर० दास
२५—गुरु नानक
२६—महाराणा सांगा
२७—प० मोतीलाल नेहरू
२८—प० जवाहरलाल नेहरू
२९—श्रीमती कमलानेहरू
३०—मीराबाई
३१—इब्राहीम लिंकन
३२—अहिल्याबाई
३३—मुसोलिनी
३४—हिटलर
३५—सुभाषचन्द्र बोस
३६—राजा राममोहनराय
३७—लाला लाजपत राय
३८—महात्मा गांधी
३९—महामना मालवीय जी
४०—जगदीशचन्द्र बोस
४१—महारानी लक्ष्मीबाई
४२—महात्मा मेजिनी
४३—महात्मा लेनिन
४४—महाराज छत्रसाल
४५—अब्दुल गफ्फार खाँ
४६—मुस्तफा कमालपाशा
४७—अबुलकलाम आज़ाद
४८—स्टालिन
४९—वीर सावरकर
५०—महात्मा ईसा
५१—वीर केसरी हम्मीरदेव
५२—डी० वेलरा
५३—गैरीबाल्डी
५४—स्वामी शंकराचार्य
५५—सी० एफ० एन्ड्रूज़
५६—गणेश शङ्कर विद्यार्थी
५७—डा० सनयात सेन
५८—समर्थ गुरु रामदास
५९—महारानी सयोगिता
६०—दादाभाई नौरोजी
६१—सरोजिनी नायडू
६२—वीर बादल
६३—पट्टाभि सीतारमैया
६४—देवी जोन
६५—प्रिन्स बिस्मार्क
६६—कार्ल मार्क्स
६७—कस्तूर बा
६८—सरदार पटेल

महाराज छत्रसाल

छात्रहितकारी पुस्तकमाला दारागंज, प्रयाग।

बाल-चरितमाला सं० ४३

महाराज छत्रसाल
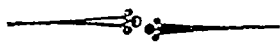
लेखक

जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी-भूषण, विशारद

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

महाराज छत्रसाल

परिचय

जिस समय भारतवर्ष में मुगल-साम्राज्य का अभ्युदय-काल था, उसके प्रखर तेज से हत्-बुद्धि हो भारतवासी अपने बल और पराक्रम को भूलकर परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ते जा रहे थे, उस समय अपने देशवासियों की हीनावस्था से दुखित हो महाराष्ट्र में शिवाजी ने हिन्दुओं की शक्ति संगठित कर उन्हें स्वतन्त्रता के झंडे के नीचे खड़ा कर यश प्राप्त किया था। शिवाजी के उद्योग से उत्साहित और प्रभावित होकर मध्य-भारत में बुन्देलखंड-केसरी महाराज छत्रसाल ने मुगल-सत्ता को दबाकर हिन्दुओं के स्वतंत्रता-प्राप्ति के उद्योग में जितनी सफलता प्राप्त की उसे बुन्देलखंड के निवासी महाराज छत्रसाल के प्रति आज भी आदर-भाव प्रकट कर व्यक्त करते हैं। महाराज छत्रसाल का उद्योग यद्यपि बुन्देलखंड में ही दिखाई पड़ा, परन्तु उसका उद्देश्य किसी संकुचित क्षेत्र या जाति के लिए ही सीमित नहीं था। वह विदेशी सत्ता को ध्वंस कर स्वराज्य स्थापित करने के लिए देश

भर के लिए था। यदि उन्हें कुछ अधिक सहायता मिली होती या शिवाजी तथा उनके पीछे वैसे ही योग्य उत्तराधिकारी हुए होते जो सम्मिलित प्रयत्न कर महाराष्ट्र तथा बुन्देलखंड में सफल बन कर देश के अन्य भूभागों में सतत स्वातंत्र्य-संग्राम जारी रखते तो भारत में अवश्य स्वतंत्र साम्राज्य की स्थापना हुई होती। हमें यह देखने का सौभाग्य तो प्राप्त नही हो सका, परन्तु इस कारण स्वदेश के लिए आजीवन युद्ध करने वाले छत्रसाल ऐसे वीरों का गौरव सदा अक्षुण्ण ही रहेगा। महाराज छत्रसाल के सम्बन्ध में कुछ जानने के पहले हमें उनके वंश और बुन्देलखंड के सम्बन्ध में कुछ जानना आवश्यक होगा, जहाँ उन्होंने आजीवन स्वातंत्र्य संग्राम जारी रक्खा।

बुन्देलखंड तथा बुन्देले

बुन्देलखंड एक पहाड़ी प्रदेश है, जिसमें ओरछा, दतिया, पन्ना, बिजावर, छत्तरपुर, चरखारी तथा अजैगढ की रियासतें तथा बहुत सी जागीरें तथा अंगरेजी इलाके के हमीरपुर, झांसी, जालौन तथा बांदा के जिले शामिल हैं। प्रचीन-काल में शासन प्रबन्ध की दृष्टि से मध्य-प्रांत के सागर और दमोह जिले भी इसी में थे। इस प्रदेश के पश्चिम की ओर मालवा है और उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण की ओर यमुना तथा विन्ध्या पर्वत से घिरा हुआ है।

इस प्रदेश पर अनुमानतः पहले यहाँ के मूल निवासी गोंड और गूजर जातियों का आधिपत्य था। आर्यों के आगमन पर यहाँ से उनका आधिपत्य हटा होगा। इन बातों का कुछ पता नहीं है। आज से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व परिहार क्षत्रियों का यहाँ शासन होने का उल्लेख मिलता है। परिहारों के बाद चन्देलों का कुछ समय तक शासन था। कलिंजर का प्रसिद्ध किला चन्देल राजाओं ने ही बनवाया था। चन्देलों के पराजित होने पर पृथ्वीराज चौहान का प्रभुत्व यहाँ पर हुआ, परन्तु उनके पराजित होने पर सारा प्रदेश बहुत छोटी छोटी रियासतों में बट गया जिन में अधिकांश खंगार क्षत्रियों के आधीन थीं। खंगारों के पराभव पर बुन्देलों ने यहाँ आकर अपना आधिपत्य जमाया। उन्हीं के वंशज आज भी बुन्देलखंड कि रियासतों पर राज्य कर रहे हैं।

इन्हीं राजाओं में रुद्रप्रताप नाम का एक प्रतापशाली शासक हुआ जिसने बड़ा नाम पैदा किया। सन् १५०१ से १५३३ ई० तक इसका राज्य-काल था। इसने ओरछा को बसा कर सन् १५३० ई० में अपने अंतिम समय में राजधानी बनाया।

कहा जाता है कि रुद्र प्रताप बड़े पराक्रमी राजा थे। उन्हें आखेट का बड़ा शौक था। एक बार आखेट करते सघन वन में पहुँच जाने पर उन्होंने एक गाय पर

एक बाघ को आक्रमण करते देखा। उसे देख गाय की रक्षा करने के लिये ये बाघ पर झपट पड़े। बाघ से इनसे लड़ाई होने लगी, जिसमें इन्होंने उसे मार डाला परन्तु बाघ ने भी इन पर चोट की थी। उस चोट से इनकी भी वहीं मृत्यु हो गई। इनके बारह पुत्र थे।

अकबर के सिंहासनारूढ़ होने पर ओरछा पर मुगलों का आक्रमण हुआ और बुन्देलों का राज्य उनके आधीन हो गया। कुछ समय तक मुगलों का शासन रहने पर रुद्रप्रताप के पौत्र वीर सिंह जू देव ने अकबर के पुत्र सलीम की कृपा से ओरछा का राज्य पुनः प्राप्त किया। सलीम अकबर से असन्तुष्ट था, इसलिए उसने उसके परम मित्र अबुलफ़जल को वीरसिंह जू देव द्वारा ग्वालियर के समीप मरवा डाला। अकबर के बाद जहाँगीर नाम से गद्दी पर बैठने पर उसने इसके बदले ओरछा का राज्य वीरसिंहजू देव को दे दिया। वीरसिंह जू देव बड़े वीर और प्रतापी राजा थे। उन्होंने बाइस वर्ष तक बड़ी शान से राज्य किया। उनके समय में राज्य का विस्तार भी हुआ और बड़े बड़े राज-भवन, दुर्ग तथा मंदिर बने। झांसी का प्रसिद्ध किला भी इन्हीं का बनवाया हुआ है।

चम्पतराय

चम्पतराय ओरछा के प्रतापशाली राजा रुद्र प्रताप

के तृतीय पुत्र उदयजीत के प्रपौत्र थे। रुद्र प्रताप के मरने पर ओरछा का राज्य तो उनके वंशजों को मिला था, किन्तु छोटे पुत्रों को जागीरें मिली थीं, उनमें उदयाजीत को महेवा की जागीर मिली थी। महेवा की वार्षिक आय बारह हजार रुपये था, परन्तु उनके बाद पुत्रों और पौत्रों में बटत बटते चम्पतराय तक पहुँचते यह नाम मात्र को रह गई था।

चम्पतराय एक उद्भट व्यक्ति थे। उनका जीवन बड़ा तूफान था। उन्होंने इस साधारण अवस्था में रह कर बुन्देलखण्ड की स्वाधीनता का युद्ध प्रारम्भ कर अपने जीवनकाल में इस ओर प्रदेश को एक सूत्र में बाँधने की कल्पना की थी। उनकी यह कल्पना का फल प्रत्यक्ष रूप में तो उनके जीवन के अन्त में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा, परन्तु जिस वृक्ष का बीजारोपण उन्होंने प्रारम्भ किया उसका अंकुर भी उनके जीवन-काल में न दिखाई पड़ने पर उनके पुत्र महाराज छत्रसाल के प्रयत्न से वृक्ष-रूप में खड़ा दिखाई पड़ा।

जिस समय ओरछा की शक्ति निर्बल मालूम पड़ रही थी, शाहजहाँ ने बुन्देलों को निर्बल बनाने के लिए मुगल-सेनापतियों के आधीन बुन्देलखंड पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी। चम्पतराय से यह न देखा गया। देश की स्वातंत्र्य-भावना ने उन्हें उत्तेजित किया

वीर बुन्देले रण-आह्वान को सुन कर स्वतंत्रता की वेदी पर आहुति चढ़ाने के लिए जुटने लगे। मुगलों की शक्ति-शाली सेना का स्वातंत्र्य-वीरों ने सामना किया। पहली बार बुन्देले पराजित हुए। चम्पतराय का ज्येष्ट पुत्र सारिवाहन एक जगह बहुसंख्यक शत्रुओं से घिर गया और अभिमन्यु की तरह युद्ध कर १४ वर्ष की अवस्था में मारा गया।

एक बार पराजित होकर और पुत्र को खोकर भी चम्पतराय शान्त नहीं हुए। उन्होंने अपने सैनिकों को लेकर शाही चौकियों और मुगलों के इलाके के गाँव लूटना प्रारम्भ किया। शाही लश्कर पर भी उनके हमले होते रहे, इस पर मुगल सम्राट ने अपनी सेना फिर धावा करने के लिए भेजी। इस बार इनको चम्पतराय के सैनिकों से पराजित होकर लौटना पड़ा। पहले मुगल-सम्राट शाहजहाँ ने ओरछा की गद्दी पर जुझारसिंह के बाद देवी सिंह नाम के एक बुन्देले को बैठाया था, जिससे ओरछा पर मुगलों का प्रभुत्व बना रहे परन्तु चम्पतराय के दल के लोग जुझार-सिंह के शिशु पुत्र पृथ्वीराज को राजा मानकर युद्ध करते रहे। पृथ्वीराज को शाहजहाँ ने कैद कर ग्वालियर के किले में बन्द कर दिया था। जब उसने अपनी सेना को बुन्देलों से पराजित होते देखा तो विवश होकर ओरछे की गद्दी पर जुझारसिंह के छोटे भाई पहाड़सिंह को बैठा दिया।

चम्पतराय ने बुन्देलों की शक्ति बढ़ाने का जो उद्योग प्रारम्भ किया था वह बुन्देलखंड को केवल स्वाधीन करने की भावना से, किन्तु दुर्भाग्यवश पहाड़सिंह ने यह धारणा बांधी कि वे शक्ति बढ़ा कर उनकी जगह राजा बनने के इच्छुक हैं। चम्पतराय के पराक्रम के कारण सारे बुन्देलखंड मे उनकी कीर्ति तो फैल ही रही थी। किन्तु ओरछा वाले इसको सहन न कर सके। पहाड़ सिंह की स्त्री महारानी हीरादेवी चम्पतराय से विशेष रूप से ईर्षा रखने लगी थीं। उनकी समझ में ओरछा नरेश के आगे महेवा के एक मामूली नाम-मात्र के जागीरदार चम्पतराय का यश-विस्तार असहनीय था।

कहा जाता है कि इसी ईर्षा के वशीभूत हो चम्पतराय का प्राणान्त करने का विचार कर महारानी ने प्रकट रूप से मुगलों से विजय पाने पर हर्ष प्रकट कर उनका आदर करने के लिए उन्हें महल में भोजन करने के लिए निमंत्रण दिया। चम्पतराय के साथ उनके भाई भीम भी निमंत्रण में सम्मिलित हुए। किसी शुभचिंतक व्यक्ति ने रानी की यह चाल भीम से बतला दी। भीम ने विष मिली थाली अपने भाई के सामने से हटाकर स्वयं भोजन कर लिया और अपनी थाली उनके सामने कर दी। वे जानते थे कि बुन्देलखंड को स्वाधीनता के संग्राम

के लिए उनकी अपेक्षा चम्पतराय के पराक्रमी जीवन की अधिक आवश्यकता है।

परन्तु इतने मे ही महारानी की रक्त-पिपासा शान्त नहीं हो सकी, एक दिन रात को एक आदमी को चम्पतराय का शिरच्छेद कर देने के लिए उन्होंने भेजा। संयोग वश उसमें भी सफलता नहीं मिली। जागरण हो जाने से वह आदमी लौट आया। इस तरह पग-पगपर स्वदेशवासियों, अपने परिजनों द्वारा ही जीवित रह सकना कठिन देख कर चम्पतराय ने मुगल दरबार की ओर दृष्टि फेरी। शाहजहाँ ने उनको तुरन्त दरबार में बुला कंधार विजय करने के लिए सेना-नायक बनाकर भेज दिया। मुगलसेना के लिए वहाँ विजय पाना कठिन हो रहा था। चम्पतराय ने अपने रण-कौशल से कंन्धार पर विजय प्राप्त कर ली। वहाँ से लौटने पर उनका दरबार में बड़ा मान हुआ। उन्हें कौंच की जागीर भी मिली।

चम्पतराय की इस वृद्धि से जलकर ओरछा-नरेश पहाड़सिंह ने उनके विरुद्ध दरबार में शिकायत करना शुरू किया। उस समय शाहजहाँ का अन्तिम-काल था और उसके पुत्र दारा के हाथ में शासन-सूत्र था। दारा से प्रयत्न कर पहाड़सिंह ने कौंच की जागीर छिनवाकर स्वयं ले ली। शाहजहाँ के मरने पर राज्य के लिए उसके पुत्रों में झगड़ा उत्पन्न हुआ। औरंगजेब भी दक्षिण भारत से

अपने साथ सेना लेकर दिल्ली की ओर बढ़ा। दारा ने उसकी सेना को मार्ग में ही रोकने के लिए अपनी सेना बढ़ाई। इस अवसर पर औरंगजेब ने चम्पतराय को सहायता देने के लिए आमंत्रित किया। चम्बल के तट पर दोनों मुगल सेनाएँ डटी थीं। चम्पतराय ने अवसर पाकर अपनी सेना की सहायता से दारा को पराजित कर दिया और एक बार फिर मुगल दरबार में उनका सम्मान बढ़ा। पहले से भी अधिक जागीर उन्हें मिली और बारह हज़ारी मनसब (बारह हजार घुडसवारों के सेना-नायक का पद) भी मिला।

परन्तु एक स्वाभिमानी, स्वातंत्र्यप्रिय वीर मुगल-सम्राट का कृपा-पात्र कब तक रह सकता था, थोड़े ही समय पश्चात् औरंगजेब की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसका कारण यह था कि औरंगजेब को अपने तीन भाइयों के दबा चुकने पर राज्य के अधिकार पर भरोसा हो सकता था। दारा पराजित हो चुका था, मुराद उसके बहकावे में आ चुका था परन्तु शुजा अपनी सेना लिए तैयार था। उसका सामना करने बंगाल जाने के लिए चम्पतराय की बुलाहट हुई। इसके लिए सख्त आज्ञा निकली। चम्पतराय ने उसकी कुछ परवा न की। उन्होंने मुगलों की इतनी सहायता करने पर भी इस तरह का व्यवहार देख अपना बड़ा अपमान समझा। इस पर औरंगजेब से

शत्रुता मोल लेकर वे अपनी जागीर और दरबार का पद खो देने के लिए विवश हुए। इस अपमान ने उनके आत्म-गौरव और स्वदेशाभिमान को उभाडा। इसके लिए उन्होंने आजीवन मुगलों का विध्वंस करने का प्रयत्न करने में बिताने का निश्चय किया, परन्तु सम्राट की क्रोधाग्नि और अपने वंश के लोगों के द्वेष के कारण उनको कहीं आश्रय नहीं दिखायी पड़ी। उनके अनुयायी भी कुछ नहीं रह गए थे। परिस्थितियों के वशीभूत होकर उन्होंने बीहड़ अरण्य को ही अपना निवास-स्थान बनाया। अपनी प्राण-रक्षा के लिए चारों तरफ मारे-मारे फिरने लगे।

इस विपत्ति के समय भी चम्पतराय का साथ उनकी रानी लाल कुँवारी ने सदा एक वीर रमणी की तरह दिया। प्रत्येक समय छाया की तरह वे उनके साथ रहीं। यदि चम्पतराय अकेले होते तो शत्रुओं से सम्मुख युद्ध कर अपनी प्राणाहुति कर इस दुस्सह दुःख से बच सकते थे। परन्तु उनको अपनी स्त्री और बच्चों का मोह ऐसा करने से रोकता था।

जिन व्यक्तियों को राज्य-सिंहासन दिलाने में चम्पतराय ने अपने बाहुबल का उपयोग किया था, वे ही औरंगजेब और और पहाड़सिंह उनके जीवन को एक साधारण व्यक्ति की भाँति भी शान्ति से व्यतीत न करने

के लिए विवश करने वाले हुए। किन्तु एक साहसी योद्धा को सुख की कल्पना लेकर अपना जीवन-काल व्यतीत करने का अवसर नहीं मिला करता। चम्पतराय चाहते तो मुगल सम्राट को खुशामद कर जागीरों का उपभोग कर सकते थे परन्तु उनका आत्माभिमान उन्हें ऐसा कभी नहीं करने दे सकता था।

छत्रसाल का जन्म

जिन दिनों चम्पतराय जंगलों में दिन बिताते रहे उन्हीं दिनों मोर पहाड़ी के जंगल में सन् १६४९ में उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम छत्रसाल रक्खा गया। वह ऐसा समय था कि उत्सव मनाना तो दूर, पुत्र को बचा सकना भी कठिन था। उसकी कुछ सेवा भी नहीं हो सकती थी, चारों ओर शत्रुओं का भय रहता था। एक बार ये लोग मुसलमानों से घिर गए। सब लोग तो किसी तरह भाग गए किन्तु बच्चा मैदान में पड़ा ही रह गया। संयोग से उस पर किसी की दृष्टि न पड़ी, इसलिए वह बच गया।

इन उपद्रवों से बचने के लिए बच्चा माँ के साथ ननिहाल भेज दिया गया और चार वर्ष की अवस्था तक वहीं रहा। फिर अपने पिता के पास आकर सात वर्ष की अवस्था तक रहा।

बाल्य काल

पिता के पास आने पर बालक छत्रसाल को जैसा जीवन बिताना पड़ा, उसका उसके भविष्य जीवन पर बड़ा असर पड़ा। शत्रुओं के चारों ओर घिरे रहने से चम्पतराय को कभी यहाँ, कभी वहाँ, सुबह कहीं शाम को कहीं, कभी लगातार कई दिन घोड़े की पीठ पर ही बिताना पड़ता था। रात-दिन तलवार हाथ में रक्खे शत्रु से बचने या उस पर प्रहार करने के लिए तैयार बैठे रहना, कभी रूखा-सूखा खाने को मिलना, कभी बिना खाए दिन बिता देना, धूप और साया, गर्मी और बरसात सब कुछ झेलने के लिए तैयार रहना उन लोगों का रोज का काम हो गया था, इसलिए ऐसी दशा में पला हुआ पुत्र अवश्य ही विलासिता से दूर और पराक्रम तथा साहस की मूर्ति होगा। छत्रसाल भी इन वातावरणों में पल कर एक निर्भय, साहसी और पराक्रमी सैनिक निकले। उस समय छत्रसाल को पुस्तकों की शिक्षा तो मिल नहीं सकती थी, परन्तु वीरों की कहानियाँ सुनने को मिलती थीं जिससे इन की नसों में वीरता के भाव भरते थे।

जब छत्रसाल सात बरस के हुए तो पिता ने उन्हें नियमित शिक्षा पाने के लिए जंगल में कुछ व्यवस्था न हो सकने के कारण उन्हें फिर ननिहाल में भेज दिया

किन्तु उसके दो ही महीने पश्चात् पुत्र को पिता की मृत्यु का शोक उठाना पड़ा। एक दिन जंगल में चम्पतराय का देश-द्रोहियों द्वारा पता लगा कर शत्रुओं ने चारों ओर से उन्हें घेर लिया। शत्रु-दल बड़ा था और चम्पतराय के साथ पचास-साठ व्यक्ति ही थे, इस कारण सामना किस प्रकार किया जा सकता था, फिर भी इन लोगों ने बड़ी वीरता से शत्रुओं का सामना किया, परन्तु शत्रुओं की संख्या बहुत अधिक होने के कारण एक एक कर सभी साथी मारे गये। अन्त में चम्पतराय अपनी रानी के साथ अकेले रह गए। वे घायल होकर गिर गए थे, इस कारण रानी ने अन्तकाल आया जानकर उन्हें शत्रुओं के हाथ में बन्दी न बनने देने के लिए उनके आदेश के अनुसार खंग के आघात से उनका प्राणान्त कर दिया और स्वयं भी अपना पातिव्रत दिखलाने के लिए अपना गला भी उसी खंग से उतार लिया। शत्रुओं के निकट पहुँचने पर उनका शव ही देखने को मिला। सौभाग्यवश छत्रसाल माता पिता के साथ नहीं थे, अन्यथा उनका भी भाग्य-सूर्य वहीं अस्त हो गया होता।

जब छत्रसाल ने पिता की मृत्यु का समाचार सुना तो उन्हें असह्य दुःख हुआ। उनके हृदय में मुगलों के प्रति विद्वेषाग्नि भड़क उठी। वे उस समय बालक थे, इसलिए कुछ कर नहीं सकते थे, किन्तु उनका पितृशोक उन्हें

भविष्य जीवन में स्वराज्य संस्थापन कर देश में स्थायी सुख और शान्ति स्थापित करने के लिए मुगलों का दमन करने के लिए उन्हें उद्वेलित करने के लिए बड़ा सहायक हुआ।

छत्रसाल अपने ननिहाल में छः वर्ष तक रह कर विद्याभ्यास करते रहे। जब ये तेरह वर्ष के हुए तो इनकी इच्छा अपने घर जाने की हुई। ? अकेले वहाँ के लिए चल पड़े। रास्ते में भूख प्यास से व्याकुल हुए, परन्तु संयोग से इनके पिता का एक सेवक मार्ग में ही मिल गया। उसने इनकी सहायता की और इन्हें घर तक पहुँचा दिया। घर पर इनके चाचा रहते थे। चाचा ने इनको प्रेम के साथ रक्खा और इनके कुछ पढ़ाने लिखाने का भी प्रबन्ध कर दिया। विद्याभ्यास के साथ अस्त्र-शस्त्र चलाने और घोड़े पर सवारी का भी इन्हें अभ्यास करने का अवसर मिला।

छत्रसाल तीन साल तक अपने चचा के यहाँ रहे। जब वे सोलह वर्ष के हुए तो उन्होंने कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करना चाहा। इसके लिए उन्होंने अपने चचा को उत्तेजित कर युद्ध-कार्य में प्रवृत्त होने की सलाह दी; किन्तु वृद्ध चचा ने उलटे इन्हीं को ऊँचा-नीचा समझा कर साधारण जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया। चचा से निराश

होकर छत्रसाल एक दिन किसी से बिना कुछ कहे सुने घर छोड़ कर बाहर निकल पड़े।

मुगलों के साथ

छत्रसाल ने बाल्यावस्था बीत जाने पर जब जीवन-संग्राम में प्रवेश करने का निश्चय किया तो वे सोचने लगे कि क्या करें। उनका कोई मार्ग-दर्शक या सलाहकार नहीं दिखाई पड़ा। उस समय उन्होंने सुना कि आमेर के महाराजा जयसिंह एक सेना लेकर मुगलों की ओर से देवगढ़ पर चढ़ाई करने जा रहे हैं। उन दिनों जयसिंह का बड़ा नाम था। ये बुद्धिमान और गुणग्राही व्यक्ति थे। इनके पराक्रम को लोग जानते थे। छत्रसाल ने इनका नाम सुनकर इनके पास जाने का निश्चय किया। इनके जाने पर जयसिंह ने इनसे बड़े आदर के साथ मिल कर इन्हें सेना में एक पद दे दिया। छत्रसाल के एक सगे भाई अंगद राय देवगढ़ में नौकर थे। वे भी छत्रसाल के बुलाने पर आकर सेना में भर्ती हो गये। छत्रसाल ने अपने भाई को पहले कभी देखा नहीं था, इसलिए पहले पहल उनसे मिलकर उनके हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा।

मुगलों की सेना में भरती हो जाने पर छत्रसाल को अपनी वीरता दिखाने का अवसर मिला। संयोगवश उस सेना से जयसिंह दिल्ली वापस बुला लिए गये और उनकी

जगह नवाब बहादुर खाँ सेनापति बनकर आये परन्तु वे भी छत्रसाल के परिचित ही थे। इन्होंने अत्यधिक मित्रता का परिचय देने के लिए छत्रसाल के पिता चम्पतराय से पगड़ी अदला-बदली की थी।

जब देवगढ़ पर मुगल सेना ने आक्रमण किया तो किले पर से तोपों की मार से उसे पीछे हटना पड़ा। छत्रसाल ने सेना को पीछे हटते देख अपना साहस दिखाया और गोले-गोलियों की कुछ परवा न कर शत्रुओं की ओर बढ़ते ही गये। उनके इस आक्रमण से शत्रु पीछे भाग चले और मुगल सेना ने भी उनका पीछा कर विजय प्राप्त की। इस विजय से सेना में बड़ा उत्सव मनाया गया परंतु यथार्थ विजयी वीर का वहाँ कहीं पता नहीं था, छत्रसाल के साथियों ने उन्हें बहुत ढूँढ़ा परन्तु उनका कहीं पता न चला।

जब छत्रसाल शत्रुओं पर आक्रमण करने लगे तो बहुत आगे जाने पर उनका अपने साथियों से साथ छूट गया था। उनके पराक्रम से मुगल सेना विजयी तो हो गई थी, परन्तु वे स्वयं घायल हो गये थे, इस कारण वे मैदान में गिर पड़े थे। बारह घंटे तक वे अकेले निर्जन मैदान में पड़े रहे। उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वे उठ सकते। ऐसी दशा में चील, गीदड़ और दुश्मनों से उनकी रक्षा उनका घोड़ा करता था। वह किसी को उनके पास नहीं आने देता। बहुत ढूँढ़ने पर छत्रसाल के साथियों ने उन्हें

पाकर उठाया । छत्रसाल ने अपने घोड़े की कृतज्ञता उनके मरने पर भी मानी और उसकी समाधि बनवाई ।

छत्रसाल ने मुगल सेना के साथ कुछ और युद्धों में भी भाग लिया । उनके मुगल सेना में सम्मिलित होने के दो कारण हो सकते थे । एक तो यह कि वे मुगलों की व्यवस्था और युद्ध का अनुभव प्राप्त करना चाहते हों, दूसरे यह कि अपने प्रदेश में अपने बंधुओं द्वारा भी उन्हें आश्रय प्राप्त नहीं था, तीन तीन दिन निराहार उन्हें बिताना पड़ा था। पारस्परिक कलह और मुगल-साम्राज्य के भय से उनको कोई अपने यहाँ स्थान देने के लिए तैयार नहीं था।

शिवाजी से भेंट

ऐसा बताया जाता है कि शौर्य दिखलाने पर भी अपना सम्मान बढ़ने के स्थान पर मुगल सेनापति की ही यश और पद-वृद्धि देखकर कदाचित् छत्रसाल को अधिक दुःख हुआ, इसलिए उन्होंने सेना छोड़ देने का निश्चय किया । अतएव उनको मरहठों की ओर ध्यान देने की सूझी । यह भी बात हो सकती है कि स्वातंत्र्य-युद्ध की तैयारी के लिए अपने को तैयार करने वा शिवाजी से उचित परामर्श करने के लिए उन्होंने उनके पास जाना निश्चित किया हो ।

कुछ भी हो, छत्रसाल अवसर पाकर आखेट के बहाने एक दिन मुगल-सेना से निकल पड़े । उन दिनों मुगल-सेना

के साथ वे दक्षिण में थे। उस समय शिवाजी ने अपने अधिकृत राज्य को सीमा पर बड़ा कड़ा पहरा बैठा रक्खा था जिससे मुगलों की ओर के आदमी या जासूस उधर जाकर कुछ भेद न लें या उत्पात न करें। उन पहरों से बच कर निकलना बडा कठिन था, फिर भी छत्रमाल बीहड रास्तों से बढ़े। रास्ते में भीमा नदी पड़ती थी। उसमें भीषण बाढ़ आई हुई थी! छत्रमाल ने उसकी भी कुछ परवा न कर बेड़ा बना नदी का पार किया और शिवाजी के पास बड़ी कठिनाइयों के बाद जा पहूँचे।

शिवाजी ने छत्रसाल की सब बातें ध्यान से सुनीं। उनका बड़ा आदर सत्कार किया और स्वातंत्र्य-भावना की प्रशंसा की। चम्पतराय ऐसे पराक्रमी वीर के पुत्र से मिल कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सब बातों पर विचार कर छत्रसाल से कहा, "इतने दूर के स्थान में तुम्हारे लिए कार्यक्षेत्र उपयुक्त नहीं। पश्चिमीघाट की जगह विन्ध्य की पर्वत-मालाओं में तुम अपना स्वातंत्र्य-संग्राम प्रारम्भ करो। आज औरंगजेब की नीति से राजपूताना, मालवा, बिहार और बुन्देलखंड सब जगह जनता में विद्रोह और असन्तोष की अग्नि सुलग रही है। इसमें वायु का झकोरा लगते ही स्वातंत्र्य भावना की वह्नि प्रज्वलित हो उठेगी। तुम सारे देश के इस स्वाधीनता संग्राम में अपने प्रान्त को भी सहयोग देने के लिए तैयार करो। महाराष्ट्र में रह

कर युद्ध में सहयोग देने से तुम्हें विशेष लाभ नहीं। मेरे आधीन रहकर तुम जितना भी पराक्रम करोगे उसका श्रेय तुम्हें कुछ न मिलेगा, उससे केवल मेरी ख्याति होगी और बुन्देलखंड में महाराष्ट्रों द्वारा युद्ध कर भी जो विजय प्राप्त होगी, उससे हम लोगों की ही ख्याति होगी। इस कारण तुम स्वयं अपनी शक्ति संचित कर स्वातंत्र्य युद्ध जारी करो। मुगल-शक्ति क्षीण हो रही है। देश की शक्ति संचित करने का तुम उद्योग आरम्भ करो। यदि तुमको देशी राजाओं, जागीरदारों से सहायता मिल सके तो उनसे सहायता लेने का प्रयत्न करो, अन्यथा देश के स्वातंत्र्य-प्रिय नवयुवक तुम्हारा साथ देंगे ही। स्वतंत्रता का झन्डा खड़ा करते ही देश की स्वाधीन भावना जागरित होने लगेगी और तुम्हारे सहायक बढ़ते जायँगे। मैंने जब स्वाधीनता का युद्ध प्रारम्भ किया था तो मेरे पास न तो धन था, न सेना। किन्तु आज इतने सहायक हो गये हैं। तुम्हारा प्रयत्न प्रारम्भ होने पर देश की शक्ति तुम्हारे पीछे अवश्य ही आवेगी। हम धन से तुम्हारी सहायता करने के लिए तैयार हैं।"

शिवाजी ने इतनी बातें समझा और उत्साह प्रदान कर स्वयं अपने हाथ से छत्रसाल के कमर में तलवार मँगा कर बाँधी और मस्तक पर तिलक लगाकर विजयी आशीर्वाद दिया। उन्हें धन भी सहायता के लिए प्रदान किया।

शिवाजी के इतना प्रोत्साहित करने और धन की कुछ सहायता मिलने से छत्रसाल का साहस बहुत अधिक बढ़ा। उन्होंने मराठों की युद्ध और शासन-सम्बन्धी अनेक बातों का ज्ञान प्राप्त कर वहाँ से प्रस्थान किया। लौटते समय शिवाजी का आज्ञापत्र साथ था, इस कारण सीमा पर उन्हें कोई कठिनाई नहीं पड़ी। इस प्रकार नए उत्साह से छत्रसाल ने बुन्देलखंड की ओर प्रस्थान किया।

सहायकों की खोज

शिवाजी से विदा होकर छत्रसाल जिस समय बुन्देल-खंड की ओर चलने लगे, उस समय दक्षिण में मुगल सेना-पतियों का जमघट था। उनमें शुभकरण बुन्देला छत्रसाल के बड़े नजदीकी थे। उन्होंने वीरता के अनेक कार्य कर मुगल-दरबार में बड़ा पद और गौरव प्राप्त किया था। छत्रसाल ने उनके यहाँ एक मास बिताया। शुभकरण बुन्देला ने उनकी बड़ी आवभगत की और बड़े प्रेम से अपने साथ रक्खा। छत्रसाल ने उनसे चलते समय अपने भविष्य के कार्यक्रम की चर्चा की, सहायता की याचना भी की परन्तु सहायता की जगह उन्होंने उल्टे छत्रसाल को भला-बुरा कहना और उल्टा-सीधा समझाना प्रारम्भ किया। उन्होंने अनेक तरह से यह समझाने का प्रयत्न किया कि मुगल-सम्राट की प्रबल शक्ति से द्रोह करने का साहस

करना बेकार है। उसका परिणाम दुःख के अतिरिक्त कुछ हो ही नहीं सकता।

इतना ही नहीं, शुभकरण बुन्देला ने यह बात भी स्पष्ट की कि छत्रसाल मुगल सेना में रह कर अपनी जिन्दगी अच्छी तरह बिता सकते हैं और वे उनके लिए सम्राट से अच्छा पद भी दिला सकते हैं। इन बातों के लिए उन्होंने बड़ा जोर भी दिया, परन्तु एक बार हृदय में उठी हुई परतंत्रता के विरोध की प्रबल अग्नि छत्रसाल के हृदय से से मिटाई नहीं जा सकती थी। पहले इस तरह प्रलोभन पाकर वे शायद कुछ विचलित भी होते परन्तु महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी का गुरुमंत्र पा चुकने पर रास्ते से पीछे हटने, स्वातंत्र्य-संग्राम से मुड़ने का प्रश्न उनके सामने नहीं आ सकता था। निदान प्रथम प्रयत्न में निष्फल होकर भी वे आगे बढ़े। उन्होंने साहस नहीं छोड़ा।

संयोग वश आगे बढ़ने पर दूसरे ही प्रयत्न में छत्रसाल को सफलता मिली और उन्हें ऐसा सहायक मिला जिसने निरंतर साथ देकर छत्रसाल को मुगलों और उनके समर्थक अन्य राजाओं के युद्ध में छत्रसाल को सदा विजय-माल पहनाई। ऐसे जबर्दस्त सहायक औरंगाबाद के राजा बलदिवान थे जो छत्रसाल के चचेरे भाई थे। बलदिवान छत्रसाल को देखते ही बड़े प्रेम से मिले और जब उन्होंने छत्रसाल की सब बातें सुन लीं तो उनके साथ पूरी सहानुभूति दिखलाई और देश

की स्वतंत्रता के उद्योग में पूरी तरह सहायता देने का वचन भी दिया परन्तु यह बात छिपी नहीं थी कि इन लोगों के पास शक्ति कुछ नहीं के बराबर थी और मुगलों के पास धन और सेना की बहुत बड़ी शक्ति थी। उसका मुकाबला कर सकना आसान काम नहीं था। इसके लिए बलदिवान ने छत्रसाल से पूछताछ की।

छत्रसाल से बलदिवान ने यह बातें खूब अच्छी तरह समझाईं कि जहाँ एक दो आदमी का काम होता है, वहाँ बड़ी सावधानी से काम करना पड़ता है; जहाँ बहुत बड़े जन-समूह का कार्य हो वहाँ तो नेता को कार्य एक एक पग फूंक फूंक कर रखना होता है। नेता की थोड़ी भूल से अगणित लोगों का सर्वस्व नाश हो सकता है, हजारों-लाखों प्राणों की आहुति हो सकती है, सैकड़ों ग्राम-नगर विध्वंस हो सकते हैं, इसलिए उन्होंने बहुत विचार कर कोई भी कार्य प्रारम्भ करने की सलाह दी।

इस समय बुन्देलखंड में एक नई परिस्थिति पैदा हो गई थी। मुगल सम्राट औरङ्गजेब ने फिदाई खां सेनापति को अपनी फौज लेकर बुन्देलखंड पर आक्रमण कर उसे दबाने की आज्ञा दे दी थी। ओरछा पर उसकी कृपा दृष्टि नहीं रह गई थी। इस सम्वाद को पाकर ओरछा में बड़ी घबड़ाहट पैदा हो रही थी। उस समय ओरछा की गद्दी पर सुजान सिंह बैठे थे। इस विपत्ति के समय रवा

करने के लिए तलवार उठाकर शत्रु का सामना करने वाला कोई वीर नायक नहीं दिखलाई पड़ा। लोगों को चम्पतराय की वीरता और मुगलों की सेना पराजित कर ओरछा रक्षित करने की बात याद आने लगी। इसी समय महाराज सुजान सिंह के सुनने में आया कि चम्पतराय के पुत्र छत्रसाल अपने पिता की ही तरह देश को स्वतंत्र करने के लिए तैयारी कर रहे हैं।

इस संवाद को सुन कर सुजान सिंह ने उन्हें तुरन्त ओरछा में निमंत्रित किया। छत्रसाल ने पुराने पारस्परिक कलह को भुला कर अपने उद्देश्य की महानता का भरोसा कर ओरछा में आना स्वीकार किया। महाराज ने उनका बड़ा आदर किया। और ऐसे समय मुगल सेना का सामना कर देश की रक्षा करने के लिये उनसे निवेदन किया। उनको महाराज की बात सुनकर बहुत कुछ सहायता पाने का तो भरोसा नहीं हुआ किन्तु इतना अवश्य था कि जहां मुगलों के कृपापात्र होकर ओरछा-नरेश इन लोगों का विरोध कर सकते थे वहाँ अब मुगलों के आक्रमण के भय से अब वे कुछ समय तक अधिक सहायता नहीं करते तो भी छत्र-साल से शत्रुता नहीं करते थे। फिर भी उन्हें महा-राज ने कुछ द्रव्य की सहायता दी ही और भविष्य में सहायता करने का वचन दिया। इस प्रकार घर के विरोध

से कुछ अवकाश पाने पर छत्रसाल ने अपना समय अपनी शक्ति बढ़ाने में लगाना प्रारम्भ किया।

ओरछा से लौट कर छत्रसाल ने बिजौरी जा कर अपने बड़े भाई रतन साह से सहायता पाने का प्रयत्न किया। वहाँ पर रह कर उन्होंने अपने पक्ष के समर्थन की बात समझाने का बहुत कुछ उद्योग किया परन्तु रतन साह की समझ में ये बातें कुछ भी नहीं आईं। उन्होंने शुभकरण बुन्देलखंड की भाँति मुगलों की प्रबल शक्ति से विरोध न करने की बात छत्रसाल को समझाने की कोशिश की। उनकी समझ में यह बात नहीं आ सकती थी कि बिना कुछ कोष और सेना का प्रबल साधन हुए मुगलों से युद्ध करने की तैयारी कैसे सोची जा सकती है। छत्रसाल अठारह दिन तक बिजौरी में रह कर अपने भाई को समझाने का प्रयत्न करते रहे परन्तु उन पर जब कुछ प्रभाव न हुआ तो वे लौट कर चले आए।

बिजौरी से निराश होकर छत्रसाल जब लौट आए तो इन्होंने सरदार बकी खां से भेंट की। बकी खां ने प्रजा की स्वाधीनता का पक्ष ग्रहण कर उनकी सहायता करने का वचन दिया।

युद्ध का प्रारम्भ

अपने सहायकों को टटोल कर अपने पास जो कुछ भी शक्ति संगृहीत हो चुकी थी उससे अपना संग्राम

जारी कर देने का छत्रसाल ने निश्चय किया। बलदिवान के साथ उनके सब साथियों का औड़ेरा गाँव में जमाव हुआ। वहां सब लोगों की सम्मति से छत्रसाल प्रधान नायक और और बलदिवान सहायक नायक नियुक्त हुए। इस समय इन लोगों के पास ३०० सैनिक और २५ घुड़सवार जुट सके थे। इसी शक्ति से कार्य प्रारम्भ कर देने का निश्चय हुआ। इन लोगों ने पहले यह तै किया कि मुगलों की सेना से युद्ध करने के पहले धन और सेना संग्रह करने के लिए मुगल-राज्य के आधीन स्थानों मे धन छीना जाय और अन्य राजा वा सरदारों से युद्ध कर उन्हें अपने पक्ष में किया जाय तथा उनसे सहायता ली जाय।

इस उद्देश्य को लेकर सेना दल ने पहले धँधेरा-सरदार कुमार सेन पर सन् १६७१ ई० में आक्रमण किया जो मुगल इलाके में रहता था। इस आक्रमण में धँधेरा वालों ने सामना करने का प्रयत्न किया, परन्तु वे हार गये और किला छत्रसाल के हाथ लगा। पराजित होकर धँधेरा सरदार ने संधि कर आधीन रहने की प्रतिज्ञा की और राजकुमारी का विवाह छत्रसाल से कर दिया। उसने केशरीसिंह नाम का अपना एक सरदार भी २५ आदमियों के साथ छत्रसाल की सेना में भर्ती करा दिया।

इस विजय से प्रसन्न होकर इस मंडली ने पास की शाही

चौकी सिरौंज पर आक्रमण किया जो मुगलों के आधीन मालवा प्रान्त के अन्दर थी। वहाँ के हाकिम मुहम्मद हासिम नामक पठान सरदार से युद्ध हुआ। इस लड़ाई में छत्रसाल के सैनिकों ने हासिम की सेना का सामना किया परन्तु गोलियों की मार से आगे बढ़ना सुगम नहीं था। एक दम आगे बढ़कर लड़ते जाने से विजय तो अवश्य मिलती परंतु बहुत से सैनिक काम आते, इसलिए छत्रसाल ने सैनिकों को पीछे हटाया और जब शत्रु कुछ ढीले पड़े तो उन पर पीछे से आक्रमण कर पराजित कर दिया।

सिरौंज से आगे बढ़कर छत्रसाल का दल मुगल इलाके के कई गांवों पर धावा करता और शाही थानों और खजानों को लूट कर सेना के व्यय के लिए धन एकत्रित करते हुए धामौनी गांव के पास आ पहुँचा। वहाँ पर खालिक नामक एक मुसलमान सरदार ने एक बड़ी मुगल सेना लेकर छत्रसाल पर आक्रमण कर दिया, परन्तु वह पराजित हो गया। उससे लड़ाई का खर्च और तीस हजार रुपया कर देने का वादा करा कर उसे छोड़ दिया गया। परन्तु छूटते ही उसने रुपया देना अस्वीकार कर दिया।

इस समय छत्रसाल ने समीप के बांसा के जागीरदार केशवराय दांगी से सेना के व्यय के लिए कुछ रुपये माँगे परन्तु उसने कोरा जवाब दे दिया और अभिमान के साथ अकेले छत्रसाल की सेना के बीच आकर छत्रसाल को सामने

अकेले युद्ध कर अपना पराक्रम दिखलाने के लिए ललकारा। बलदिवान और अन्य साथियों के मना करने पर भी छत्र-साल ने इस चुनौती को स्वीकार किया। केशवराय ने कहा कि जो इसमें हार जायगा, उसकी सारी सेना दूसरे के आधीन हो जायगी और वही सब का सरदार माना जायगा। उसने अपने शौर्य पर भरोसा कर पहले छत्रसाल को शस्त्र का प्रहार करने के लिए आमंत्रित किया परन्तु छत्रसाल ने उसको ही पहले आघात करने के लिए निमंत्रित किया। केशवराय ने बड़े जोर से बरछे का आघात किया परन्तु छत्रसाल ने उसे अपनी ढाल पर रोक लिया। जब छत्रसाल ने अपना बर्छा चलाया तो वह केशवराय की ढाल में छेद कर उसके शरीर में घुस गया। केशवराय ने अपनी तलवार से आघात किया। उसे भी छत्रसाल ने रोका। अन्त में छत्र-साल के आघातों से केशवराय धराशायी हुआ। छत्रसाल को भी काफी चोट लगी। इस युद्ध के परिणाम-स्वरूप बांसा की सेना उनके अधिकार में हो गई परन्तु, छत्रसाल ने वहाँ की जागीर केशवराय के पुत्र विक्रमसिंह को ही सौंप दी। विक्रमसिंह छत्रसाल की सेना में एक अच्छे पद पर नियुक्त भी कर लिया गया।

इस युद्ध में घायल होने के कारण छत्रसाल कहीं धावा करने नहीं जा सकते थे, इसलिए वे बकी खाँ के पास जाकर एक महीने तक रहे। वहाँ रहते हुए एक बार सेना को छोड़

केवल ५, ६ सरदारों के साथ जंगल में शिकार खेलने गये। उधर ही मुगल सेनापति सैयद बहादुर का पड़ाव पड़ा था। उसने छत्रसाल के शिकार खेलने आने की बात सुनी, इसलिए इस अवसर को हाथ से न जाने देकर चुपके से उनको घेर लेना चाहा। उसकी सेना ने जंगल में उन्हें घेर लिया। छत्रसाल बड़े संकट में पड़ गये परन्तु अपने सरदारों के साथ ही मुगल सैनिकों से घोर युद्ध कर उनके बीच से बाहर बचकर निकल आये।

सैयद बहादुर को नीचा दिखाकर छत्रसाल अपनी सेना के सहित ग्वालियर की ओर बढ़े। मार्ग में कई स्थानों पर धावा कर धन प्राप्त किया। इन धावों की खबर पाकर ग्वालियर का किलेदार मनव्वर खाँ कुछ सेना लेकर धूमघाट पर छत्रसाल की सेना पर टूट पड़ा। दूसरी ओर से मालवा की ओर से मुहम्मद हासिम ने भी, जो पहले एक बार हार चुका था, अपनी फौज लेकर छत्रसाल पर आक्रमण किया। छत्रसाल ने इन सब को परास्त कर बुन्देलों का सर ऊँचा किया।

मुगलों की इन सेनाओं के सम्मुख छत्रसाल को विजयी होते देख सारे बुन्देलखंड में छत्रसाल की कीर्ति गाई जाने लगी, समस्त बुन्देले सरदार एक एक कर छत्रसाल के झन्डे के नीचे आने लगे। रतन सांह भी जो किसी समय बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे, छत्रसाल

से आ मिले। सारे बुन्देलों की सहायता मिलते जाने पर छत्रसाल की सेना का बल बढ़ता गया। सैनिकों ने बड़े उत्साह के कार्य प्रारम्भ किया। सेना में तम्बू कनात तनने लगे और ऊंची ऊंची पताकाएँ शिविर में फहराने लगीं।

सैयद बहादुर, मनव्वर खां और मुहम्मद हासिम तीनों मुगल सेनापतियों से विजय पा छत्रसाल ग्वालियर की ओर न जाकर हनूटेक पहुँचे। वहाँ पर उनका बड़ा आदर सत्कार हुआ। वहाँ धँधेरे ठाकुर हरी सिंह ने अपनी पुत्री उदेत कुँआरी का विवाह छत्रसाल से कर दिया। हनूटेक से लौट कर सारी सेना मऊ आई। इसी अवसर पर सन् १६७८ ई० में छत्रसाल ने पन्ना नगर बसाया। ये स्वयं तो सेना के साथ मऊ रहते थे परन्तु इनका परिवार प्रायः पन्ना में ही रहने लगा।

छत्रसाल के जोर पकड़ने का समाचार जब मुगल दरबार में पहुँचा तो औरंगजेब बहुत उत्तेजित हुआ। उसने रनदूला खां सिपहसालार को तुरन्त छत्रसाल पर आक्रमण कर उन्हें दबाने का हुक्म दिया। इस समय छत्रसाल की उन्नति देख बुन्देलखंड में भी उनके अपने सगोत्री ओरछानरेश तथा उनके साथ दतिया, चंदेरी, कौंच और धमोनी के जागीरदार भी ईर्षा के कारण शत्रु बन गए। इन लोगों ने मुगल सेना की सहायता की। रनदूला के साधीन इन जागीरदारों की सेना मुगलों की सेना में

मिल कर छत्रसाल पर आक्रमण करने के लिए बढ़ी। इस धावे में रनदूला के साथ तीस हजार सेना थी।

छत्रसाल के पास न तो इतनी सेना थी और न मुगलों ऐसी भारी भारी तोपें। इतनी बड़ी सेना का खुले मैदान में सामना कर सकना कठिन था। इस कारण उन्होंने मऊ से अपना सैन्य-दल हटा कर किसी सुरक्षित स्थान में रखना ठीक समझा, जहाँ से शत्रु पर आक्रमण भी सुगमतया हो सके और सेना भी सुरक्षित रहे। वहां से कुछ ही दूर पर गढ़ा नामक एक किला था, जिस पर मुगलों का अधिकार था। छत्रसाल ने उस किले पर धावा कर वहां के मुगल रक्षकों को भगा दिया और किले पर कब्जा जमा लिया। सेना के दो भाग किए गए। एक तो बलदिवान के आधीन किले के अन्दर रक्खी गई और दूसरी छत्रसाल के आधीन किले से कुछ दूर जंगलों में छिपी रही।

रनदूला ने जब अपनी बिकराल सेना को गढ़ा की ओर बढ़ाया तो मार्ग में ही छत्रसाल ने चुपके से उस पर धावा कर दिया। अचानक धावा होने से मुगल सेना में खलबली मच गई। बहुत से सैनिक मारे गए। सेना इधर उधर भागने लगी। रनदूला के बहुत संभालने पर कुछ देर के बाद किसी तरह सेना फिर स्थिर हो सकी, तब तक छत्रसाल धावा कर एक ओर जंगल में घुस गए थे। रनदूला ने यह समझा कि छत्रसाल सेना सहित किले में

घुस गए होंगे इसलिए किले के पास पहुँच कर बाहर के हमले से निश्चिन्त होकर किले पर तोपें दागना शुरू किया। उधर से बलिदवान ने भी किले की तोपें दगवाईं। घोर युद्ध प्रारम्भ हुआ। इतने ही में छत्रसाल ने जंगल की ओर से लौट कर रनदूला की फौज पर पीछे से हमला कर दिया। इस तरह दिन के तीन बजे से रात के एक पहर तक घमासान युद्ध होता रहा, परन्तु दोनों ओर से हमला होने पर मुगल सेना बहुत प्रबल होने पर भी घबड़ा गई। और दोनों ओर से भयानक मार का मुकाबला न कर सकने के कारण भाग खड़ी हुई। छत्रसाल इस विशाल सेना के सम्मुख विजयी हुए। शत्रुओं की दस तोपें उनके हाथ लगीं।

इस युद्ध में विजयी होकर छत्रसाल ने औंड़ेरा, धामौनी और अनेक मुख्य स्थानों पर धावा कर नरवर में डेरा डाला। वहाँ उन्हें मालूम पडा कि दक्षिण से सौ गाड़ियां रुपयों और बहुमूल्य वस्तुओं से भरी हुई मुगल दरबार में जा रही हैं। छत्रसाल ने उन सब को लूट लिया।

रनदूला के पराजित होने की खबर जब औरङ्गजेब को मिली तो उसने क्रोध में आकर एक रूमी सिपहसालार के आधीन एक प्रचंड रूमी सेना छत्रसाल पर हमला करने के लिए भेजी जो क्रूरता और भयानक हमलों के लिए प्रसिद्ध थी।

इस सेना का बसिया के मैदान में छत्रसाल से सामना हुआ। छः घन्टे तक घोर संग्राम कर रूमियों ने छत्रसाल की सेना पर विजय पाई परन्तु छत्रसाल अपनी सेना के साथ पास हो जंगल में छिप गए। जब रात को रूमी सेना में बारूद बांटी जाने लगी तो छत्रसाल ने सहसा उस पर आक्रमण कर दिया। इसी समय संयोगवश मशालची के हाथ से मशाल गिर जाने से रूमियों के बारूदखाने में आग लग गई। इस गोलमाल में बुन्देलों के भयानक आक्रमण से रूमी सेना के पैर उखड़ गए।

तहव्वर खाँ

जिस समय रूमी सरदार के हारने की खबर औरङ्गजेब को लगी वह दक्षिण की ओर विद्रोहियों का दमन करने जा रहा था। रास्ते में ही यह खबर पाकर क्रोध में उन्मत्त हो उसने तहव्वर खाँ सरदार को छत्रसाल को हरा कर पकड़ लाने की आज्ञा दी। तहव्वर खां एक विकराल सेना लेकर सन् १६८० ई० में बुन्देलखंड पर चढ़ आया। जिस समय वह बुन्देलखंड आया उसे मालूम पड़ा कि छत्रसाल सब्बर के किले में विवाह की तैयारी कर रहे हैं। तहव्वर ने उन्हें विवाह-मंडप में ही चुपचाप पकड़ लेना चाहा।

जिस समय तहव्वर की सेना ने छत्रसाल को चारों ओर से किले में घेर लिया, उस समय विवाह की भांवरें

फिर रही थीं। साथ में कुछ सैनिकों के साथ केवल बलदिवान थे। जब तक विवाहसंस्कार होता रहा, बलदिवान अपने सैनिकों के साथ फाटक पर शत्रुओं का सामना करते रहे। विवाह समाप्त होते ही गुप्त रूप से शत्रु की सेना के घेरे से बाहर निकल गए। तहव्वर मुंह देखता ही रह गया।

मुगल सिपहसालारों को नीचा दिखाने के बाद छत्रसाल अपनी सेना को बुन्देलखंड के अनेक स्थानों और दुर्गों को जीतने में संलग्न रखते रहे। कालिंजर का किला बुन्देलखंड में बड़ा प्रसिद्ध माना जाता है। यह पन्ना से १५ माल पर है। यहाँ पर बलदिवान ने अपनी अध्यक्षता में सेना रख कर धावा किया। १८ दिन तक के घेरे के बाद भोजन और सामग्री का अभाव होने पर गढ़ वालों ने फाटक खोला और किला पर से अपना अधिकार हटाया। इस किले के हाथ में आने से छत्रसाल के पक्ष की शक्ति बहुत बढ़ गई।

कालिंजर ऐसा दृढ़ दुर्ग हाथ में आने के बाद छत्रसाल ने विजय-यात्रा कर सागर, दमोह, नरसिंहगढ़, बाँदा कालपी आदि स्थान भी अपनी सेना द्वारा अधिकृत किए। उधर तहव्वर खाँ इतने समय तक शान्त नहीं बैठा रहा। वह सेना एकत्रित करता रहा। अनेक स्थानों को विजय कर जब राजगढ़ में छत्रसाल की सेना का पड़ाव आकर

पड़ा तो तहव्वरखाँ ने भी सैनिक तैयारी कर लेने के बाद छत्रसाल का पता पाकर उस ओर अपनी सेना बढ़ाई। राजगढ़ से पाँच मील दूर सेनाओं का मुकाबला हुआ। तहव्वर के साथ दस हजार सेना ने छत्रसाल पर आक्रमण किया। छत्रसाल अपने कुछ सैनिकों के साथ एक पहाड़ पर चढ़ गए थे। तहव्वर ने सोचा कि अब की बार छत्रसाल अवश्य पकड़ लिए जावेंगे; परन्तु वह ज्योंहों अपनी सेना लेकर पहाड़ पर चढ़ने लगा कि जंगल में उनके चारों ओर छिपी छत्रसाल की सेना ने उस पर हमला कर मुगल सेना को तहस-नहस कर दिया।

इस युद्ध में छत्रसाल के बारह वीर सैनिक मारे गए और सत्ताईस घायल हुए। मुगल सेना के तीन सौ सैनिक धराशायी हुए और दो सौ वीर आहत हुए।

सैयद लतीफ और अनवर खाँ

जिस समय औरङ्गजेब दक्षिण में युद्ध में व्यस्त था, उसके पास उत्तर भारत से सामग्री भेजी जाया करती थी। उस समय शिवा जी की प्रबलता के कारण फौज के लिए रसद मिलना भी उस प्रांत में मुगल सेना के लिए कठिन हो जाता था। जब छत्रसाल की सेना तहव्वर को हरा कर दुर्गों के विजय में लगी थी, तो उसकी सूचना लतीफ नाम के एक सरदार को लगी जो सम्राट औरङ्गजेब के लिए दक्षिण की ओर सामग्री पहुँचा. जा रहा था। उसके पास

यथेष्ट सेना भी थी। जलालपुर से छत्रसाल के आगे बढ़ने पर नदी पार करते ही सैयद लतीफ की सेना ने रोका। जब शाही फौज नदी पार करने लगी तो उसी समय छत्र-साल ने उन पर हमला कर दिया और सारा सामान छीन लिया। लतीफ किसी तरह अपनी जान बचा कर भागा। इस लूट में बहुत से हाथी, घोड़े, और बहुमूल्य पदार्थ छत्र साल के साथ लगे।

इसके कुछ ही समय बाद औरङ्गजेब के हुक्म से अनवर खाँ ने छत्रसाल पर चढ़ाई की तैयारी की। छत्रसाल ने अनवर खाँ को पीछा करते देख उसे आगे बढ़ आने दिया। इस तरह दस बारह कोस तक पीछे हट जाने पर जब एक ऐसा स्थान आया जो चारों ओर पहाड़ो से घिरा था तो वहाँ अनवर खाँ की फौज पहुँचते ही छत्रसाल ने उस पर भयानक आक्रमण कर दिया। इस हमले को मुगल सेना बर्दाश्त न कर सकी। सैकड़ों आदमी मारे गए और अनवर खाँ पकड़ लिया गया। नजराना लेकर और चौथ देने की प्रतिज्ञा करा कर वह छोड़ दिया गया।

सदरुद्दीन

अपने अनेक सरदारों को बार-बार भेजने पर भी छत्र-साल को शक्ति बढ़ती देख औरङ्गजेब ने अपने सब दरबारियों के सम्मुख उग्र रूप धारण कर पूछा कि "क्या छत्रसाल को दबाने वाला हमारे दरबार में कोई सरदार नहीं

है।" इस पर एक ईरानी सरदार सदरुद्दीन ने बादशाह की आज्ञा पालन करने के लिए साहस दिखलाया। बादशाह ने प्रसन्न होकर उसे धामोनी का जागीर प्रदान की और विजय-यात्रा के लिए उसे रवाना किया। सदरुद्दीन बड़े अभिमान के साथ विजय की आकांक्षा कर बुन्देलखंड पहुँचा। रास्ते में वह छत्रसाल के स्थानों में घोषणा करता गया कि अब कोई छत्रसाल को किसी प्रकार की सहायता और कर न दे। अपनी इस आज्ञा का पालन न करने वाले को दंड देने की भी धमकी देता गया। उसने छत्रसाल को भयभीत कर काम निकालने के लिए एक आदमी पहले ही उनके दरबार में भेज दिया। उस आदमी ने छत्रसाल के पास जाकर कहा, "आप व्यर्थ लड़ाई मोल लेकर अपना सर्वनाश क्यों कर रहे हैं। आपकी भलाई के लिए हमारे सरदार ने आपको समझाने के लिए मुझे भेजा है। आप इस प्रदेश को छोड़ दीजिए वा सरदार से सुलह कर लीजिए। आपको मुगल दरबार में जाने पर सम्मान प्राप्त हो सकता है।"

छत्रसाल ने इन बातों को सुन कर उत्तर दिया—"मुझे लड़ाई से क्या काम, सिर्फ इन सब स्थानों से मुझे चौथ (आय का चौथा भाग जो कर स्वरूप राजा को मिलता था) मिलती रहे। और मिर्जा सदरुद्दीन की यह बड़ी उदारता है जो बिना युद्ध किए ही इस प्रदेश को

अपने को विजेता और अधिकारी समझने लगे हैं।"

इन बातों के हो चुकने पर सदरुद्दीन की फौज धावा करने के लिए छत्रसाल की सेना के समीप पहुँची। शत्रु सेना को देख छत्रसाल ने अपने कुछ चुने हुए सवारों के साथ सदरुद्दीन की सेना के आगे आए हुए सवारों पर हमला किया। छत्रसाल के सैनिकों के विकट आघात से मुगल सवार पीछे हटे. इससे मुगल सेना भी घबड़ाई। मुगल सेनानायक ने उन्हें फिर सँभाला और धावा करने के लिए उत्तेजित किया। छत्रसाल ने अपनी सेना को शत्रु-सेना के चारों ओर फैला दिया था। शत्रु का आक्रमण प्रारम्भ होते ही छत्रसाल की सेना ने उस पर हमला करना शुरू किया।

मुगल सेना ने चारों ओर से आक्रमण होने पर भी इतनी भयंकर मारकाट की कि एक बार उनके जीत जाने का अनुमान होने लगा, परन्तु त्रसाल ने अपने सैनिकों को उत्तेजित कर उस मारकाट का मुकाबला कर शत्रु को दबाया। अन्त में मुगल-सेना परास्त हो गई। सदरुद्दीन अपना घमंड टूटा देख भाग खड़ा हुआ।

स्वामी-प्राणनाथ

प्राणनाथ जी एक प्रसिद्ध साधु थे। इनका जन्म काठियावार के जामनगर में हुआ था। इनका नाम पहले

मेहराज था। अपनी स्त्री बाईजूराज के साथ इन्होंने वैराग्य ले लिया था। ये भ्रमण करते हुए पन्ना पहुँचे थे। वहाँ छत्रसाल से इनका परिचय हुआ। छत्रसाल की इन पर अटूट श्रद्धा हुई और उन्होंने स्वामी प्राणनाथ को अपना गुरु बनाया। स्वामी जी अपने उत्तेजक उपदेशों से छत्रसाल को स्वतंत्रता के संग्राम में संलग्न करते रहते थे। उनके जीवन पर स्वामी जी का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। स्वामी जी की ही मंत्रणा से छत्रसाल ने विजय-यात्रा प्रारम्भ की थी, जिसमें सैयद लतीफ और तहव्वर खां पराजित हुए थे।

स्वामी जी बुन्देलों के सहायक, शुभचिन्तक और परामर्शदाता, सब कुछ थे। समर्थ गुरु रामदास का जो प्रभाव शिवा जी पर पड़ा था, स्वामी प्राणनाथ का वही प्रभाव छत्रसाल पर पड़ा था। स्वामी जी कबीर और नानक की भाँति एकेश्वरवाद के समर्थक थे।

कहा जाता है कि इन्होंने कुरान की आयतों का हिन्दी में भाष्य किया था। इनके उपदेश में कुरान और पुरान दोनों का निचोड़ है। इनकी वाणी का संग्रह कुलजम नाम से प्रसिद्ध है। इनकी समाधि पन्ना में बना है जिसे महाराज छत्रसाल ने उनके जीवन-काल में ही बनवा दी थी। सन् १७०४ ई० में ८६ वर्ष की आयु में स्वामी प्राणनाथ ने चिरकाल के लिए जब समाधि ले

ली, तब उनका शव समाधि में रक्खा गया। समाधि के ऊपरी भाग में इनकी कलङ्गी और वाणी की पोथी रक्खी है तथा निचले भाग में एक लकड़ी की सन्दूक में तेल में डुबोया हुआ इनका शव रक्खा है। प्रत्येक वर्ष दीवाली को यह तेल बदल दिया जाता है। स्वामी प्राणनाथ के सम्प्रदाय वाले परिनामी वा धामी कहे जाते हैं।

राज तिलक

महाराज छत्रसाल ने जिस समय नर्मदा और यमुना के मध्य की बुन्देलखंड की समस्त भूमि पर अधिकार जमा लिया था, उस समय तक वे एक सेना-नायक के रूप में ही थे। वे इतने बड़े प्रदेश पर शासन करते हुए भी अपने को राजा नाम से नहीं पुकारते थे। लोगों की सम्मति हुई कि अब उनका नियमपूर्वक अभिषेक किया जाय। छत्रसाल इस सम्बन्ध में कुछ विचार न कर सके, परन्तु स्वामी प्राणनाथ जी ने उन्हें राज्य-सिंहासन पर बैठने का आदेश दिया और स्वयं अपने हाथ से उनके मस्तक पर तिलक लगा दिया, इस कारण छत्रसाल को गद्दी पर बैठाने की तैयारी की गई। पहले छत्रसाल अधिकतर मऊ में रहते थे। परन्तु राजसिंहासन पर बैठाने के लिए पन्ना राजधानी बनाना उपयुक्त समझा गया। सब सरदारों को इस उत्सव में निमंत्रित किया गया। काशी से पंडित बुलाए गए।

इन सब के सम्मुख बड़े समारोह से १६८७ ई० में शास्त्रानुसार राजतिलक किया गया। यहाँ भी स्वामी प्राणनाथ ने अपने हाथ महाराज को तिलक लगाया।

उस समय तक बुन्देलों में यह रीति थी कि उनके राजा को ओरछा-नरेश तिलक लगाते थे। जिसको वहाँ के नरेश तिलक न लगावें वह राजा नहीं माना जाता था। इस रीति की याद दिला कर व्यंग करते हुए ओरछा नरेश ने महाराज छत्रसाल का उपहास किया और एक पद लिख भेजा। इसका तात्पर्य यह था कि छत्रसाल ओरछा से तिलक मिले बिना व्यर्थ ही राजा बनने का प्रयत्न करते हैं। इसका उत्तर छत्रसाल ने स्वयं एक सवैया बनाकर यह दिया—

सुदामा तन हेरे तब रंक हू ते राव कीन्हों,
विदुर तन हेरे तब राजा कियो चेरे तें।
कूबरी तन हेरे तब सुन्दर स्वरूप दीन्हों,
द्रौपदी तन हेरे तब चीर बढ़यो टेरे तें॥
कहत छत्रसाल प्रह्लाद की प्रतिज्ञा राखी,
हिरनाकुष मारो नेक नजर के फेरे तें।
ए रे गुरु ज्ञानी अभिमानी भए कहा होत,
नामी नर होत गरुड़गामी के टेरे तें॥

इस पद्य में महाराज छत्रसाल ने यह प्रकट किया कि भगवान की कृपा से मनुष्य को गौरव मिलता है, उनको भी राज-सिंहासन प्रदान करने वाला भगवान का

कृपा-भाव है। कहा जाता है कि इस उत्तर को पाकर ओरछा-नरेश लज्जित हुए और उन्होंने महाराज छत्रसाल को आदरपूर्वक महाराज सम्बोधन करना प्रारम्भ किया।

अब्दुस्समद और बहलोल खाँ

महाराज छत्रसाल एक महान् योद्धा थे। उनका सारा जीवन ही युद्ध-मय था। चारों ओर से मुगल-शक्ति से घिरे होने के कारण उन्हें जीवन के अन्त काल तक शत्रुओं के आक्रमणों से बचने के लिए युद्ध करते रहना पडा। मुगल-सम्राट अपनी सत्ता न मानने वाले को अपनी शक्ति के गर्व में कभी भी शान्त नहीं रहने दे सकते थे। उसको पराजित कर विध्वंस कर डालने का प्रयत्न वे कभी भी नहीं छोड़ सकते थे। फलतः एक के बाद एक सेनापतियों के छत्रसाल से हारते जाने पर भी औरङ्गजेब ने अधिकाधिक क्रोध प्रकट करते हुए बुन्देलखंड पर अपने सेनापतियों को आक्रमण करने के लिए भेजना न छोड़ा। जब उसे सदरुद्दीन के पराजित होने की खबर मिली तो उसने अब्दुस्समद नाम के सरदार को दस हजार पठानों की एक बड़ी सेना देकर बुन्देलखंड भेजा। सेना के साथ युद्ध की सामग्री बहुत अधिक भेजी गई।

अब्दुस्समद ने सेना लेकर सन् १६६० ई० में छत्रसाल पर आक्रमण किया। दोनों ओर से युद्ध की खूब

तैयारी हुई। युद्ध प्रारम्भ होते ही पहले गोली-गोलों का प्रहार होता रहा परन्तु युद्ध बढ़ते ही दोनों ओर की सेना पास पास आ गई और बर्छी तलवार का घमासान लड़ाई होने लगी। दोनों ओर के सैकड़ों हजारों वीर धराशायी हुए। युद्ध की गति देख कर कुछ कहा नहीं जा सकता था कि कौन विजयी होगा। स्थिति की गम्भीरता देख कर छत्रसाल ने अपनी सेना को धीरे धीरे तितर-बितर करना शुरू किया, जिससे शत्रु को मालूम हो कि वे लोग हार कर भाग रहे हैं। इस पर और उत्साहित होकर मुगल सेना ने आक्रमण प्रारम्भ किया, परन्तु इतने में तितर बितर हुई छत्रसाल की सेना ने भयानक आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। इस से बुन्देलों की जीत हुई। फिर भी अब्दुस्समद ने रणभूमि न छोड़ी। इस पर रात को छत्रसाल ने उसकी सेना पर फिर छापा मारा जिस से मुगल सेना बहुत हानि उठा कर रण-क्षेत्र से वापस चली गई।

बुन्देलखंड के चारों ओर मुगलों का साम्राज्य फैला था और इस प्रदेश का विस्तार बहुत था, इस कारण छत्रसाल के जीते हुए स्थानों और दुर्गों पर भी छत्रसाल के दूर जाने पर मुगल अपना अधिकार जमा लेते थे, इस कारण एक ही दुर्ग को अधिकार में करने के लिए दुबारा तिबारा युद्ध करना पड़ता था। जब छत्रसाल इधर युद्ध में फंसे थे तो भेलसा के किले पर मुगलों ने फिर अपना

अधिकार जमा लिया। उसको अधिकृत करने के लिए छत्रसाल ने अपनी सेना बढ़ाई किन्तु बहलोल खां नाम का एक सरदार सेना लेकर बीच में ही रास्ता घेरे था। छत्रसाल ने उसकी सेना पर रात को छापा मारा। किन्तु मुगलों की सेना उससे हारी नहीं, सिर्फ कुछ पीछे चली गई। फिर रामगढ़ पर उनके नौ हजार घुड़सवारों ने छत्रसाल का मुकाबला किया। यह युद्ध कई दिनों चलता रहा। अन्त में एक दिन बहलोल खां जब अपनी सेना के आगे हाथी पर चढ़ा हुआ युद्ध कर रहा था तो छत्रसाल के गोलंदाज ने एक ऐसा निशान लगाकर गोला फेंका कि बहलोल खां का हाथीवान गिरकर मर गया जिससे हाथी भाग निकला। हाथी के भागते ही पीछे की फौज के भी पैर उखड़ गए।

औरंगज़ेब का अंतिम प्रयत्न

बुन्देलों का गौरव नष्ट करने के लिए औरंगजेब ने अंतिम प्रयत्न शाहकुली सरदार को भेज कर किया।

शाहकुली ने एक के बाद एक दुर्गों को बुन्देलों के अधिकार से छीनना प्रारम्भ किया और उनपर अपना अधिकार जमाते हुए मऊ के निकट आ पहुँचा। इतनी पराजयों के बाद बुन्देले सँभले। मऊ के समीप दोनों सेनाओं ने घोर संग्राम किया। शाहकुली के सैनिकों ने

ऐसा भीषण आक्रमण किया कि बुन्देले एकदम भाग खड़े हुए। छत्रसाल इस परिस्थिति से बहुत ही व्यग्र हुए। उन्होंने रणस्थल से भागे सैनिकों को बहुत तरह समझाया और उत्साहित किया। एक बार मुगलों का बुन्देलखंड में पैर जम जाने पर क्या परिणाम होगा, यह भी उन्हें खूब समझाया। बड़े प्रयत्न के पश्चात् बुन्देलों की सेना एकत्रित की जा सकी। दूसरे दिन छत्रसाल के उद्योग से उनकी सेना ने बड़े पराक्रम से युद्ध किया और शाहकुली के पैर उखड़ गए। उन्हें मैदान छोड़ कर भागना पड़ा। शाहकुली बन्दी हुआ। चौथ देने का वचन देने पर वह मुक्त किया गया।

इस युद्ध के पश्चात् औरंगजेब ने कोई सेना बुन्देल-खंड पर फिर नहीं भेजी। उस समय मुगल साम्राज्य जर्जर हो रहा था। उसकी राजनीति के कारण सब सहा-यक अलग होते जा रहे थे। मराठों ने बड़ा जोर पकड़ लिया था। औरंगजेब जानता था कि मराठों की शक्ति ही किसी दिन विकराल रूप धारण कर मुगल-साम्राज्य का लोप कर सकती है, इस कारण अन्य सारे स्थानों से हटा कर सेना की सब शक्ति वह मराठों के विरुद्ध लगा कर दक्षिण में रहकर उनके विरुद्ध आक्रमण का स्वयं निर्देश कर रहा था। इसी कारण बुन्देलखंड पर उसकी कोई सेना फिर आक्रमण करने न आ सकी।

जीवन का अंतिम संग्राम

जब अवस्था ढलने पर महाराज छत्रसाल ने अपने पुत्रों को कार्य संभालने योग्य देखा तो उनके हाथ में राज्य-सञ्चालन का भार छोड़ स्वयं ईश्वराधना में समय बिताने लगे। किन्तु वृद्धावस्था में भी उन्हें एक बार फिर राज्य की रक्षा के लिए चिन्ता करनी पड़ी। नवाब मुहम्मदखां बंगस नाम का एक सरदार पहले इलाहाबाद और मालवे का सूबेदार रह चुका था। जब औरंगजेब की मृत्यु हुई तो वह स्वतंत्र राज्य बना कर फर्रुखाबाद का नवाब बन बैठा। उसने बुन्देलखण्ड पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए पन्ना-नरेश से चौथ माँगी और न देने पर चढ़ाई करने की धमकी दी। महाराज छत्रपाल ने उसका बड़ा कड़ा उत्तर देकर फटकार बताई। इस पर बंगस ने दल-बल के साथ बुन्देल खण्ड पर चढ़ाई कर दी।

उस समय महाराज छत्रसाल की आयु ८२ वर्ष की हो चुकी थी। राज्य कार्य पूरी तौर से उनके दोनों पुत्र हृदेसाह और जगतराज देख रहे थे। हृदेसाह के हाथ में पन्ना, छत्तरपुर आदि का प्रबन्ध था और जगतराज जैतपुर का प्रबन्ध करते थे। जगतराज पर मुहम्मद खां बंगस ने तीन बार हमला किया। पहले दो बार तो वह हार गया परन्तु तीसरी बार बंगस की ही जीत हुई और जैतपुर उसके अधिकार में आ गया।

इस समाचार को सुन कर छत्रसाल बहुत दुखी हुए। उन्होंने देखा कि उनके जीवन-भर किए परिश्रम का फल नष्ट होना चाहता है, इतने त्याग और पराक्रम से रक्षित की हुई बुन्देलखण्ड की स्वतंत्रता लोप होना चाहती है। अवस्था अधिक होने से शरीर क्षीण हो जाने के कारण वे कुछ पौरुष दिखा नहीं सकते थे, इस कारण उन्होंने महाराष्ट्र प्रान्त की ओर दृष्टि फेरी, जहाँ से उन्हें प्रारम्भ में ही सहायता और सहानुभूति प्राप्त हुई थी। उस समय शिवाजी मर चुके थे, उनकी जगह उनके पौत्र साहू गद्दी पर बैठे थे। छत्रसाल ने उनके प्रधान सचिव बाजीराव पेशवा को सब स्थिति लिख कर सहायता की याचना की। इसके लिए दूत के हाथ उन्होंने नीचे लिखा दोहा लिख भेजा:--

जो गति भई गजेन्द्र की सो गति पहुँची आय।
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी राय॥

इस पत्र को पाते ही बाजीराव अपनी महाराष्ट्र सेना सहित बुन्देलखण्ड आ पहुँचे। बुन्देलों और महाराष्ट्र की सम्मिलित शक्ति से मुहम्मद खां बङ्गस पर आक्रमण किया गया। वह जैतपुर के किले में घेर लिया गया। बहुत दिनों तक घेरा डाले रहने पर किले की भोजन-सामग्री समाप्त होने लगी, यहाँ तक कि ८०) सेर अन्न बिकने लगा। भूखों मरने की ऐसी हालत आ पहुँचने पर बङ्गस ने पराजय स्वीकार की।

जैतपुर का राज्य लौटा कर हर्जाना देने और फिर कभी आक्रमण न करने की शपथ खाने पर वह छोड़ दिया गया।

छत्रसाल ने इस सङ्कट के समय सहायता करने के कारण बाजीराव का बड़ा उपकार माना। इसके बदले उन्होंने अपने राज्य का कुल तीन भाग किया जिसमें एक एक तो अपने पुत्रों को दे दिया और तीसरा भाग बाजीराव को समर्पित किया। पहला भाग जिसमें पन्ना, कालिंजर आदि सम्मिलित थे, बड़े पुत्र हृदेसाह को मिला। उन्होंने पन्ना अपनी राजधानी बनाई। दूसरा भाग जिसमें जैतपुर, चरखारी आदि थे, छोटे पुत्र जगतराज को मिला। उन्होंने जैतपुर राजधानी बनाई। तीसरा भाग जिसमें झांसी, जालौन और बांदा आदि थे, बाजीराव को मिला। बाजीराव इसके शासन-प्रबन्ध और कर वसूल करने के लिए अपनी ओर से सूबेदार नियुक्त कर अपनी सेना के साथ अपने प्रान्त में लौट गए।

लाल कवि और भूषण

महाराज छत्रसाल युद्ध-प्रिय होने के साथ साथ काव्यानुरागी भी थे। वे स्वयं भी कविता करते थे। उनके दरबार में 'लाल' कवि नाम के एक प्रतिभाशाली कवि रहते थे उन्होंने उनके शौर्य की कथा कविता में 'छत्रप्रकाश' नामक पुस्तक में लिखी थी। महाराज छत्रसाल के जीवन की बहुत कुछ बातें इस कविता की पुस्तक से ही ज्ञात होती हैं।

महाराज छत्रसाल के शौर्य की प्रशंसा सुन कर उनके पास महाकवि भूषण भी आए थे उन्होंने महाराष्ट्र केशरी शिवाजी के दरबार में रह कर काव्य-रूप में शिवाजी की कीर्ति का बखान कर स्वयं भी अमर यश प्राप्त किया था। कहा जाता है कि जब भूषण छत्रसाल के पास आए तो महाराज ने सोचा कि शिवा जी ने उन्हें जितना धन दिया था, उससे कुछ अधिक धन तो वे दे नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने सोचा कि क्या किया जाय कि उनका यश चिरस्थायी बने। इसके लिए जब भूषण की पालकी उठी तो उन्होंने एक कहार को हटा कर स्वयं उसमें अपना कंधा लगा दिया। इसमें भूषण के सम्मान की हद हो गई। भूषण ने इस प्रशंसा से गद्गद् होकर नीचे लिखा कवित्त छत्रसाल की प्रशंसा में सुनाया:—

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप से मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को।
साज सजि गज तुरी पैदरि कतार दीन्हें,
भूषण भनत ऐसे दीन प्रतिपाल को।
और राव राजा एक मन मै न ल्याऊँ, अब,
साहू को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को।

भूषण कवि ने छत्रसाल की प्रशंसा में कई कवित्त लिखे हैं जिनमें उनके शौर्य और पराक्रम का बखान है।

एक भारतीय इतिहास-लेखक ने छत्रसाल पर लिखी हुई कविताओं के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है:—

"उस समय के कवियों ने, बुन्देलखंड के उस नर-सिंह के चमत्कारी जीवन से प्रभावित हो कर बहुत सी कविताएं की हैं। उनमें एक योद्धा को जैसी पराजय रूपी वैतरणी में से गुजर कर विजय रूपी स्वर्ग में पहुँचना पड़ता है, उसका बढ़िया चित्र अंकित है। कविता में अत्युक्ति अवश्य है परन्तु जिस चरित्र में अत्युक्ति को उत्पन्न करने योग्य चमत्कार न हो, उससे कविता उत्पन्न ही नहीं होती। छत्रसाल में चमत्कार था। वही कवियों की कृति में प्रतिविम्बित हुआ।"

मृत्यु

छत्रसाल की मृत्यु कब और कैसे हुई, इसका कोई निश्चित् पता नहीं लगता। जनश्रुति है कि एक दिन सबको राज-कार्य के सम्बन्ध में उपदेश देकर वे कहीं चले गए। जाते समय एक चौकी पर अपना जामा छोड़ गए। वह चौकी और जामा अब भी पन्ना में सुरक्षित रक्खे हैं। इतिहासकारों का मत है कि सन् १७३४ ई० में ८७ वर्ष की अवस्था में वृद्धावस्था के कारण उनकी मृत्यु हुई।

साहस, मनोरंजक, शिक्षाप्रद, सरल, रोचक, जीवन को ऊँचा उठाने वाली महापुरुषों की जीवनियाँ। मू० ।=)

१—श्रीकृष्ण
२—महात्मा बुद्ध
३—रानाडे
४—अकबर
५—महाराणा प्रताप
६—शिवाजी
७—स्वामी दयानन्द
८—लो० तिलक
९—जे० एन० ताता
१०—विद्यासागर
११—स्वामी विवेकानन्द
१२—गुरु गोविन्दसिंह
१३—वीर दुर्गादास
१४—स्वामी रामतीर्थ
१५—सम्राट अशोक
१६—महाराज पृथ्वीराज
१७—श्रीरामकृष्ण परमहंस
१८—महात्मा टाल्स्टाय
१९—रणजीतसिंह
२०—महात्मा गोखले
२१—स्वामी श्रद्धानन्द
२२—नेपोलियन
२३—बा० राजेन्द्रप्रसाद
२४—सी० आर०, दास
२५—गुरु नानक
२६—महाराणा सांगा
२७—प० मोतीलाल नेहरू
२८—प० जवाहरलाल नेहरू
२९—श्रीमती कमला नेहरू
३०—मीराबाई
३१—इब्राहीम लिंकन
३२—मुसोलिनी
३३—अहिल्याबाई
३४—हिटलर
३५—सुभाषचन्द्र बोस
३६—राजा राममोहनराय
३७—लाला लाजपत राय
३८—महात्मा गांधी
३९—महामना मालवीय जी
४०—जगदीशचन्द्र बोस
४१—महारानी लक्ष्मीबाई
४२—महात्मा मेजिनी
४३—महात्मा लेनिन
४४—महाराज छत्रसाल
४५—अब्दुल गफ्फार खाँ
४६—मुस्तफा कमालपाशा
४७—अबुलकलाम आज़ाद
४८—स्टालिन
४९—वीर सावरकर
५०—महात्मा ईसा
५१—वीर केसरी हम्मीरदेव
५२—डी० वेलरा
५३—गैरीबाल्डी
५४—स्वामी शंकराचार्य
५५—सी० एफ० एन्ड्रूज
५६—गणेश शङ्कर विद्यार्थी
५७—डा० सनयात सेन
५८—समर्थ गुरु रामदास
५९—महारानी संयोगिता
६०—दादाभाई नौरोजी
६१—सरोजिनी नायडू
६२—वीर बादल
६३—पट्टाभि सीतारामैया
६४—देवी जोन
६५—प्रिन्स बिस्मार्क
६६—कालमार्क्स
६७—कस्तूर बा
६८—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
६९—सरदार पटेल
७०—संत ज्ञानेश्वर

महामना मालवीय जी

छात्रहितकारी पुस्तकमाला दारागंज, प्रयाग ।

बाल-चरित-माला सं०—४४

पं० मदनमोहन मालवीय

लेखक

भगवती प्रसाद गुप्त
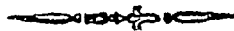
प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

द्वितीय संस्करण]   फरवरी १९४७   [मू० ।=)

प्रकाशक

श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

जयपुर के सोल एजेन्ट

प्रभात प्रकाशन, जयपुर

जोधपुर के सोल एजेन्ट

भारतीय पुस्तक भवन, जोधपुर

मुद्रक

सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद'

नागरी प्रेस, दारागञ्ज,

प्रयाग।

पं० मदनमोहन मालवीय

जन्म

पं० मदनमोहन जी मालवीय एक उच्च हिन्दू ब्राह्मण वंश में पैदा हुए थे। राजपूताने में मालवा नामक एक प्रान्त है। लगभग चार सौ वर्ष हुए कुछ ब्राह्मण प्रयाग तथा निकटस्थ जिलों में आकर रहने लगे थे। मालवा में रहने के कारण उन्होंने अपने को मालवीय कहना आरम्भ किया, अतः वे लोग मालवीय उपनाम से प्रसिद्ध हुए। हमारे पं० मदनमोहन मालवीय ने इसी वंश में प्रयाग में २५ दिसम्बर सन् १८६१ ई० में जन्म लिया। आपके पिता पंडित ब्रजनाथ जी मालवीय बड़े विद्वान्, धर्मज्ञानी, ऐश्वर्यशाली तथा एक अच्छे लेखक थे। अपने समय में आप एक बहुत अच्छे पंडित समझे जाते थे। आपका श्री भगवद्गीता तथा अन्य पुराणों में अच्छा ज्ञान था। आपने संस्कृत में कई पुस्तकों* की रचना भी की है। उनमें से कुछ पुस्तकों को पं० मदनमोहन मालवीय जी ने प्रकाशित करवाया है। मालवीय जी अपने पिता के तीसरे पुत्र

---

* पं० ब्रजनाथ मालवीय द्वारा रचित 'सिद्धान्तोत्तम' नामक ग्रन्थ पढ़ने योग्य है।

थे। आपके पिता चाहते थे कि उनकी सन्तान भी उन्हीं की तरह योग्य निकले। ईश्वर की कृपा से उनकी मनोकामना सफल भी हो गई। मालवीय जी का नाम आज संसार में गूँज रहा है। उन्होंने अपने देश के प्रति जो प्यार दिखाया है तथा अपने मुल्क की जो सेवा की है वह प्रशंसनीय है तथा उनकी कीर्ति को उज्वल करने वाली है

शिक्षा

मालवीय जी की प्रारम्भिक शिक्षा घर ही पर आरम्भ हुई। कुछ दिन बाद जब आप बड़े हुए तथा आपमें कुछ समझ आई तब आप 'धर्मज्ञानोपदेश' नामक पाठशाला में प्रविष्ठ हुए। यहाँ पर कुछ शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप 'विद्याधर्म-वर्धिनी-सभा' में ले जाये गये। तत्पश्चात आपका नाम स्थानीय जिला स्कूल में लिखाया गया। आपने इसी स्कूल से अंग्रेजी शिक्षा पाना आरम्भ किया। उस समय प्रयाग में विश्वविद्यालय नहीं था। अतएव आपने १८७९ में एन्ट्रेन्स की परीक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय से पास की। यहाँ की पढ़ाई समाप्त करने के उपरान्त आपका नाम म्योर सेन्ट्रल कालेज में लिखाया गया। और वहाँ से आपने सन् १८८१ ई० में एफ० ए० की परीक्षा और सन् १८८४ ई० में बी० ए० की परीक्षा पास की। इसके बाद आपने एम० ए० की पढ़ाई आरम्भ की, मगर कुछ कारणों से आपने अपनी

शिक्षा वहीं पर समाप्त कर दी। यह एक बड़े सौभाग्य की बात है कि स्वर्गीय पं० मोतीलाल जी नेहरू, पं० सुन्दर लाल जी तथा डाक्टर सतीश चन्द्र बैनर्जी आपके सह-पाठी थे।

मालवीय जी मध्यम कोटि के विद्यार्थी थे। आपके विद्यार्थी जीवन में कोई विशेषता नहीं थी। कारण यह है कि आप अपना अधिक समय देश तथा धर्म सम्बन्धी कार्यों में लगाते थे। आपने अपने विद्यार्थी-जीवन में ही दो बड़े-बड़े कार्य किये हैं। सर्वप्रथम आपने ही प्रयाग में "हिंदू समाज" तथा "प्रयाग साहित्यिक संस्था" को स्थापित किया। इनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आपका ध्यान आपके प्रारम्भिक जीवन में शिक्षा तथा धर्म की तरफ कितना था। पढ़ने के साथ-साथ आप देश-सेवा करना अपना कर्तव्य समझते थे। इसी कारण अध्य-यन करने के लिये आपको कम अवकाश मिलता था।

नौकरी

पढ़ाई समाप्त करने के बाद सन् १८८४ ई० के अंत में आप इलाहाबाद में गवर्नमेंट हाई स्कूल में एक सहायक अध्यापक नियुक्त हुए। आपने बड़ी तन्मयता से इस स्कूल की तीन वर्ष सेवा की। सर्वप्रथम आपको ५०) मासिक वेतन मिला। पुनः आपको ७५) मासिक वेतन मिलने लगा। यद्यपि आप सरकारी नौकर थे मगर आपने समाज

की सेवा को नहीं भुलाया। इस समय आपकी सेवा अधिक जोर पकड़ा और आपने इतना परिश्रम किया देश में प्रायः लोग इनके नाम से परिचित हो गये। ज आप अध्यापक थे तब आपने अपने गुरु आदित्यरा से तथा कांग्रेस में कहा था कि मैं एक स्वतन्त्र आदमी और उसी समय सन् १८८६ ई० में कांग्रेस के एक सदस बनकर भी गए थे। तीन वर्ष बाद कालाकांकर के राज श्री रामपाल सिंह जी की दृष्टि आप के ऊपर पड़ी। आपक परिश्रमी, देशभक्त तथा विद्वान समझकर उन्होंने अपने यह से प्रकाशित पत्र "हिन्दुस्तान" का सम्पादक नियुक्त किया मालवीय जी अध्यापन कार्य को बहुत बड़ा पवित्र कार समझते थे। वे जानते थे कि विद्यादान सब दानों से श्रेष्ठ है। मगर आपने सन् १८८७ ई० में सम्पादकीय कार्य इस कारण लिया कि यह भी दूसरे प्रकार का कार्य है। आपने ढाई साल तक सम्पादन किया। आपको वेतन २००) मासिक मिलता था। यहाँ भी आपने बड़े परिश्रम से काम किया। थोड़े दिनों में पत्र की बड़ी धाक जम गई और मालवीय जी की देश-भक्ति तथा योग्यता से साधारण लोग भी परिचित हो गये।

एक बार एक हिन्दू-समाज की बैठक में मुन्शी हनुमान प्रसाद जी ने आपसे पूछा कि आप तो कालाकांकर नरेश के यहाँ सम्पादन कार्य करने लगे हैं। आपका साथ

ाने से आशा है कि राजा साहब के खानपान में अवश्य न्तर पड़ जायगा। इस पर आपके एक मित्र ने उत्तर दिया कि आपकी सत्सङ्गति से पान तो राजा साहब ने बिल्कुल छोड़ दिया है।

तीन वर्ष बाद आपका ध्यान अपनी जाति की गिरी हुई दशा पर गयी। उसका तथा अन्य भारतीय जाति का उत्थान करने के लिये आपने साप्ताहिक हिन्दी पत्रिका 'अभ्युदय' को निकाला। इसमें आपने अपने सुन्दर-सुन्दर लेख निकालना आरम्भ किया जिससे प्रत्येक जाति में खलबली मच गई। इस पत्रिका ने देश की अच्छी सेवा की। आपकी इच्छा हुई कि यह पत्रिका सप्ताह में अब दो बार प्रकाशित हो, मगर धन के अभाव के कारण ऐसा न हो सका। अब आपको एक दैनिक अंग्रेजी पत्रिका की भी आवश्यकता पड़ी जिसके द्वारा प्रान्त की सेवा की जाय। इस कार्य में सफलता पाने के लिए आपने 'लीडर' नामक पत्र की सहायता करना आरम्भ कर दिया। यह आपके परिश्रम का फल है कि आज 'लीडर' अच्छी उन्नति पर है।

जब आप 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन करते थे तब आपके कुछ अच्छे मित्रों ने आपको एल-एल० बी० की परीक्षा पास करने के लिए सम्मति दी। आपके मित्रों में मिस्टर ए० ओ० ह्यूम, स्वर्गीय पं० अयोध्यानाथ,

भूतपूर्व राजा रामपालसिंह तथा पंडित सुन्दर लाल जी थे। आपकी इच्छा इस परीक्षा को पास करने की नहीं थी, मगर मित्रों के आग्रह के आगे आपको कानून की कक्षा में नाम लिखाना पड़ा। परन्तु आपने 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन नहीं छोड़ा। पढ़ने के बाद जो समय बचता था उसको आप सम्पादन में लगाते थे। इस प्रकार आपने सन् १८९१ ई० में एल-एल० बी० परीक्षा पास कर ली। सन् १८९३ ई० में आपने हाई कोर्ट में वकालत भी आरम्भ कर दी। इसी समय मिस्टर ह्यूम ने मालवीय जी से कहा, "मदनमोहन, ईश्वर ने तुमको अच्छा ज्ञान दिया है। दस वर्ष तुम वकालत का कार्य करते रहो। अन्त में तुम्हारी अच्छी उन्नति होगी। जब इस प्रकार तुम्हारा नाम हो जायगा तुम देश की अच्छी सेवा कर सकोगे।" मगर मालवीय जी ने इस शिक्षा पर तनिक भी ध्यान न दिया। आप देश सेवा, समाज-सेवा में इतने व्यस्त रहते थे कि 'वकालत करने का समय' नहीं मिलता था।

हिन्दू विश्वविद्यालय

मालवीय जी विद्यार्थी जीवन से ही देश-सेवा में लगे थे। देश-सेवा के अन्तर्गत शिक्षा का प्रचार भी है। आपने इसी को अपनाया तथा इसी के द्वारा देश-सेवा करना उचित समझा। आपने देखा कि जिस देश की जनता पढ़ी-लिखी न होगी वह अपने देश के प्रति प्रेम न दिखला

सकेगी। प्रयाग में 'हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस' की तथा 'प्रयाग साहित्यिक सभा' की नींव डालना आपके शिक्षा-प्रचार-प्रेम के नमूने हैं। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि आप शिक्षा को कितना बड़ा स्थान देते हैं। आपके हृदय में ऐसा अखिल भारतवर्षीय विश्वविद्यालय खोलने की इच्छा हुई जिसके द्वारा धार्मिक तथा साहित्यिक शिक्षा से साथ शिल्पकला की शिक्षा भी भारतवासियों को दी जाय तथा जो विद्यार्थी इस विद्यालय से निकलें वे आचरणादि सद्गुणों में भी श्रेष्ठ हों।

हिन्दू विश्वविद्यालय की चर्चा १९०४-५ में सर्वप्रथम उठी थी मगर वह शान्त हो गई। १९०९ में अलीगढ़ युनिवर्सिटी की चर्चा आरम्भ हुई। सन् १९१० में हिन्दू विश्वविद्यालय की चर्चा फिर उठी। श्रीमती एनीबिसेंट चाहती थीं कि बादशाह का चार्टर लेकर एक सार्वभौमिक भारतीय विश्वविद्यालय काशी में खोला जावे जिसके अन्तर्गत देश के सब प्रान्तों के कालेज रह सकें और सब जगह यहाँ की परीक्षा का केन्द्र बन सके। मगर उन्हें इसमें सफलता न मिल सकी। इसी अवसर पर पं० मदन मोहन मालवीय जी ने हिन्दू-विश्वविद्यालय का नया विचार नये रूप में फिर से उपस्थित किया। सर्वप्रथम मालवीय जी ने पं० सुन्दर लाल जी से मन्त्री का पद स्वीकार करने के लिये प्रार्थना की। मगर सब प्रकार की सहायता देते हुए

उन्होंने कहा कि जब तक सरकार का रुख स्पष्ट ज्ञात न हो तब तक स्पष्ट रूप से मन्त्रित्व ग्रहण करने में मैं असमर्थ हूँ । यहाँ से निराश होकर आप कलकत्ते को रवाना हो गए । वहाँ पर आपने इसका प्रचार करना आरम्भ कर दिया । वहाँ के बड़े-बड़े महाजनों, साहूकारों और जनता ने भी दिल खोलकर इस कार्य में धन और मन से सहयोग दिया । श्री बीकानेर नरेश ने इसमे बड़ी सहायता दी । गाड़ी अब चल निकली । इसी अवसर पर हारकोर्ट बटलर जो उस समय बड़े लाट के शिक्षामन्त्री थे, मालवीय जी से मिले । उन्होंने मालवीय जी से कहा कि अगर प्रस्तावित संस्था में मातृ भाषा द्वारा पढ़ाने की व्यवस्था रही तो सरकार द्वारा इसमे कुछ भी सहायता न मिलेगी । उन्होंने साफ साफ कह दिया कि जिस समय तक आप अँग्रेजी भाषा में लिखते, बोलते, पढ़ते और पढ़ाते हैं तब तक तो हमारी जीत रहती है, क्योंकि उस समय तक हम आपकी सब बातों और चालों को भली भांति समझ सकते हैं और उसे सँभाल सकते हैं । पर जिस समय आप अपनी भाषा में कार्य करना आरम्भ कर देते हैं, तब उसका समझना हमारे लिये कठिन हो जाता है । इस कारण मातृभाषा द्वारा उक्त शिक्षा देने की अनुमति सरकार से किसी अवस्था में भी नहीं मिल सकती । कुछ मित्रों के विरोध करने से मालवीय जी ने कुछ दिनों के

लिये मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा देना स्थगित कर दिया।

श्रीमती एनी बिसेंट देवी ने भी आपके इस काम में हाथ खूब बटाया। इन्होंने तीन व्याख्यान भारतीय विश्व-विद्यालय के सम्बन्ध में कलकत्ते में दिये। इसका असर इतना पड़ा कि वहाँ की जनता ने आर्थिक सहायता अच्छी तरह की। सब लोगों ने मिलकर ५ लाख रुपया देने का वादा किया। इसमें से बहुत कुछ मिल भी गया। गौरीफा के जमींदार श्री ब्रजेन्द्रराम किशोर, श्री राधा कुमद मुकर्जी तथा श्री विनय कुमार जी आदि सज्जनों द्वारा बंगालियों में इसका अच्छी तरह प्रचार हुआ। उन लोगों से भी अच्छा धन प्राप्त हुआ।

विश्वविद्यालय का दौरा पटना, मुजफ्फरपुर, भागलपुर, दरभङ्गा, जौनपुर, काशी, प्रयाग, कानपुर, इटावा, अमृतसर तथा लाहौर आदि बड़े शहरों में हुआ। एक प्रकार से सारे भारत में विश्वविद्यालय के आगमन की दुंदुभी बज चुकी थी। मुजफ्फरपुर में एक भिक्षा माँगने वाली भंगिन ने अपनी दिन भर की कमाई, एक पैसा या एक अधेला, जो उसे मिला था उसमें दान दे दिया। इसी प्रकार एक व्यक्ति ने एक फटी कमीज जो उसके बदन पर थी, उतार कर प्रदान कर दी। इस प्रकार कई गरीबों ने भी अपनी शक्ति के अनुसार श्रद्धापूर्वक दान दिया। उनकी ये सब चीजें नीलाम कर दी गईं और इसमें

मालवीय जी को सैकड़ों रुपये मिले। इन चीजों को खरीदने वालों ने सब चीजें वापिस भी कर दी। मालवीय जी के आज्ञानुसार ये सब चीजें संग्रहालय में सुरक्षित रखी गई। मुजफ्फरपुर में, एक बंगाली ने इसमें कई हजार रुपये दान दिये। उनकी पत्नी ने अपना बहुमूल्य स्वर्ण-कंकण मालवीय जी को दान में दिये। बंगाली बाबू ने इस कड़े का दूने मूल्य में खरीद कर अपनी पत्नी के कर में पहिना दिया। पत्नी ने फिर इसको उतार कर मालवीय जी को दिया और कहा कि यह कड़ा भी संग्रहालय में रख दिया जाय।

इसके सम्बन्ध में मालवीय जी उस समय के वाइसराय श्री लार्ड हार्डिंग से मिले और उन्होंने भी विश्वविद्यालय को अपनाने का वचन दे दिया। फिर आप परलोकवासी लाला लाजपतराय जी से मिले। उन्होंने कहा कि 'Charter or no charter, Hindu University must exist', मालवीय जी ने भी इसका समर्थन इन्हीं शब्दों से किया। अब क्या था, जिस प्रकार गंगा और यमुना के मिलने से नदी की धारा में तेज़ी आ जाती है उसी प्रकार लालाजी और मालवीय जी के मिलने पर इस में भी तेजी आगई। लोगों ने अब और दिल खोल कर दान देना आरम्भ किया। पं० सुन्दर लाल जी ने भी अब मंत्रित्व स्वीकार कर लिया।

४ फरवरी सन् १९१६ ई० को लार्ड हार्डिंग के

द्वारा काशी में इस महान् विश्वविद्यालय की नींव डाली गई। यह विश्वविद्यालय आज अब केवल काशी का ही विश्वविद्यालय नहीं वरन् भारत का एक महान् शिक्षा-केन्द्र हो गया है। हमारी काशी आदि काल से एक उच्च शिक्षा का स्थान बनती चली आ रही है और आज भी उसकी प्रतिष्ठा उसी तरह बढ़ी हुई है।

जिस समय इसकी नींव डाली गई थी उस समय देश के बड़े बड़े राजे, महाराजे, धनाढ्य तथा विद्वान् उपस्थित थे। महाराजा काश्मीर, बीकानेर, दतिया, बनारस आदि बड़े बड़े राजे आये थे। विविध प्रान्तों के गवर्नर, शिक्षा विभाग के सदस्य, बड़े बड़े सज्जनों ने उसमें भाग लिया था। काशी में नगवा नामक एक स्थान है। वहीं पर एक बड़ा स्थान ६ लाख रुपये में खरीदा गया। विद्यार्थियों की शिक्षा एक ऐसे स्थान में होनी चाहिये जहाँ की हवा बहुत शुद्ध तथा स्वास्थ्य को बढ़ाने वाली हो। मालवीय जी ने विश्वविद्यालय की स्थापना करते समय इसका भी ध्यान रक्खा। जिस स्थान में यह बनाया गया है वह शहर के बाहर है, तथा वहाँ की वायु बड़ी अच्छी है।

भवन को बनाने के प्रथम बड़े-बड़े निर्मायकों की सहायता के एक सुन्दर नक़शा तैयार किया गया और सन १९१६ ई० में भवन बनाना आरम्भ हो गया। उसमें अब

तक आर्ट-कालेज, रसायनशाला, विज्ञानशाला, विद्युत भवन, इञ्जिनियरिंग कालेज, वर्कशाप, कई बोर्डिंग-हाउस, लड़कियों का कालेज, ट्रेनिङ्ग कालेज तथा आयुर्वेद कालेज के भवन बन गये हैं। विज्ञान विभाग के अन्तर्गत सिनेमिक विभाग भी है। वहाँ पर मूर्त्ति कला की शिक्षा दी जाती है। इसमें अल्प शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी भर्ती किये जाते हैं। वे सुन्दर मूर्त्ति-कला को सीखकर अपनी जीविका उपार्जन अच्छी तरह कर सकते हैं।

इतने होने पर भी मालवीय जी को सन्तोष नहीं हुआ। आप अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए एक न एक योजना सोचा ही करते थे और उसको कार्य रूप में परिणत करने का प्रयत्न करते रहते थे। अगर उनसे कोई पूछता कि काशी-विश्वविद्यालय का विस्तार बहुत बढ़ जावे तो आपके बाद इसका सञ्चालन कौन कर सकेगा? इस पर आप जवाब देते कि सञ्चालन करने वाले आपको बहुत मिलेंगे मगर हमारे बाद इसका विस्तार करने वाला कोई भी न मिलेगा। दूसरा यह कि जिस उद्देश्य को सामने रखकर हमने यह कार्य किया है, उसमें हमको अभी पूर्ण सफलता नहीं मिली है और अपने कार्य को सफल करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।

हिन्दू-विश्वविद्यालय केवल प्रान्तीय संस्था नहीं है। यह एक अखिल भारतवर्षीय संस्था है। अतएव इसके

संरक्षक भारत के बड़े राजा-महाराजा हैं। प्रसिद्ध दानी सेठ घनश्याम दास बिड़ला ने एक बोर्डिंग हाउस बनवाया है। महाराजा मैसूर, काश्मीर, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर ग्वालियर, इन्दौर, पटियाला, बनारस, आदि अनेक राजे इसमें वार्षिक सहायता देते हैं। विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि, सदस्य, सीनेट के सदस्य, कौंसिल के सदस्य आदि अधिकारी भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के विद्वान् और नेता होते हैं।

जिस प्रकार यू० पी० बोर्ड की सर्वप्रथम परीक्षा हाई स्कूल की परीक्षा होती है उसी प्रकार वहाँ की सर्वप्रथम परीक्षा एडमिशन परीक्षा होती है। इसमें सभी प्रांत के स्कूल अपने विद्यार्थियों को परीक्षा देने के लिए भेज सकते हैं। विश्वविद्यालय अपना चांसलर, वाइस चांसलर और प्रोवाइस चांसलर स्वयं नियुक्त करता है। इसके चांसलर बड़े-बड़े महाराजे होते हैं और वाइस चांसलर मालवीय जी स्वयं रहते थे। यहाँ पर सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती है और शिक्षा प्राप्त करने के बाद विद्यार्थियों को सार्टिफिकेट मिलता है। इनका मान भारतवर्ष में प्रत्येक स्थान पर होता है। यहाँ की सब परीक्षायें सरकार द्वारा मान ली गई हैं। जिस प्रकार अन्य युनिवर्सिटी से निकले हुए विद्यार्थी को बड़े-बड़े पद मिल सकते हैं उसी प्रकार यहाँ से भी निकले हुए विद्यार्थियों को बड़े-

बड़े पद मिलते हैं। संस्कृत का केन्द्र काशी माना जाता है। मालवीय जी ने विश्वविद्यालय में संस्कृत की शिक्षा का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया है।

सरकार की तरफ से काशी-विश्वविद्यालय को सहायतार्थ प्रति वर्ष १ लाख रुपया सालाना मिलता था। कुछ दिन बाद यह रकम बढ़ाकर डेढ़ लाख कर दी गई। अब सरकार ने ३ लाख सालाना कर दिया। सरकार द्वारा तथा बड़े-बड़े राजाओं द्वारा दिये धन से इस संस्था का खर्च बड़ी सुन्दरता से चलता है। विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा देने के लिए यहाँ पर बड़े-बड़े विद्वान अध्यापकों की नियुक्ति होती है। मालवीय जी ने देखा कि भारतवर्ष में अधिकांश जनता हिन्दी जानती है तथा हिन्दी ही बोलती है। इसलिए आपने अपने विश्वविद्यालय में हिन्दी भी शिक्षा का माध्यम रक्खा। यही एक संस्था है जहाँ पर एफ० ए० तक की शिक्षा हिन्दी द्वारा होती है। प्रत्येक विद्यार्थी अपने वैकल्पिक विषय हिन्दी में लिख सकता है। मालवीय जी इस प्रयत्न में थे कि बी० ए० की भी शिक्षा हिन्दी माध्यम द्वारा हो।

इस विश्वविद्यालय में पढ़ाई के अतिरिक्त गायन तथा वाद्य कला की भी शिक्षा दी जाती है। इसमें फौजी शिक्षा देने का भी प्रबन्ध है। इसके लिए एक अँगरेज सारजेण्ट नियुक्त रहता है। शिवाजी कालेज आफ फिज़िकल कलचर

खुला है जहाँ पर शारीरिक शिक्षा दी जाती है। हिन्दू-विश्वविद्यालय एक बहुत बड़ी संस्था है। हजारों विद्यार्थी प्रतिवर्ष यहाँ से शिक्षा प्राप्त करके निकलते हैं और देश की सेवा करते हैं।

एक बार महात्मा गाँधी बनारस आये। उन्होंने विद्यार्थियों की सभा में व्याख्यान देते हुए कहा, "हिन्दू-विश्वविद्यालय मालवीय जी का सब से बड़ा काम है। उन्होंने भारत की जैसी सेवा की है, वह सभी को मालूम है। उनकी सेवा का निचोड़ हिन्दू-विश्वविद्यालय है। मालवीय जी की सफलता की माप हिन्दू-विश्वविद्यालय की सफलता से की जा सकती है और हिन्दू-विश्वविद्यालय की माप इस बात से की जा सकती है कि विद्यार्थियों ने कहाँ तक अपने चरित्र का गठन किया है, भारत की उन्नति में कहाँ तक भाग लिया है, उनमें धर्म-भाव कहाँ तक बढ़ा है।"

महात्मा जी ने लिखा है, "मैं तो मालवीयजी महाराज का पुजारी हूँ। पुजारी कैसे स्तुति के वचन लिख सके? जो कुछ लिखेगा उसे अपूर्ण-सा प्रतीत होगा। मालवीय जी के दर्शन मैंने १८९० की साल में चित्र द्वारा किये थे। यह चित्र विलायत में इंडिया पत्र में छपा था जो मि० डिगवी निकालते थे, मानों वही छवि में आज देख रहा हूँ। जैसे उनके लिबास में ऐसे ही उनके विचार में ऐक्य चला

आया है और इस ऐक्य में मैंने माधुर्य और भक्ति पाये हैं। यौवन-काल से आज तक उनकी देश-सेवा और भक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है। काशी विश्व-विद्यालय के मालवीय जी प्राण हैं, काशी-विश्वविद्यालय मालवीय जी का प्राण है। यह नरवीर दीर्घायु हो, हमारी यही हार्दिक कामना है।"

धार्मिक सुधार और हिन्दू-संगठन

मालवीय जी ने जहाँ शिक्षा के सुधार का बीड़ा उठाया वहाँ धार्मिक सुधार के भी वे आरम्भ ही से बड़े पक्षपाती रहे हैं। हमारे देश में धर्म के नाम पर बड़े-बड़े अत्याचार होते थे। जिस देश में प्रत्येक कार्य धर्म से बँधा हुआ था, जहाँ पर धर्म को प्रथम स्थान दिया जाता था, उसी देश में आज धर्म के आड़ में न मालूम कितने शिकार खेले जाते हैं। हमारा भारतवर्ष आज क्यों इतनी गिरी दशा में है ? लोग धर्म भूल गये हैं तथा धर्माचरण करना अपमान-जनक समझते हैं। यहाँ लोग असभ्य समझे जाते हैं। जहाँ देखो वहाँ केवल पाप दिखाई देता है। पाखंडी लोगों का बोलबाला है। हिन्दू-जाति में एकता नाम मात्र को भी नहीं है। हिन्दुओं मे धर्म के सम्बन्ध में अनेक अंध-विश्वास तथा मतभेद हैं। हिन्दुओं में एकता न होने के कारण अन्य जातियों द्वारा इस पर कुठाराघात किया जाता है। वे हमारे छोटे छोटे बच्चों

को, बहुओं को तथा जवान लड़कियों का सताया करते हैं। ऐसे समय में हिन्दू जाति की बड़ी करुणाजनक दशा हो जाती है। चारों ओर से आपत्ति रूपी बादल हिन्दुओं को घेर लिया करते हैं। मगर ईश्वर की इस जाति पर कुछ खास कृपा है जो हमेशा इसे पददलित होने से बचाया करता है। हमेशा एक न एक ऐसे मनुष्य को जन्म दे देता है जो आगे चलकर इसकी तन मन धन से सेवा करता है तथा नीचे गिरने से बचा लेता है।

मालवीय जी के पहिले श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू समाज को उठाने में बड़ा प्रयत्न किया था। मगर उनके उपदेश से 'आर्य समाज' की नींव पड़ी। हिन्दू-समाज में कई शाखायें हो गईं जिनमें पारस्परिक मतभेद रहने लगा तथा वे आपस में लड़ने लगे। ऐसे अवसर को पाकर अन्य जातियों की ओर बन आई। जिस प्रकार जंगल में दो बैल अगर आपस में लड़ते रहें तो शेर को एक अच्छा मौका उन दोनों को खाने का मिल जाता है उसी प्रकार अन्य जातियों को भी एक अच्छा मौका मिल गया।

हमारे माननीय पूज्य मालवीय जी ने जब ऐसी दशा हिन्दुओं की देखी तो उनसे रहा न गया और उन्होंने सब में एकता लाने का विचार कर लिया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 'हिन्दू महा सभा' स्थापित की। इस सभा में प्रत्येक हिन्दू चाहे वह जिस शाखा का हो

भाग ले सकता है। इसमें प्रत्येक हिंदू दूसरे हिंदू को अपना भाई समझता है। मालवीय जी ने इसके द्वारा हिंदुओं को संगठित किया और 'सनातन धर्म' को संगठित रूप में लोगों में फैला कर उन्हें जागृत का संदेश दिया। शुद्धि तथा संगठन के मालवीय जी बड़े पक्षपाती थे। वे कट्टर ब्राह्मण थे। पूजा-पाठ, जप-तप और कर्मकांड में पूर्ण रूप से विश्वास करने वाले थे। हिंदूधर्म और हिंदुओं के मालवीय जी सबसे बड़े नेता थे। उन्होंने सदा यही कोशिश की कि हिंदुओं में एकता आवे तथा हिंदू संगठित हों। आपस का मतभेद जो उनमें आ गया है वह हमेशा के लिए चला जाय। वे लोग आपस में भाई-भाई सा व्यवहार करें। पाखंडियों का नाश हो तथा पाखंड और धर्म के नाम पर होने वाले कार्यों का विरोध हो।

मालवीय जी हिंदू धर्म और हिंदुओं की कमजोरियों को देख सुन-कर बहुत दुखी होते थे। आपने इसलिए देश में कई स्थलों पर 'महावीर दल' और 'महावीर अखाड़े' स्थापित कराये। आपका विश्वास है कि जब हमारी तन्दुरुस्ती अच्छी न रहेगी, हमारे शरीर में ताकत न रहेगी तब तक हमारा सिर लोगों के सामने नीचा रहेगा और हमारी विशेष उन्नति न होगी। सर्वप्रथम अपने शरीर को बनाना आवश्यक है। इसी हेतु आप ने बड़े बड़े दल तथा अखाड़े बनवाये जहाँ पर लोग जाकर

अनेक प्रकार की कसरत करते हैं तथा शारीरिक लाभ प्राप्त करते हैं। जब कभी आप बालकों के बीच बैठ कर उनको कुछ शिक्षा दिया करते थे तब आप उनको कुश्ती लड़ने, व्यायाम करने तथा मजबूत बनने को कहते थे। महावीर दल की ओर से कई प्रान्तों में अखाड़े खुले हुये हैं। पंजाब, मध्यप्रान्त और बम्बई की ओर ऐसे कई अखाड़े हैं। इनमें अमरावती का व्यायाम मंदिर सबसे प्रसिद्ध है।

१९०६ ई० में प्रयाग में जो सनातन-धर्म-महासभा की बैठक हुई थी उसमें आपने बड़ा परिश्रम किया। आगे चल कर जब हिन्दू-महा-सभा की नींव मजबूत हो गई तब आपने 'अखिल भारतवर्षीय सनातन धर्म महासभा' की नींव डाली। आप कई बार इसके सभापति हो चुके थे। एक बार व्याख्यान देते हुये आपने कहा कि भारतवर्ष में हिन्दू जाति को छोड़ अन्य जातियाँ अपनी जाति की वृद्धि करने के लिए तथा अपनी जाति को संगठित करने के लिए बहुत कोशिश कर रही हैं। मुसलमान लोग अपने धर्म का प्रचार करने के लिए तथा ईसाई इसी उद्देश्य से धन आदि लगाकर कितना प्रयत्न कर रहे हैं। मगर हमारे भाई कान में तेल डाले बैठे हैं तथा उनकी दीक्षा संस्कार करने का कोई भी प्रबन्ध नहीं है। मगर इस समय कोई प्रांत कुछ कार्य कर रहा है तो वह पञ्जाब प्रांत है। वहाँ पर सनातन धर्म ने प्रत्येक हिन्दू के हृदय के अंदर धर्म

का संचार कर दिया है। वहाँ पर अनेक सनातन धर्म सभायें हैं तथा अनेक महाबीर दल हैं। वहाँ पर संस्कृत-पाठशालाएँ, कन्या-पाठशालायें प्रारम्भिक-पाठशालायें, मिडिलस्कूल, हाईस्कूल, ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, अंग्रेजी कालेज हैं, जिनके द्वारा धार्मिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षा तथा मानसिक शिक्षा लोगों को अच्छी तरह दी जाती है। आपने अन्य प्रान्त वालों को सम्बोधित करके कहा कि उनको भी ऐसा ही कार्य करके दिखाना चाहिये।

सनातनधर्मियों को शिक्षा देते हुये आपने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की कथायें कहना सुनना चाहिये, धर्म की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। मन्दिरों, मठों तथा तीर्थों का प्रबन्ध ठीक रखना चाहिए। यही एक धर्म है जो इस संसार में आदिकाल से चला आ रहा है और अन्त तक चला जायगा। न मालूम कितने धर्म सामने आये और लोप से हो गये। मगर यह बराबर जीवित रहा है। अतएव हमारा धर्म है कि हम इसकी रक्षा करें। अगर इसमें कोई बुराई आगई हो तो उसको निकाल दें। हमारा हिन्दू-समाज इसी धर्म की नींव पर खड़ा है। अगर कहीं यह उखड़ गया तो हिन्दू धर्म ऐसे गहरे समुद्र में जा गिरेगा जहाँ पर इसका पता भी न चलेगा।

मालवीय जी की धर्म सम्बन्धी कुछ शिक्षायें।

एक बार व्याख्यान देते हुए आपने कुछ शिक्षायें

दी हैं। उनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं—

१—परमब्रह्म परमेश्वर का हमेशा भजन करना चाहिये। प्रत्येक कार्य में सफलता उसी ईश्वर की कृपा से होती है। अगर वह प्रसन्न रहेगा तो सब कार्य मंगलमय होंगे।

२—प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह किसी को व्यर्थ न सतावे। बल्कि अनाथों की, विधवाओं की, तथा मन्दिरों की रक्षा करे। स्त्रियों को भी कभी न सताना चाहिए। बल्कि उनका आदर करना चाहिए।

३—अपने कर्म का फल प्रत्येक व्यक्ति को भोगना पड़ता है। अगर वह बुरा कर्म करता है तो उसे कष्ट भोगना पड़ेगा और अगर उसके कर्म अच्छे हैं तो उसको कष्ट कभी न उठाना पड़ेगा। कर्मों के अनुसार ही प्राणी को जन्म तथा मोक्ष मिलता है। अतएव हमेशा अच्छे कर्म करना चाहिए जिससे हमको अच्छे फल मिलें।

४—प्रत्येक मनुष्य को श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करना चाहिए और उसी के अनुसार उसको चलना भी चाहिए। हिन्दू धर्म में यही एक छोटी सी सुन्दर धार्मिक पुस्तक है जो मनुष्य प्राणी को शिक्षा देती है कि उसका कर्तव्य क्या है तथा उसे क्या करना चाहिए।

५—अपने सुख के लिए तथा अपनी भलाई के लिए किसी दूसरे का नुकसान न सोचे। हमेशा ईश्वर

से प्रत्येक प्राणी को सुखी, नीरोग तथा भलाई के पथ पर रहने की प्रार्थना करनी चाहिए। जो लोग बली हैं उनको चाहिए कि सब पर दया करें तथा सबों को कष्टों से बचाने का प्रयत्न करें।

६—अपने देश की, अपनी जाति की तथा अपने धर्म की उन्नति करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है तथा ऐसे प्राणी से ईश्वर भी प्रसन्न रहता है। जिस प्राणी ने अपने को देश-जाति तथा धर्म पर न्यौछावर कर दिया है वह स्वर्ग तथा मोक्ष दोनों का अधिकारी हो सकता है।

७—जहाँ पर देश की उन्नति का प्रश्न आ जाता है वहाँ पर देश की प्रत्येक जाति को मिलकर, चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, पारसी हो काम करना चाहिए। आपस में भले ही मतभेद हो, मगर ऐसे समय में उस मतभेद को भूल जाना चाहिए। इस युग में एकता ही प्रधान शक्ति है। हर एक की उन्नति एकता ही में है। अगर एकता न होगी तो दूसरे लोग आपस में फूट डाल देंगे जिसका नतीजा बड़ा भयंकर होगा। अतएव देश-सेवा एकता को सामने रखकर करनी चाहिए।

८—बिना शारीरिक शक्ति के कोई भी कार्य नहीं हो सकता। अतएव हमको ऐसे कार्य करना चाहिए जिससे हमारा शरीर निरोग रहे और उसमें शक्ति आवे। इसके लिए स्थान स्थान पर अखाड़ा खोलना चाहिए,

व्यायामशाला नियुक्त करनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को वहाँ पर जाकर कसरत करनी चाहिए तथा कुश्ती लड़नी चाहिए। इसी से शरीर सुदृढ़ रहेगा और प्रत्येक कार्य में सफलता मिलेगी। ब्रह्मचर्य का पालन सदा करना चाहिए, शरीर पर इसी एक वस्तु का असर पड़ता है। कुश्ती लड़ना, कसरत करना ये तो सब इसके सहायक हैं। अगर ब्रह्मचर्य का पालन किया जायगा तो इसके सहायक भी शरीर-उन्नति में सहायता देंगे और अगर ब्रह्मचर्य को ताक़ पर उठा कर रख दिया जायगा तो उसकी वही दशा होगी जो एक व्यभिचारी की होती है।

९—प्रत्येक प्राणी को शिक्षा प्राप्त करना भी उसका एक धर्म है। बिना शिक्षा प्राप्त किए वह न अपने देश की हालत जान सकता है और न अपनी जाति को जान सकता है। शिक्षा प्राप्त करना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है।

इन्हीं नियमों को सामने रखकर आपका ध्यान स्काउटिंग पर गया। उस समय बेडेन पावेल की स्काउटिंग सामने थी। इसको लक्ष्य करके तथा उक्त उद्देश्यों को

जो लोग ब्रह्मचर्य के विषय में अधिक जानना चाहते हैं वे 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' नामक पुस्तक पढ़ें।

रखकर अपने स्काउटिंग का प्रचार भारतवर्ष में किया जो अगले अध्याय में है।

मालवीय जी तथा स्काउटिंग

पिछले अध्यायों में यह बताया जा चुका है कि पंडित जी बालकों की विशेष उन्नति चाहते हैं। भारत की उन्नति भारत के बालकों पर निर्भर है और बालकों की उन्नति उनकी शरीरिक शिक्षा पर है। अतएव आपने बालकों की शारीरिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया। जगह-जगह पर आपने व्यायामशाले खुलवाये हैं। काशी-विश्वविद्यालय में शिवाजी कालेज आफ फिजिकल कल्चर खुलवाया और उसमें सैनिक शिक्षा देने के लिए सैनिक विभाग खुलवाया। अब भी वहाँ के कुछ विद्यार्थी इस शिक्षा को पाते हैं।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपने स्काउटिङ्ग चलाने का भी विचार किया। उस समय भारतवर्ष में केवल एक स्काउटिङ्ग संस्था थी जिसका नाम बेडेनपावेल स्काउट संस्था था। यह संस्था अब भी चल रही है। लार्ड बेडेनपावेल इंगलैंड के रहने वाले हैं। उन्होंने भारत-वर्ष में आकर इसको सर्वप्रथम जन्म दिया, मगर आपने हिन्दुओं को उसमें जरा भी स्थान नहीं दिया। केवल ईसाई ही इसमें भाग ले सकते थे और स्काउट बन सकते थे। यहाँ यह बतलाना अनुचित न होगा कि स्काउटिङ्ग

क्या है तथा इससे क्या फायदे हैं। जब तक ये बातें पाठकों को न मालूम हो जायँगी, वे इस विषय को अच्छी तरह समझ न सकेंगे और न उनको इसे पढ़ने में कोई रुचि होगी।

स्काउटिंग क्या है ?

स्काउट का अर्थ होता है--भेदिया, जासूस या गुप्तचर। सर्वप्रथम स्काटिङ्ग फौजी शिक्षा का एक अङ्ग था। युद्ध के समय इसका उपयोग किया जाता था। स्काउट लोग फौज के आगे-आगे चलते हैं तथा दुश्मनों की तैयारियाँ, उनकी संख्या तथा बन्दूक तोप आदि का पता लगाते हैं। उसके बाद आकर अपने फौजी अफसर से सारा हाल बयान कर देते हैं जिससे वह शत्रु की ताकत का अनुमान कर लेता है और वैसा ही उपाय करता है। इसके अलावा इनका काम रहता है अपने दल के लिए रास्ता साफ करना, रास्ते के नदी नालों को बराबर करना, या इस पार से उस पार जाने के लिए पुल आदि तैयार करना, घायल मनुष्यों की चिकित्सा करना आदि।

शिक्षायें

एक मनुष्य में जो गुण होने चाहिए वे सब स्काउट के १० नियमों तथा ३ प्रतिज्ञाओं में रक्खे हुए हैं। अगर कोई स्काउट सच्चे दिल से इसका पालन करता है तो वह थोड़े समय में एक अच्छा तथा योग्य आदमी बन सकता

और आगे चलकर वह बड़े से बड़े काम करके अपना नाम अमर कर सकता है।

हमारे प० मदनमोहन मालवीय जी ने इसकी उपयोगिता का मनन किया, तो उनके हृदय में बात आई कि अगर शान्ति काल में भी ऐसी शिक्षा बालक-बालिकाओं तथा नवयुवकों को दी जाय तो वे देशभक्त, समाज-सेवी, संयमी, साहसी, स्वावलम्बी, स्वस्थ, चैतन्य, प्रयत्नशील, कार्यकुशल तथा कर्तव्य-परायण जीते जागते तैयार हो सकते हैं। इन बातों का ध्यान रखते हुए आपने एक स्काउट संस्था खोल दी। उस समय भारत में और बहुत सी स्काउट संस्थाएँ खुल चुकी थीं। १९१० ई० में कैप्टेन बेकर (Captain Baker) ने बँगलौर में, कैप्टेन टौड (Captain Todd) ने किरकों में स्काउट ट्रुप खोले। कलकत्ता, मद्रास आदि में भी ट्रुप खुले। मगर केवल अँग्रेज या एङ्गलो इंडियन ही इसमें भाग ले सकते थे। यह हालत १९१६ तक रही। १९१३ ई० में भारतीय बालकों के लिए बनारस में डाक्टर तारापुर वाला ने तथा १९१४ ई० में श्री अमरनाथ शर्मा ने ट्रुप खोले। इसी समय १९१३ ई० में पं० श्री राम वाजपेयी जी ने शाहजहाँपुर में एक ट्रुप खोला। आजकल वाजपेयी जी सेवा-समिति ब्वाय स्काउट एसोसियेशन के चीफ आर्गेनाइजिङ्ग कमिशनर

और भारत सेवक समिति के सदस्य हैं। पहिले आप शाह-जहाँपुर-रेलवे में काम करते थे।

एक बार एक बनिये की दुकान में कुछ सौदा खरीदने के लिए गए। बनिए ने वह सौदा इनको एक पुड़िया में दिया। जब इन्होंने उस पुड़िया को खोला तो उसमें स्काउटिङ्ग के विषय में कुछ लिखा हुआ मिला। कुछ मित्रों की सहायता से आपने इसमें भी जानकारी प्राप्त कर ली और १९१३ में एक ट्रुप कायम कर दिया। यह छोटी सी कहानी इसमें इसलिए दी गई है कि आगे चल कर इनका साथ मालवीय जी से हुआ।

१९१५ में ए० जे० लैंगले मून (A. J. Langley moon) ने सिंध में एक एसोसिएशन खोला। १९१६ में डाक्टर एस० के० मलिक ने "दि बंगाली ब्वाय स्काउट एशोसिएशन" खोला। १९१७ में मद्रास, बंगाल तथा बम्बई में संस्थाएँ खुलीं। अब भारतवासियों के लिए इसमें भाग लेने के लिए तथा इससे लाभ उठाने के लिए रास्ता खुल गया।

१९१७ में डाक्टर एनी बेसेंट, मिस्टर पियर्स तथा अरेंडेल साहब ने मिलकर मद्रास को केन्द्र बनाकर एक अखिल भारतीय संस्था स्थापित की और उसका नाम इंडियन ब्वाय स्काउट एसोसियेशन (Indian boy scout Association) रक्खा। १९२१ ई० में पं० मदनमोहन

मालवीय जी ने प्रयाग में एक सेवा-समिति कायम की। जिसका नाम आपने अखिल भारतीय सेवा-समिति (All India Scout Association) रक्खा।

१९१८ में प्रयाग म कुम्भ पड़ा था। उसमें स्नान करने वालों की सेवा करने के लिए पंडित श्रीराम वाजपेयी जी शाहजहाँपुर से कुछ स्काउट लेकर आये थे। उन्होंने प्रयाग की सेवा-समिति के साथ मिल कर काम किया था। इसके अध्यक्ष मालवीय जी थे तथा मन्त्री पंडित हृदयनाथ जी कुंजरू थे। वाजपेयी जी के कार्य से ये लोग सन्तुष्ट हुए। पहली दिसम्बर १९१८ में आपने वाजपेयी जी को प्रयाग बुलवा लिया और तीनों ने मिल कर प्रयाग में अखिल भारतीय सेवा-समिति ब्वाय स्काउट एसोसियेशन की स्थापना की। इसका प्रधान केन्द्र प्रयाग ही रक्खा गया। मालवीय जी के आशीर्वाद से तथा कुञ्जरू जी और वाजपेयी जी के परिश्रम से यह संस्था चल निकली।

स्काउटों की शिक्षा १ अक्टूबर सन् १९१८ से आरम्भ हो गई। इसमें निम्नलिखित शिक्षायें स्काउटों को मिलने लगीं:—

प्रतिज्ञाओं का पालन करना, नियमों को कार्य रूप में लाना, कैम्पिङ्ग तथा हाइकिंग करना, बन विद्या सीखना, ट्रेकिंग तथा स्पुअरिंग करना, नक़शा पढ़ना और खींचना,

पुल, खेमा और झोंपड़ी बनाना सीखना, अनेक प्रकार के संकेतों से बातचीत करना जैसे समोसा, हाथा, कवा, सीटी आदि, कुछ सरल चिकित्साओं का ज्ञान होना, सादी ड्रिल, डण्डों की ड्रिल तथा स्ट्रेचर ड्रिल सीखना, अग्निकाण्ड में सेवा करना, डूबते हुए मनुष्यों को निकालना तथा रोगियों की अच्छी देखभाल करना आदि सिखाया जाने लगा। स्काउटों को वीरता तथा स्वदेश भक्ति के विषय में अच्छी शिक्षा मिलने लगी। इसके साथ-साथ लड़कों में रुचि पैदा करने के लिए सुन्दर-सुन्दर खेल खिलाये जाने लगे तथा अच्छे-अच्छे गाने गवाये जाने लगे। इन्हीं शिक्षाओं के कारण इस संस्था की उन्नति होने लगी।

पं० श्रीराम वाजपेयी जी ने संयुक्त प्रान्त में दौरा करना आरम्भ कर दिया और स्काउट सम्बन्धी बातों पर व्याख्यान देना प्रारम्भ कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि इसका प्रचार संयुक्त-प्रान्त में बड़े जोरों से होने लगा। लोगों ने इसमें तन, मन और धन से खूब सहायता दी। १९२० तक सेवा-समिति ब्वाय स्काउट एसोसियेशन का नाम अच्छा फैल गया। १९२१ में जब लार्ड चेम्सफोर्ड भारत के वाइसराय थे तब लार्ड बैडेन पावेल भारत में स्काउटों का निरीक्षण करने के लिये आये। भारत में इन्होंने कई स्थानों

पर स्काउटिंग देखा। मद्रास और इलाहाबाद आदि स्थानों में कई रैलियाँ हुईं।

प्रयाग की रैली में पंडित श्रीराम वाजपेयी के कामों से प्रभावित होकर बेडेनपावेल ने सरकार की सहायता से वाजपेयी जी को इंगलैंड में गिलवेल पार्क में भेजने की प्रार्थना की। आप अधिक अनुरोध होने पर वहां गये। आपने फ्रांस, बेलजियम, हालैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली और स्विटज़रलैंड आदि बड़े बड़े स्थानों में स्काउटिंग के कार्य को भली-भाँति देखा। हरएक मुल्क में आपने हिन्दुस्तानी स्काउटिंग के विषय में कहा और प्रत्येक देश की स्काउटिंग संस्थाओं ने आपको अवैतनिक कमिश्नर नियुक्त किया।

सेवा-समिति ब्वाय स्काउट ऐसोसिएशन के सेवा-कार्य।

सेवा-समिति ब्वाय स्काउट ऐसोसिएशन के सेवा कार्य ने लोगों के दिल को अपनी ओर खींच लिया। इसी कारण से इसने दुनिया में भी अपना नाम पैदा किया। १९३० में प्रयाग के कुम्भ में एक अंग्रेज स्काउट, जो भ्रमण करने के लिए अपने देश से निकला था, लिखता है कि "मैंने सेवा-समिति स्काउटों को प्रसन्नता के कठिन से कठिन कार्यों को करते देखा, तो मैं अत्यन्त प्रभावित हो गया। मैं इंगलैंड में अपने बच्चों को इसी तरह काम करते देखना चाहता

हूँ जिस तरह कि आप लोग काम कर रहे हैं और जोश से भरे हैं।" उसी वष एक दूसरे अंग्रेज स्काउट ने कहा, "मैंने अभीतक भारत में स्काउटिंग का इतना जोर नहीं समझा था। सेवा समिति ब्वाय स्काउट ऐसोसियेशन एक ऐसी संस्था है जो सेवा-कार्य पर अधिक जोर देती है। यह ऐसोसिएशन अपने स्काउटों को यह शिक्षा देते हुए कभी नहीं थकती है कि हमेशा दूसरों की मदद करनी चाहिये और इस पर सारी स्काउटिंग का दारोमदार है।"

हमारी सेवासमिति ने अपना ध्येय बना लिया था कि प्रत्येक स्थान पर मेले के अवसर में जा जा कर यात्रियों की सेवा करना चाहिए। पं० मदन मोहन मालवीय जी का भी यही उद्देश्य था और यह संस्था उन्हीं के उद्देश्य को लेकर आगे चली और अब तक बराबर वही करती आरही है। नीचे लिखे खास खास निम्नलिखित मेलों में दक्षता के खास कार्य किया जिससे इसका नाम और भी होगया।

नासिक कुम्भ १९२० में, हरद्वार अर्धकुम्भ १९२१ में, कुरुक्षेत्र सूर्यग्रहण १९२३ में, इलाहाबाद अर्धकुम्भ १९२४ में, कुरुक्षेत्र सूर्यग्रहण १९२५ में, हरद्वार कुम्भ १९२७ में, उड़ीसा में बाढ़ के अवसर पर १९२७ में, कुरुक्षेत्र सूर्यग्रहण १९२८ में, इलाहाबाद कुम्भ १९३० में, अजमेर आर्यमेला १९३१ में हरद्वार अर्धकुम्भ १९३३ में, कुरुक्षेत्र सूर्यग्रहण १९३३ में, बिहार में भूकम्प के अवसर पर १९३४

पर स्काउटिंग देखा। मद्रास और इलाहाबाद आदि स्थानों में कई रैलियाँ हुई।

प्रयाग की रैली में पंडित श्रीराम वाजपेयी के कामों से प्रभावित होकर बेडेनपावेल ने सरकार की सहायता से वाजपेयी जी को इंगलैंड में गिलवेल पार्क में भेजने की प्रार्थना की। आप अधिक अनुरोध होने पर वहां गये। आपने फ्रांस, वेलजियम, हालैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली और स्विटज़रलैंड आदि बड़े बड़े स्थानों में स्काउटिंग के कार्य को भली-भाँति देखा। हरएक मुल्क में आपने हिन्दुस्तानी स्काउटिंग के विषय में कहा और प्रत्येक देश की स्काउटिंग संस्थाओं ने आपको अवैतनिक कमिश्नर नियुक्त किया।

सेवा-समिति ब्वाय स्काउट एसोसिएशन के सेवा-कार्य।

सेवा-समिति ब्वाय स्काउट ऐसोसिएशन के सेवा कार्य ने लोगो के दिल को अपनी ओर खींच लिया। इसी कारण से इसने दुनिया में भी अपना नाम पैदा किया। १९३० में प्रयाग के कुम्भ में एक अंग्रेज स्काउट, जो भ्रमण करने के लिए अपने देश से निकला था, लिखता है कि "मैंने सेवा-समिति स्काउटों को प्रसन्नता के कठिन से कठिन कार्यों को करते देखा, तो मैं अत्यन्त प्रभावित हो गया। मैं इंगलैंड में अपने बच्चों को इसी तरह काम करते देखना चाहता

हूँ जिस तरह कि आप लोग काम कर रहे हैं और जोश से भरे हैं।" उसी वर्ष एक दूसरे अंग्रेज स्काउट ने कहा, "मैंने अभीतक भारत में स्काउटिंग का इतना जोर नहीं समझा था। सेवा समिति ब्वाय स्काउट ऐसोसियेशन एक ऐसी संस्था है जो सेवा-कार्य पर अधिक जोर देती है। यह ऐसोसिएशन अपने स्काउटों को यह शिक्षा देते हुए कभी नहीं थकती है कि हमेशा दूसरों की मदद करनी चाहिये और इस पर सारी स्काउटिंग का दारोमदार है।"

हमारी सेवासमिति ने अपना ध्येय बना लिया था कि प्रत्येक स्थान पर मेले के अवसर में जा जा कर यात्रियों की सेवा करना चाहिए। पं० मदन मोहन मालवीय जी का भी यही उद्देश्य था और यह संस्था उन्हीं के उद्देश्य को लेकर आगे चली और अब तक बराबर वही करती आरही है। नीचे लिखे खास खास निन्मलिखित मेलों में दक्षता के खास कार्य किया जिससे इसका नाम और भी होगया।

नासिक कुम्भ १९२० में, हरद्वार अर्धकुम्भ १९२१ में, कुरुक्षेत्र सूर्यग्रहण १९२३ में, इलाहाबाद अर्धकुम्भ १९२४ में, कुरुक्षेत्र सूर्यग्रहण १९२५ में, हरद्वार कुम्भ १९२७ में, उड़ीसा में बाढ़ के अवसर पर १९२७ में, कुरुक्षेत्र सूर्य-ग्रहण १९२८ में, इलाहाबाद कुम्भ १९३० में, अजमेर आर्यमेला १९३१ में हरद्वार अर्धकुम्भ १९३३ में, कुरुक्षेत्र सूर्यग्रहण १९३३ में, बिहार में भूकम्प के अवसर पर १९३४

में तथा हरद्वार में कुम्भ के समय में १९३७ में। इनके अलावा प्रत्येक वर्ष प्रयाग माघ मेले में, चन्द्रग्रहण के अवसरों पर काशी में तथा प्रयाग में बराबर यह संस्था तन, मन धन से सेवा करती रही।

कुछ लोगों के विचार

सेवा-समिति के कार्यों को देखकर तथा इससे प्रभावित होकर मिस्टर डब्लू क्रिस्टी आई० सी० एस० (Mr. W. Christe, I. C. S.) १९२७ के हरद्वार कुम्भ मेला के मालिक लिखते हैं कि "बिना इस संस्था के स्काउटों की सहायता से हम मेला को सफलीभूत नहीं बना सकते थे।" मिस्टर पी० एच० जे० (Mr. P. H. J.) हिन्दुस्तान पुलिस विभाग के मेजर और सन् १९२७ में हरद्वार में कुम्भ मेले पर पुलिस के बड़े आफिसर लिखते हैं, "इस संस्था के आफिसरों के जोश तथा सहयोग ही के कारण इस मेले में इतना अच्छा काम हो सका।"

सन् १९३० में प्रयाग में कुम्भ मेले के अवसर पर मिस्टर जी० फील्ड० आई० पी० यस० (Mr. G Field, I. P. S.) लिखते हैं कि "बिना इनकी मदद के पुलिस को भीड़ को अपने काबू में लाना असम्भव था। इसने मेरे कन्धों के बोझ को हलका करने में मदद की तथा मुझको यह मालूम हुआ कि मेरे पीछे कोई एक ऐसी संस्था है

जो अच्छी शिक्षित है तथा जिसके सुन्दर व्यवहार ने मेले के कार्यों में अच्छी मदद की।"

पं० मदनमोहन मालवीय जी के आशीर्वाद से तथा पं० श्रीराम वाजपेयी के प्रयत्न से इसमें इतनी उन्नति होगई है कि लगभग भारत के प्रायः सभी प्रान्तों व शहरों में इसकी शाखायें हो गई हैं तथा इसकी धाक जम गई है। इतना ही नहीं, अन्य दूसरे देशों में भी इसने अच्छा नाम पैदा किया है। मालवीय जी ने अपनी जिन्दगी में दो ही कार्य किए हैं। पहला काशी में विश्वविद्यालय खोलना, दूसरा प्रयाग में प्रयाग सेवा-समिति कायम करना। इन्हीं दोनों कार्यों के कारण आपका नाम अमर हो गया है।

अब आज कल भारत की कई स्काउट संस्थायें मिल गई हैं और उनका नाम एक हो गया है। यह भी सब मालवीय जी के प्रयत्न से हुआ है। इसका नाम सेवा-समिति पड़ा। इसका मुख्य केन्द्र प्रयाग ही है तथा चीफ कमिश्नर तथा आर्गनाइज़िंग कमिश्नर हमारे पं० मदन मोहन जी मालवीय तथा पं० श्रीराम वाजपेयी ही हैं।

मालवीयजी और कांग्रेस

पं० मदन मोहन मालवीय जी ने प्रारम्भिक जीवन से ही देशहित कार्य करना आरम्भ कर दिया था। आप अपना सारा समय इसी कार्य में लगाते थे। सन् १८७६ में आप कांग्रेस क्षेत्र में सर्वप्रथम उतरे। इस वर्ष कांग्रेस

कलकत्ते में स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी के सभापतित्व में हुई थी। आप पंडित आदित्यराम जी के साथ इस अधिवेशन को देखने के लिए गये। वहां पर आपने कई व्यक्तियों के जोशीले तथा ओजपूर्ण व्याख्यान सुने जिससे आपके हृदय में भी जोश उठने लगा तथा वहीं पर एक भाषण देने की इच्छा हुई। पंडित आदित्यराम जी ने आपके उत्साह को दूना कर दिया, जब आपने अपना व्याख्यान देना आरम्भ किया तो वहाँ के श्रोतागण बड़े आश्चर्य में पड़ गये। आपके व्याख्यान का प्रभाव उपस्थित सज्जनों पर अधिक पड़ा। जब वार्षिक रिपोर्ट निकली तो जेनरल सेक्रेटरी ने अपनी रिपोर्ट में आपकी बड़ी तारीफ की। उन्होंने लिखा है कि इस वर्ष सब से प्रभावशाली व्याख्यान पंडित मदन मोहन मालवीय जी का हुआ। भाषण का प्रत्येक वाक्य जोशीला तो था ही मगर ("No taxation without representation") ने सभा में खलबली मचा दी थी।

आपका कांग्रेसी जीवन यहीं से प्रारम्भ होता है। आप बड़े-बड़े राजनैतिक नेताओं में से एक थे। जब आप भाषण देने लगते थे तो आप प्रत्येक विषय को इस ढंग से दर्शाते थे कि वहां बड़े बड़े कानून वाले भी न सर उठा सकते और न आपके प्रश्नों का उत्तर ही दे सकते। भारतवर्ष में भाषण देने के लिये १४४ आदि कई धारायें

रुकावटें डाला करती हैं। सरकार की तरफ से हमेशा पुलिस खड़ी रहती है और अगर कोई व्यक्ति कानून को भंग करके सरकार की निगाह से नाजायज बात कहता है तो वह तुरन्त गिरफ्तार कर लिया जाता है। उसको जेल की हवा खानी पडती है तथा जुर्माना भी देना पड़ता है। उसकी कोई भी सुनवाई नहीं करता है। यों तो बड़े बड़े नेता जेल की हवा खा चुके हैं, मगर हमारे पंडित जी के व्याख्यान को सरकार ने कभी भी कानून के बाहर नहीं समझा तथा ऐसा अभियोग आपके ऊपर कभी न चला। आप अपने व्याख्यान में इस तरह शब्दों का प्रयोग करते थे कि "साँप मरे लठिया नहिं टूटे" का हाल होता था। आपका मतलब भी निकल आता था और आप सरकार की निगाह से गिरकर गिरफ्तार ही नहीं होते था।

मालवीय जी राष्ट्रदल के एक बड़े नेता समझे जाते थे। इसमें दो प्रकार के दल हैं—एक गर्म दल और दूसरा नर्म दल। आपकी गणना नर्म दल में थी। आप का कहना है कि प्रत्येक को सत्याग्रह करना चाहिए और यह सब का अधिकार है मगर धैर्य, आशा तथा सहयोग द्वारा जो कुछ मिलता जावे, उसको बराबर लेते रहना चाहिए और बाकी के लिये लड़ते रहना चाहिये।

ऐसे व्यक्ति की भी तारीफ अगर न हो तो फिर किसकी हो। राजा सर टी० माधवराव तथा दीवान ब॰

आर० रघुनाथ राव आदि लोगों ने आपके व्याख्यान को मद्रास में की गई कांग्रेस के पंडाल के अन्दर सुनकर आपकी बड़ी तारीफ की। इस प्रकार धीरे धीरे आप कांग्रेस के प्रतिष्ठित सदस्य हो गये।

पहिले जब कांग्रेस का सालाना अधिवेशन होता था तब बहुत कम लोग उपस्थित होते थे। ख़ास तौर पर संयुक्त प्रांत से बहुत ही कम प्रतिनिधि जाते थे। मिस्टर ह्यूम ने जो उस समय राष्ट्रीय महासभा के मंत्री थे, पंडित जी को उपयुक्त समझा और इस आशय का एक पत्र आपको लिखा कि इस वर्ष जो मद्रास में अधिवेशन होने जा रहा है, उसमें मैं चाहता हूँ कि संयुक्त प्रांत से अधिक से अधिक प्रतिनिधि आवें। यह भार आपही के ऊपर रक्खा जा रहा है। पंडित जी पहिले ही से ऐसी सभा के प्रेमी बन चुके थे और चाहते थे कि लोग इसमें अधिक से अधिक तादाद में जावें। अतएव मंत्री महोदय के पत्र को पाकर आपने अपने प्रांत में दौरा लगाना प्रारम्भ कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि इस अधिवेशन में इस प्रांत की अधिक संख्या रही।

आपके इस उत्साह और जोश को देखकर प्रयाग में होने वाले अधिवेशन की स्वागत-समिति के आप सेक्रेटरी बनाये गये। जिस कार्य को आप हाथ में लेते थे उसमें आप इतना परिश्रम करते थे कि आपको पूर्ण

सफलता प्राप्त होती थी। यह अधिवेशन प्रयाग में सन् १८९२ में होने वाला था। उस समय पं० अयोध्यानाथ की मृत्यु होने पर इसमें शिथिलता आगई थी। मगर पण्डित जी के उत्साह और परिश्रम से महासभा के अधिवेशन में अच्छी सफलता प्राप्त हुई।

सन् १९०८ में लखनऊ में प्रान्तीय कांग्रेस की बैठक हुई और आप उसके सभापति चुने गये। १९०९ में महा सभा का अधिवेशन लाहौर में हुआ था। लोगों ने आप ही को सभापति बनाया, गो कि आपने अस्वस्थ रहने पर इन्कार कर दिया था मगर देश वालों के एक स्वर से प्रार्थना करने पर आपको सभापति बनना ही पड़ा।

आप जहाँ कहीं भी जाते थे या जहाँ कहीं भी रहते थे वहाँ कुछ न कुछ देश कार्य अवश्य करते थे। आप प्रयाग में म्युनिसिपल बोर्ड के वाइस चेयरमैन थे। उसके बाद आप सन् १९०२ में प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य बन गये। वहाँ पर भी आप देश के लिए बराबर लड़ते रहे। जब सरकार ने देश में नुकसान पहुँचाने वाला कोई भी कानून बनाया आपने तुरन्त उसका विरोध किया।

जलियानवाला बाग के हत्याकांड के सम्बन्ध में आपने इम्पीरियल लेजिसलेटिव कौंसिल में अनेक ऐसे प्रश्न किये कि सरकारी पक्ष के सदस्यों में से कोई भी उनका उत्तर न दे सका। कांग्रेस कमेटी ने इस कांड की जांच के

लिये एक छोटी सी कमेटी बनायी और मालवीय जी भी उसमें एक सदस्य के रूप में थे। आपने इसमें घोर परिश्रम किया तथा पंजाब में दुखियों का पूरा विवरण प्रकाशित कराया। आप उक्त कौंसिल के उन्नीस सदस्यों में से थे तथा आपने अपने हस्ताक्षर से सुधार संबंधी वक्तव्य प्रकाशित कराया जो मेमोरेन्डम आफ दी नाइनटीन" (Memorandum of the ninteen) नाम से प्रसिद्ध है।

सन् १९३१ में गोरखपुर मे चौरीचौरा नामक स्थान पर पुलिस और वहाँ के रहने वालों में लड़ाई हो गई। लोगों ने चौकी को जला डाला तथा जितने पुलिस वहाँ थे सब को जला डाला। सरकार इससे बड़ी क्रुद्ध हुई और यह समझ कर कि यह सब कांग्रेस द्वारा हुआ है, महात्मा गाँधी को ६ वर्ष की सजा दी। इसके बाद लगभग १३८ आदमी पकड़े गये और वे अपराधी करार दिये गये। मालवीय जी ने इन गरीबों की पैरवी की और चार को छोड़ कर सब को सजा से बचा लिया। उन चारों व्यक्तियों को फाँसी की सजा हो गई।

स्वर्गीय लाला लाजपत राय पं० मदनमोहन मालवीय की तरह के योद्धा थे। मगर उनका स्वर्गवास अल्प आयु में हो गया। इससे मालवीय जी को अत्यधिक कष्ट हुआ। आपने हिन्दुस्तान टाइम्स के लाजपत अङ्क में लालाजी-संबंधी शोक समाचार निकलवाया। उसके बाद सायमन

कमीशन के स्वागत का प्रश्न खड़ा हुआ। कुछ लोगों का ख्याल था कि मालवीय जी कमीशन का विरोध न करेंगे क्योंकि उन्हें भय है कि ऐसा करने से काशी-विश्वविद्यालय की आर्थिक सहायता सरकार बन्द कर देगी। मगर एक पत्र द्वारा ज्ञात हुआ कि मालवीय जी ने एक सभा में भाषण दिया है कि "मैं सायमन-कमीशन का विरोध करता हूँ, क्योंकि वह देश के लिये बड़ा ही अपमानकारक है।"

सायमन कमीशन का देश भर में एक स्वर से विरोध किया गया। इससे यहाँ के नेताओं को पूरा विश्वास हो गया कि भारत अब शक्ति प्राप्त कर रहा है। अतएव नेताओं ने कानून भंग आन्दोलन शुरू कर दिया। लाहौर कांग्रेस में 'स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई, और जनता के सामने यह भी रक्खा गया कि जो लोग किसी भी सरकारी सभा के सभासद हों वे फौरन स्तीफा दे देवे। मालवीय जी के हृदय में भी यह बात बैठ गई कि कौंसिल में रह कर देश का भला कदापि नहीं हो सकता। अतएव आपने भी वहाँ से स्तीफा दे दिया। इस त्याग का प्रभाव देश में बहुत पड़ा। आपने विदेशी वहिष्कार के आन्दोलन में घोर परिश्रम किया। आपने बड़े बड़े व्यापारियों के पास जाना आरम्भ कर दिया। उनको विलायती कपड़ों का व्यापार न करने को बाध्य करना आरम्भ कर दिया। इस विषय पर आपके अनेक भाषण हुए।

यह कार्य आपने सर्वप्रथम पंजाब में किया। वहाँ पर अनेक भाषण देने के बाद तथा अनेक व्यापारियों से विदेशी वस्त्र न बेचने और न खरीदने का प्रतिज्ञा पत्र लिखवाने के बाद आपका दौरा संयुक्त प्रान्त में शुरू हो गया। यहाँ से आप बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े बड़े स्थानों पर गये और वहाँ भी आपने यही कार्य किया। फिर आप दिल्ली लौट आये। इसी समय पं० मोतीलाल जी की गिरफ्तारी तथा सरकार द्वारा कांग्रेस को एक गैर कानूनी संस्था करार दिये जाने का हाल सुन कर आ प्रयाग आ गये। पर आपने सरदार वल्लभ भाई पटेल क एक पत्र लिखा और उनसे प्रर्थना की कि मैं भी अ ऐसी संस्था के सदस्य बनने के लिये तैयार हूँ। जब कभ आपको आवश्यकता पड़े मुझ को आज्ञा दें। आप तुरन्त कांग्रेस की कार्य-कारिणी-समिति के सदस्य बन गये।

मालवीय जी तथा पटेल जी, दोनों ने देश में भ्रमण करके स्वदेशी का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। रास्ते में लोगों को स्वदेश पाठ, मातृभूमि की सेवा तथा देश के प्रति प्रेम का पाठ पढ़ाते रहे। सन् १९३० की अगस्त में आप बम्बई पहुँचे और २ तारीख को एक विराट जलूस लोकमान्य की पुण्य तिथि के दिन निकाला। आप इस जलूस के आगे थे। इसमें लगभग एक लाख आदमी शामिल थे। पुलिस के आफिसर ने इस जलूस को रोक

दिया और आगे न बढ़ने का हुक्म दिया। मगर आपने इस आज्ञा को तोड़ दिया और जलूस को आगे बढ़ाने का हुक्म दिया। इससे आप तथा पटेल जी आदि कई व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये। मालवीय जी को १५ दिन की क़ैद या सौ रुपया जुर्माना देने की आज्ञा हुई। किसी व्यक्ति ने चोरी से १०० रुपया आपके जुर्माने के तौर पर जमा कर दिया तथा मालवीय जी को जेल से छुटकारा दिला दिया। यह सब काम आपकी इच्छा के विरुद्ध हुआ था मगर आप लाचार थे।

जेल से छूटने के बाद आपने यह समझ कर कि यह आन्दोलन ढीला न पड़ने पाये तथा इसमें शिथिलता न आ जावे, पुनः देशाटन करना प्रारम्भ कर दिया। गुजरात की यात्रा समाप्त करने पर जब आप गोधरा स्टेशन पर आये तब आपका यहाँ बड़ा स्वागत हुआ। वहाँ पर एक विराट सभा की गई और उसमें आपने भाषण देते हुये कहा कि विदेशी वस्त्र का त्याग करना चाहिये और नशीली वस्तुओं को छोड़ देना चाहिये।

२७ अगस्त सन् १६३० में दिल्ली में अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा की कार्य-कारिणी-समिति की बैठक होनेवाली थी। आप वहाँ पर २६ तारीख को पहुँचे। मगर २७ तारीख के ३ बजे मालवीय जी, श्री विट्ठलभाई पटेल, डाक्टर अन्सारी आदि अनेक नेता गिरफ्तार कर

लिये गये। सरकार ने इनको राजद्रोही करार दिया और और छः छः महीने की सजा दी। जेल जाते समय आपने लोगों को समझाया कि प्रत्येक को इस युद्ध में संलग्न रहना चाहिये। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को कष्टों तथा विघ्नों की कुछ भी परवाह न करके इस आन्दोलन को जारी रखना चाहिये।

मालवीय जी का काया-कल्प

आयुर्वेदिक शास्त्रानुसार जो वृद्ध कायाकल्प की क्रिया को करता है वह वृद्धावस्था को त्याग कर युवावस्था का प्राप्त करता है। ऐसी क्रिया को भारतवर्ष में अनेक ऋषिमुनियों ने तथा राजाओं ने किया था और वे युवावस्था को प्राप्त हुये थे। उनमें से च्यवन ऋषि अधिक उल्लेखनीय हैं। उनकी कहानी संक्षेप में इस प्रकार है।

एक बार राजा ययाति अपनी लड़की सुकन्या को लेकर वन में आखेट खेलने गये। लड़की आगे कुछ निकल गई। उसने एक मिट्टी का ढेर देखा। उसके अन्दर च्यवन ऋषि बैठे तपस्या कर रहे थे। सिर्फ उनकी आँखें दिखलाई पड़ती थीं। लड़की ने खेलवाड़वश एक सींक से उसकी आँख को कोंच दिया। ऋषि की तपस्या भंग हो गई। इतने में राजा भी वहाँ पर पहुँच गये। ऋषि से क्षमा मांगने लगे और इसके पश्चात्ताप में अपनी लड़की को उन्हें दे दिया। एक दिन अश्विनीकुमार वहाँ पर

आये और च्यवनऋषि से कहा कि हम उनको पुनः युवा कर सकते हैं अगर वे उनको यज्ञ में भाग देंगे। च्यवनऋषि ने इसको मान लिया। अश्विनीकुमार ने कायाकल्प के के द्वारा उनमें फिर से युवावस्था ला दी।

हमारे पंडित जी अब वृद्ध हो गये थे, अधिक आयु के हो गये थे। इस इस समय आपकी आयु लगभग ७७ वर्ष के थी। ऐसे ऐसे महापुरुषों की आयु अधिक होना परम आवश्यक है। लाला जी के स्वर्गवास से देश को अधिक क्षति पहुँची। अगर वे जिन्दा होते तथा अगर उनकी आयु अधिक होती तो देश का अधिक भला होता। अतएव मालवीय जी का कायाकल्प होना अत्यन्त आवश्यक था। इसके लिए प्रयाग स्थान चुना गया। तथा शिवकुटी में गंगा नदी के तट पर रामबाग में रहने का इन्तजाम किया गया। आप इसके वास्ते बनारस से १७ जनवरी सन् १९३८ को प्रयाग आये और तुरन्त इस कार्य में लग गये। इस क्रिया के बतलाने वाले आपके साथ रहते थे। उनका नाम तपसी बाबा था। वे साधु थे तथा कोतवान जिला मथुरा के रहने वाले थे। मालवीय जी को जो दवा दी जाती थी वह आयुर्वेदिक रीति से तैयार होती थी। रामबाग से ३० मील की दूरी पर वारा के पास एक जंगल है। यह दवा उसी जंगल में तैयार होती थी। ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक दिन की दवा तैयार करने में ए-

पूरे ढाक-वृत्त की आवश्यकता पड़ती थी। तने के ऊपर से पेड़ को काट कर गिरा दिया जाता था। तब मोटे तने में एक गोल छेद किया जाता था। उसमें दवा रखकर तथा आग लगाकर दवा भस्म की जाती थी। तब वह दवा तैयार होती थी। इसमें मालवीय जी का अधिक रुपया खर्च होता था।

मालवीय जी को यह इलाज लगातार छः सप्ताह करना पड़ा था। इन दिनों आपको पूरा आराम होना आवश्यक था। न बाहरी आदमी आपके पास किसी कार्य के लिये जा सकते थे और न आप ही स्वयं किसी से मिल सकते थे। इसके लिये कमरे के बाहर ईंटों की पक्की दीवाल बनवा दी गई थी। जिससे लोग आपको देख भी नहीं सकते थे। मिस्टर त्रिलोकचन्द पन्त आपके प्राइवेट सेक्रेटरी थे और बाहरी काम इन्हीं के द्वारा होता था।

मालवीय जी के साथ टेहरी गढ़वाल के रहने वाले पंडित हरीदत्त शास्त्री भी इसी कायाकल्प क्रिया को कर रहे थे। लेकिन दोनों व्यक्ति अलग अलग कमरों में रहते थे। पंडित जी की सेवा करने के लिए यों तो अनेक मनुष्य थे मगर आपके पुत्र पंडित मुकुन्द मालवीय अधिक तत्पर थे।

मालवीय जी को खाने के लिए काली गाय का दूध मात्र दिया जाता था। इसके लिये हिसार की तरफ से चार काली बड़ी गायें मंगवा ली गई थीं, जिनसे दूध प्रचुर

मात्रा में मिल सकता था। कायाकल्प से मालवीय जी की बराबर उन्नति होती गई। १८ फरवरी को तपसी बाबा के हुक्म से डाक्टर देवदास भट्ट ने आपकी परीक्षा की। डाक्टर साहब बनारस के एक होमियोपैथिक डाक्टर थे। उन्होंने देखा कि शरीर की झुर्रियाँ ठीक हो रही हैं तथा उनके दिल में काफी ताकत आ रही है। तपसी बाबा का कहना था कि दवा अन्त में अधिक फायदा करती है। पं० मुकुन्द मालवीय भी मालवीय जी का रोज का हाल बराबर लिखते जाते थे। उनको भी ज्ञात होता था कि कायाकल्प से मालवीय जी को लाभ हो रहा था।

२५ फरवीरी को आपको कायाकल्प की क्रिया समाप्त हो गई। इसके बाद आपको उसी कमरे के अन्दर १ हफ्ता और रहना पड़ा था। आपकी दवा तैयार करने में ५० या ६० ढाक के पेड़ काटकर फेंक दिये गये थे तथा लगभग ५० मन दूध दवा तैयार करने में जल गया था। पंडित हरिदत्त शास्त्री जी के दवा तैयार करने मे भी इतना ही लगा था। कायाकल्प के खतम होने पर उनको मूंग की दाल का पानी सर्वप्रथम दिया गया था। धीरे २ कुछ दिनों मे आपको अन्न मिलने लगा और आप का भोजन ठीक राह पर आ गया।

मालवीय जी को कायाकल्प से अधिक लाभ रहा। आपकी झुर्रियाँ लगभग सब लुप्त हो गईं। आपकी आँखों

में रोशनी आगई तथा आपके दिल में बड़ी ताकत आ गई। इतना ही नहीं, आप वजन में भी अधिक बढ़ गये। काया-कल्प के करने से आपकी आयु अब बहुत बढ़ गई।

नवीन जीवन

काया-कल्प में मालवीय जी ने नया जीवन लाभ किया। वृद्धावस्था के कारण उनके शरीर में जो कमजोरी आगई थी, वह कुछ दिनों के लिये दूर हो गई, और मालवीय जी पुनः देश और समाज की सेवा मे लग गये। मालवीय जी यद्यपि अधिक वृद्ध हो गये थे; पर वे अपना एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट नहीं करते थे। वे चारपाई पर पड़े रहने की हालत में भी या तो किसी से कोई पुस्तक पढ़वा कर सुनते रहते थे, या स्वयं किसी को अपने पास बिठाकर कुछ लिखाते रहते थे। देश और जाति की चिन्ता उनके हृदय को सदैव मथा करती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कायाकल्प से मालवीय जी के स्वास्थ्य को जो लाभ प्राप्त हुआ था, वह नष्ट होगया, और मालवीय जी का स्वास्थ्य फिर पहले ही जैसा अधिक क्षीण हो गया।

वाइस चाँसलरी से त्यागपत्र

हिन्दू विश्वविद्यालय के जीवनकाल से बराबर मालवीय जी का उससे घनिष्ट सम्बन्ध रहा। मालवीय जी ने ही इस महान् संस्था को स्थापित किया, और अपनी

तपस्या से उसे संसार के सामने अधिक गौरववान बनाया। १९३९ ई० में जब मालवीय जी का स्वास्थ्य अधिक खराब होगया, और वे कुछ भी काम करने में जब असमर्थ हो गये, तब उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर के पद से त्याग पत्र दे दिया। पर फिर भी आपका समय विश्वविद्यालय की ही सेवा में बीतता था। त्याग पत्र दे देने पर भी आपको उसकी चिन्ता रहती थी, और आप उसकी देख-रेख किया करते थे।

बीमारी के आठ वर्ष

१९३९ ई० में जब मालवीय जी का स्वास्थ्य गिरा, तब वह बराबर गिरता ही गया। धीरे-धीरे मालवीय जी की उठने की शक्ति जाती रही, और उनकी आँखों की ज्योति भी नष्ट हो गई। वे चारपाई पर ही पड़े रहने लगे। बीमारी के इन आठ वर्षों में उन्होंने अपना अधिकांश काशी में ही बिताया। कभी कभी वे प्रयाग भी आ जाते थे। और अपने जार्जटाउन वाले बँगले में रहते थे। सन् १९४२ के आन्दोलन के दिनों में वे महीनों प्रयाग में रहे थे। उस समय वे बहुत धीमे बोलते थे, और सुनते भी बहुत कम थे।

इन आठ वर्षों में देश में काफी उथल-पुथल हुआ, और कई महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनायें घटीं। मालवीय जी यद्यपि बीमार थे, पर उनका हृदय सदैव देश और समाज की चिन्ता से आकुल रहता था। १९४३ में जब

महात्मा गाँधी जी ने आगाखाँ महल में एक महीने का अनशन किया था, और उनका स्वास्थ्य अधिक क्षीण हो उठा था, तब मालवीय जी के हृदय को बहुत बड़ा आघात लगा था, उस समय उन्होंने जो वक्तव्य किया था, उससे पता चलता था, कि देश की दुरवस्था से वे कितने चिन्तित रहते थे। एक समाचार-पत्र के सम्वाद दाता से वे गाँधी जी के स्वास्थ्य के बारे में बातचीत करते करते रो उठे थे।

मालवीय जी एक महान् हिन्दू नेता थे। वे राष्ट्र को हिन्दुओं से अलग नहीं समझते थे। यही कारण है, कि उन्होंने अपना सारा जीवन हिन्दुओं की सेवा के लिये समर्पित कर दिया था। बीमारी के दिनों में भी मालवीय जी को हिन्दू जाति की भलाई की चिन्ता बराबर बनी रहती थी। जिन दिनों क्रिप्सामिशन इंगलैण्ड से अपना खरीता लेकर भारतवर्ष आया था, और नई दिल्ली में राजनीतिक वार्तायें हो रही थीं, उन दिनो मालवीय जी यद्यपि अधिक बीमार थे, पर फिर भी वे नई दिल्ली में होने वाली वार्ताओं से परिचित रहा करते थे। क्रिप्स के प्रयोजन को ध्यान से सुनने के बाद उन्होंने वक्तव्य देते हुए कांगरेस के कर्णधारों को यह सलाह दी थी, कि वे उसे अस्वीकार कर दें। क्योंकि इससे भारतवर्ष की अखंडता का नाश होता है।

इसी प्रकार लार्ड वेवल के उस प्रस्ताव का जिसके

द्वारा उन्होंने सवर्ण हिन्दुओं के मुकाबिले में मुसलमानों को समानता का अधिकार दिया था, मालवीय जी ने तीव्र विरोध किया था, और उस प्रस्ताव को देश के लिये अहितकर बताया था।

नोआखाली का हत्याकाण्ड

इधर चार-पाँच वर्षों से देश में जो राजनैतिक घटनायें घट रही थीं, उनसे हिन्दुओं का अधिक अहित होने की संभावना पाई जाती थी। मालवीय जी इन घटनाओं से प्रायः चिन्तित रहा करते थे। कभी कभी वक्तव्यों के रूप में वे अपनी इस चिन्ता को प्रगट भी कर दिया करते थे। कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के स्थापित हो जाने के बाद जब देश में चारों ओर सांप्रदायिक उपद्रव होने लगे, और उसमें हिन्दुओं के धन-जन की अधिक हानि होने लगी, तब मालवीय जी की चिन्ता और भी अधिक बढ़ गई। नोआखाली के बर्बरता-पूर्ण हत्याकाण्ड ने तो मालवीय जी के क्षीण स्वास्थ्य को हिला दिया। उस हत्याकाण्ड का उनके स्वास्थ्य पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। उस हत्याकाण्ड पर उन्होंने जो वक्तव्य दिया था, वह आज भी उनके हृदय की आकुलता को प्रगट कर रहा है, और प्रलयकाल तक करता रहेगा।

निर्वाण

उन दिनों मालवीय जी काशी में थे। नोआखाली हत्याकाण्ड की कहानियाँ सुनकर वे प्रायः व्यथित से

हो जाया करते थे। वे जब होश में आते थे, तब बराबर नोआखाली के अभागे हिन्दुओं की हालत पूछा करते थे। अन्त में १२ नवम्बर को नोआखाली के हिन्दुओं को याद करते ही यह पुनीत और महान् तपस्वी इस पृथ्वी पर से उठ गया। जाते-जाते वह हिन्दुओं को एक संदेश दे गया है। सुना जाता है, कि इस देश के बत्तीस करोड़ उस सन्देश का मंत्र की तरह जाप करेंगे ! कितना अच्छा होता, यदि हिन्दू इस सन्देश का मंत्र की तरह जाप कर सकते !

महान तपस्वी

मालवीय जी महान् तपस्वी थे। उन्होंने देश और जाति की भलाई के लिये जो महान तपस्या की वह युग-युग तक अमर रहेगी। देश के गरीबों, दलितों अछूतों और दुखी विधवाओं के लिये मालवीय जी के हृदय में बहुत बड़ी करुणा थी। अछूतों और विधवाओं की बुरी अवस्था को देख कर मालवीय जी विकल हो जाया करते थे। मालवीय जी पहले हिन्दू नेता थे, जिन्होंने हरिजनोद्धार का काम किया। उन्होंने काशी, नासिक और हरिद्वार इत्यादि तीर्थ स्थानों में हरिजनों को दीक्षा दी और उन्हें ऊँची जाति के हिन्दुओं में मिलाया।

राष्ट्र की सेवा में मालवीय जी ने अपना तन मन धन सब कुछ अर्पण कर दिया था। होश सँभालते ही वे रा' की सेवा में लग गये थे, और अपने जीवन के अ' काल तक बराबर उसी प्रकार लगे रहे। राष्ट्र की सेवा

लिये इन्होंने तकलीफें भी उठाईं और बड़ा से बड़ा त्याग भी किया। दो बार राष्ट्र की सेवा के लिये ये जेल भी गये।

मालवीय जी बहुत बड़े साहसी थे। न्याय और मानवीय अधिकारों के लिये जब ये अड़ जाते थे, तब इन्हें कोई डिगा न सकता था। एक बार बम्बई में अधिकारियों की ओर से राष्ट्र कर्मियों का एक विशाल जुलूस रोक दिया गया। मालवीय जी ही उस विशाल जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। मालवीय जी २४ घंटे तक उस विशाल जुलूस के साथ सड़क पर बैठे रहे। हटे उस समय, जब अधिकारियों ने अपनी पराजय स्वीकार करके जुलूस का रास्ता छोड़ दिया।

मालवीय जी बड़े दयालु थे। उनके हृदय के कोने-कोने में दयालुता भरी हुई थी। किसी के कष्ट की सकरुण कहानी सुनते ही उनकी आँखें सजल हो उठती थीं और वे उस की सहायता करने के लिये तैयार हो उठते थे।

वाणी तो मालवीय जी की सहचरी थी। वे जब बोलनें लगते थे, तब मधुरता और ओजस्विता की एक धारा सी बह जाती थी। वे अपनी बात ऐसी बुद्धिमता और कौशल से लोगों के समक्ष रखते थे, कि लोग सुनकर मंत्र-मुग्ध से हो जाते थे। मालवीय जी की इस अखंड वाणी-शक्ति की प्रशंसा बड़े-बड़े विद्वान अँगरेजों तक ने की है।

मालवीय जी जहां साहसी थे, वहाँ वे शान्ति-प्रिय भी

थे। उनके जीवक का अधिकांश समय देश और जाति को शान्ति का संदेश देते ही बीता। इस मानी में मालवीय जी इस युग के ईसामसीह थे। मालवीय जी का जन्म भी उसी दिन हुआ था जिस दिन ईसा ने जन्म धारण किया था। ठीक ईसा मसीह ही की भाँति मालवीय जी गरीबों और दुखियों को उपर उठाते रहे तथा जगत को शान्ति का वे संदेश देते रहे। कई वर्षों तक मालवीय जी कांगरेस में भी रहे। कांगरेस के कर्णधारों में जब कभी मतभेद उठ खड़ा होता था तब मालवीय जी ही बीच में पड़कर दोनों दलों में समझौता चाहते थे।

हिन्दी और हिन्दू जाति के तो मालवीय जी प्राण थे। हिन्दू संगठन की विचार धारा हिन्दू जाति को मालवीय जी से ही मिली है। हिन्दू महासभा की स्थापना में मालवीय जी का ही विशेष हाथ था। हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा बनाने में मालवीय जी ने जो प्रयत्न किया है, वह स्तुत्य है। आज अदालतों में देव नागरी लिपी का जो प्रचार है, उसके कारण मालवीय जी ही हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दो बार सभापति होकर मालवीय जी ने राष्ट्र भाषा हिन्दी की पताका सारे देश में उठाई है।